पूर्व-पीठिका

हिन्दी-काव्य साहित्यके विकास-क्रममें भक्ति साहित्यका वही स्थान है, जो शरीरमे हृदयका होता है। मस्तिष्कसे हृदयकी महत्ताको कम करना सम्पूर्ण मानव व्यक्तित्वके साथ अन्याय करना है। जहाँ करुणा नहीं, कोरा तर्क है, वहाँ रसोंकी निष्पत्ति सम्भव नहीं। जहाँ रस नहीं, वहाँ साहित्य-सर्जना कैसे होगी? 'रसोवैसः' के सिद्धान्तका आखिर कुछ तो अर्थ है ही।

भारतीय सांस्कृतिक-जीवनमे देशव्यापी भक्ति-आन्दोलनका बहुत बड़ा हाथ रहा है। सामाजिक-जीवनको संजीवनी शक्ति, प्रेरणा तथा पराभवमूलक तत्वोंसे डटकर मुकाबला करनेका बल भक्ति-आन्दोलनने ही प्रदान किया था। हिन्दी-साहित्यके इतिहास-में भक्ति-आन्दोलनसे प्रभावित महान तत्वज्ञों, दार्शनिकों और समाज-हितचिन्तकोंकी कृतियोंका सबसे महत्वपूर्ण स्थान है, और उनमे भी गोस्वामी तुलसीदास तथा भक्तिशिरोमणि सूरदासका स्थान सर्वोपरि है। इसी प्रकार सन्त-परम्परामें कबीरका स्थान सर्वोच्च है। भक्ति और सन्त आन्दोलनोंसे अलग हटकर समन्वय-मूलक (?) सूफी आन्दोलन चला, जिसका सबसे सुन्दर निखार मलिकमुहम्मद जायसीकी रचनाओंमें हुआ। कबीर, सूर, जायसी और तुलसी इन चारों महाकवियोंका युग प्रायः डेढ़ सौ वर्षोंके अन्दर समाप्त हो जाता है. परन्तु इस युगमे जिस उत्कृष्ट-साहित्य-की रचना हुई, वह सम्पूर्ण हिन्दी-साहित्यके सौभाग्य-सिन्दूरकी तरह आज भी जगमगा रहा है। प्रस्तुत ग्रन्थमें कबीर, जायसी, तुलसी और सूरके साहित्यका मूल्यांकन प्रस्तुत किया गया है

और यथाशक्ति उनकी प्रेरणाके मूलस्रोतों तक पहुँचनेका प्रयास भी किया गया है।

जिस क्षेत्रमें आचार्य श्रीरामचन्द्र शुक्ल, आचार्य श्रीनन्ददुलारे वाजपेयी, डाक्टर श्रीहजारीप्रसाद द्विवेदी, श्रीरामनरेश त्रिपाठी, डा० श्रीरामकुमार वर्मा, श्रीपरशुराम चतुर्वेदी, डा० श्रीश्रीकृष्ण-लाल, रेवरेण्ड फादर कामिल बुल्के, डा० श्रीकमलकुलश्रेष्ठ आदि *मनीषियों और विद्वानोंने प्रवेशकर दूसरे लोगोंके लिए मार्ग* आलोकित किया हो, उसमें मेरे जैसे हिन्दीके साधारण विद्यार्थीके लिए अपनी मशाल लेकर चलना दुस्साहसमात्र गिना जाता। इसलिए मैं प्रस्तुत ग्रन्थमें किसी प्रकारकी मौलिकताका दावा नहीं करता, फिर भी लगता है, उस महासागरसे दो-चार मोती ढूँढ़ लानेका श्रेय शायद मुझे भी मिलेगा। "अति अपार जे सरितवर जो नृप सेतु कराहिं। चढ़ि पिपीलिकउ परम लघु बिनु श्रम पारहिं जाहिं।"

पहले इस पुस्तकका नाम 'हिन्दी-काव्यमें भक्तिकालीन प्रवृत्तियाँ और उनके मूलस्रोत' था, किन्तु प्रस्तुत संशोधित संस्करण-में नाम परिवर्तितकर 'हिन्दी-काव्यमें भक्तिकालीन साधना' रख दिया गया है।

जिन ग्रन्थोंके अध्ययनसे यह पुस्तक तैयार हुई है, उनके प्रणेता मनीषियोंका मैं हृदयसे आभारी हूँ।

हिन्दी-साहित्य-सृजन-परिषद्
चौक, जौनपुर; उत्तरप्रदेश।

—सत्यदेव चतुर्वेदी

हिन्दीके विख्यात कवि एवं लेखक

अगाध श्रद्धाके पात्र

श्रीरामनरेश त्रिपाठीजी

को

सादर सप्रेम समर्पित।

—सत्यदेव चतुर्वेदी

विषय-सूची

निर्गुणधारा

सगुणधारा

———

भारतीय उपासनाकी परम्परा

भारतीय मनीषाने अपनी चिन्ताधाराके प्रथम विकासकालमें समग्र परिवर्तनशील ब्रह्माण्डके अन्तर्गत जिस तत्वको शाश्वत समझा, उसका नाम 'ब्रह्म' घोषित किया। यही 'ब्रह्म' जिज्ञासाका विषय बना। इसी परमतत्वकी अनुभूति तथा बोध हमारी चिन्ताधाराका साध्य हुआ। इसी साध्य परमतत्वकी प्राप्तिके निमित्त, कर्म, ज्ञान और भक्ति तीन साधना मार्गोंका विधान हुआ।

भारतीय सनातन प्रजाकी धार्मिक साधना—ज्ञान, उपासना और कर्मकाण्ड—की परम्परा वेदोंसे चली आ रही है। धर्म-प्रवर्त्तक मूल पुरुष पितामह ब्रह्माको सर्वप्रथम उत्पन्नकर परमपिता-परमेश्वरने जिस ज्ञानको प्रदान किया, उस पूर्ण ज्ञानको 'वेद' कहा जाता है। भारतीय विचारकोंका कथन है—विशुद्ध ज्ञानमात्र 'वेद' है, तब शुद्धान्तःकरण महात्माओंके समस्त उपदेश वेद क्यों नहीं मान लिए जाते? इसका उत्तर है कि महापुरुषोंका ज्ञान विशुद्ध होनेपर भी इसलिए वेद नहीं कहा जाता कि वह वस्तुतः मूल ज्ञान नहीं है। वह ज्ञानकी पुनरुक्तिमात्र है। आदि सृष्टिमें जो ईश्वरीय ज्ञान मानवको प्राप्त हुआ, उस ज्ञानमें कुछ वृद्धि नहीं हुई—वृद्धि हो भी नहीं सकती, क्योंकि वह सर्वथा पूर्ण ज्ञान है; जैसे पात्रमें भरा गंगाजल यद्यपि विशुद्ध गंगाजल है, फिर भी वह गंगाजी नहीं है। सृष्टिके आरम्भमें मनुष्य जो अनन्त ज्ञानराशि पाता है, वह मनुष्यके हृदयकी एकाग्रताका प्रयत्न नहीं है, वह ईश्वरकी ओरसे आया ज्ञान है, अतः वेद केवल पूर्ण अपौरुषेय ईश्वरी ज्ञानको ही कहते हैं।*

---

* देखिए 'कल्याण' का 'हिन्दू संस्कृति अंक' पृ० २६५, गीता प्रेस, गोरखपुर।

वेद-मंत्रोंका अन्य नाम 'श्रुति' है, जिसका अर्थ है, सुना हुआ। वेदत्रयी कहलाते हैं, जिसका अर्थ है—इस वेदमें तीन बातें हैं—ज्ञानकांड, उपासनाकांड और कर्मकांड। इसी उपयोगकी दृष्टिसे वेदको त्रयी कहा जाता है। कहा जाता है—त्रेतायुगमें जब मनुष्यका साधन तप एवं ध्यान न होकर यज्ञ हुआ, तब यज्ञ-कार्यकी सुविधाके लिए एकही वेदको चार भागोंमें बाँट दिया गया। इन्हीं भागोंको ऋक्, साम, यजुः तथा अथर्व कहते हैं। ये चारों भाग अनादि हैं और एकमें ही पहले थे। वेदोंको त्रयी कहनेका दूसरा कारण इस प्रकार बताया जाता है कि वेदोंमें तीन प्रकारके मंत्र पाए जाते हैं—१—विनियोगके २—गानेके और ३—गद्यके। इन तीन प्रकारके मंत्रोंके कारण और उपासनात्रयके प्रतिपादनके कारण चारों वेदोंको त्रयीविद्या कहते हैं।

वेदोंके मंत्रभागको 'संहिता' कहते हैं, जिसका अर्थ है—अत्यन्त समीपता। संहिताकी भी दो शाखाएँ हुईं— १—सन्धि सहित और २—पदच्छेदयुक्त। ज्यों-ज्यों मानवकी ज्ञानशक्ति निर्बल होती गयी, त्यों-त्यों ऋषियोंने मन्त्रोंके क्रमको सुगम किया। एक ऋषिने अपने शिष्योंको मूल-संहिता पढ़ाई। उसमेंसे किसीने एक देवताके सब मन्त्र एकत्र कर लिए। इस प्रकार देवताक्रमसे मन्त्रोंका क्रम रखा। किसीने ऋषिक्रमसे मन्त्र सजाए, एक मन्त्रद्रष्टा ऋषिके सब मन्त्र एकत्र करके याद किए—किसीने विषयक्रमसे और किसीने छन्दक्रमसे। इस प्रकार चारों वेदोंको तो पृथक्-पृथक् रखा गया, किन्तु एक-एकमें अनेक क्रम बन गए। इनके अनन्तर पाठक्रमसे शाखाएँ बनीं। घन, माला, शिखा, लेखा, ध्वज, दण्ड, रथ और जटा आदि वेद-पाठकी आठ पद्धतियाँ स्थिर की गयीं। एक-एक शाखा इनके कारण आठ-आठ भागोंमें बँट गयी। इसी प्रकार ये शाखा-क्रम बढ़ते गए।

वेदोंके शब्द और मन्त्र शाश्वत हैं, उनके अक्षर नित्य हैं; किन्तु मन्त्रोंका क्रम मनुष्यकृत है। मण्डल, अष्टक, काण्ड, अध्याय—इन क्रमोंमें

सुविधानुसार ऋषियोंने फेरफार किया है। इसी सम्पादनक्रमसे शाखाएँ बनीं, किन्तु ऐसा होने पर भी न तो एक मात्रा घटायी गयी और न बढ़ाई।*

परमार्थी ऋषियोंकी इस परम पुनीत भावनाने कालान्तरमें वेदकी ज्ञानराशिको सर्वसाधारण तक पहुँचानेका जो प्रयत्न किया, उसीके फल-स्वरूप, आरण्यकों, संहिताओं, ब्राह्मण ग्रन्थों और उपनिषदों आदिकी सृष्टि हुई। भिन्न भिन्न ऋषियोंके विचार और अनुभूतियाँ जब वाणी-रूपमें प्रस्फुटित हुईं अर्थात् जब सूक्ष्म तत्व स्थूल वाणीका विषय बना, तब जिस रूपमें तत्व-बोध हुआ था, उस रूपमें ज्योंका त्यों वह तत्व न रहकर वाणीके माध्यमसे सर्वसाधारण तक आते आते कुछ बदला और अन्य जिज्ञासुओंके ग्रहण करते करते कुछ और भी हो गया। कालान्तर-में इसी प्रकार विस्तार पाते पाते अनेक दर्शन और अनेक साधना मार्ग स्थिर हो गए। ऋषियों द्वारा वैशेषिक; न्याय, सांख्य, योग, पूर्व मीमांसा एवं उत्तर मीमांसा आदि दर्शन प्रचलित हुए। इनमें कुछ-न-कुछ वाह्य दृष्टिसे अन्तर अवश्य है; किन्तु तात्विक दृष्टिसे सबमें समानता है। कालान्तरमें अद्वैतवाद, विशिष्टाद्वैतवाद, द्वैतवाद, द्वैताद्वैतवाद, शुद्धाद्वैत-वाद, अचिन्त्य भेदाभेदवाद, शैव दर्शन, पाशुपत दर्शन, प्रत्यभिज्ञा-दर्शन, शिवाद्वैत, लकुलीश पाशुपत दर्शन और शक्ति-दर्शन तथा कुछ अन्य दर्शनभी हैं, जो विभिन्न विचारकों द्वारा प्रवर्तित हुए।

वेदोंके दो भाग हुए, जिनके नाम ब्राह्मण और मन्त्र हैं। ब्राह्मण भागमें मंत्रोंका अर्थ निर्णीत है। यज्ञ सम्बन्धी अनुष्ठानोंके विस्तृत विवरण इसमें मिलते हैं और बहुतसे उपाख्यान पाए जाते हैं। ब्राह्मणों द्वारा ब्राह्मण-भागका सङ्कलन होनेसे ही इसका नाम 'ब्राह्मण' या 'ब्राह्मण-

---

* देखिए 'कल्याण' का 'हिन्दू संस्कृति अङ्क' पृ० २६६–२७० गीता प्रेस, गोरखपुर।

ग्रन्थ' है। विचारकोंकी धारणा है कि ब्रह्मका एक अर्थ यज्ञ भी है, अत यज्ञ प्रतिपादित होनेसे इसका नाम 'ब्राह्मण' पडा। ब्राह्मणोंके जो अंश अरण्य या विपिनमें पठित और उपदिष्ट हैं, उनका नाम 'आरण्यक' है। इन्हीं ब्राह्मणों या आरण्यकोंमें जो भाग गहन गम्भीर हैं एव सूक्ष्म चिन्तन मननसे पूर्ण हैं, उनका नाम उपनिषद है।

ब्राह्मणों एव आरण्यकों को कर्मकाण्ड कहा जाता है तथा उपनिषदों को ज्ञान काण्ड। उपनिषदोंमें जो परमात्मा, आत्मा, सृष्टि, पुनर्जन्म, स्वर्ग एव धर्म आदिका विवरण मिलता है, उसका आज भी महत्व है, बल्कि यों कहा जा सकता है कि हिन्दू धर्मका यह बहुत बड़ा आधार है। उपनिषदोंके सबन्धमें विद्वानोंके विचार हैं कि ये ज्ञानकी भण्डार हैं, इन्हींसे समग्र दर्शन, सभी शास्त्र, सब तर्क, सम्पूर्ण उक्तियाँ, सारे तन्त्र, सभी पुराण, विज्ञान और सब विद्याएँ निकली हैं। अर्थात् इनका हमारे जीवनमें बड़ा ही महत्व है।

हमारी भक्तिकालीन हिन्दी काव्यकी साधना इन्हीं धर्म एव दर्शनोंसे प्रभावित है। इस कारण प्रसगानुसार अनादिकालसे चली आती जीवन तत्वके चिन्तन प्रवृत्तियोंकी ओर सकेत करना आवश्यक था।

धर्मकी धारा, कर्म, ज्ञान एव भक्तिके सामञ्जस्यस प्रवाहित होती रहती है। इनमेंसे किसी एकके भी अभावमें वह शिथिल हो जाती है। कर्मसे गति, ज्ञानसे दृष्टि और भक्तिस धर्मम सजीवता आ जाती है। इनक अतिरिक्त अपनी तात्विक विशेषताओंके कारण योगमार्ग भी—जो ज्ञान, कम एव भक्तिके साथ सम्बद्ध है,—विशेष महत्व रखता है।

समय पाकर कर्म पाखण्ड और बाह्याचारोंकी ओर, ज्ञान अद्वैतवादिता तथा गुह्यरहस्यात्मकताकी ओर और भक्ति विलासिताकी ओर जब मुड़ जाती है, तब ये साधना मार्ग दोष ग्रस्त हो जाते हैं। ऐसा आचार्योंका विश्वास है।

हिन्दी साहित्यके भक्तिकालमें साधनाके ये तीनों मार्ग दोष ग्रस्त हो

गए थे। अनेक छोटे-छोटे कारणोंके साथ राजनीतिक विप्लव इन्हें दूषित करनेका प्रमुख कारण था। भारतीय इतिहासका यह युग दो संस्कृतियोंके आदान प्रदानके कारण संघर्षमय हो गया था; जिसके फलस्वरूप धार्मिक क्षेत्रमें बड़ा विप्लव उठ खड़ा हुआ। इस समय समाजमें दो प्रवृत्तियोंके सुधारक दिखाई पड़े। अपने जीवन दर्शनकी महनीय चेतनाओं और अनुभूतियोंसे तथा परम्परा द्वारा आती हुई साधना-पद्धतियोंमें किसी प्रकारकी विषमता न होनेसे व्यास, श्रीशंकराचार्य, श्रीरामानुजाचार्य, श्रीरामानन्द तथा तुलसीदास आदि चिन्तक पुरानी रूढ़ियों पर अटल रहते हुए युगानुसार साधना-पद्धतियोंकी नवीन व्याख्या करनेवाले प्रवृत्तिके सुधारकोंमें से थे।

दूसरी परम्पराके सुधारकोंमें बुद्ध, अश्वघोष, नागार्जुन, गोरख एवं महात्मा कबीर हैं, जिन्होंने परम्परासे आती हुई रूढ़िग्रस्त साधना पद्धति-का निषेधकर एक बार फिरसे मूल तत्वोंकी ओर संकेत करनेका प्रयत्न किया है।

महात्मा कबीरके आविर्भाव-कालमें* भारतीय सामाजिक परिस्थितियों-में बड़ी जटिलता आ गयी थी। जब मुसलमान यहाँ विजेता होकर आए थे, उस समय वे अपने साथ एक संस्कृति भी लाए, किन्तु भारत-आगमनके पूर्व ही मुसलमानी एकेश्वरवादी धर्म रूढ़िग्रस्त हो चुका था। भारतमें विजेताके रूपमें आने पर कालान्तरमें उलमा लोग सुल्तानोंकी इच्छानुसार धर्मकी व्याख्या करने लगे थे। उनका कथन था कि जो सुल्तानकी आज्ञाका पालन करता है, वही ईश्वरका आज्ञाकारी भी है। इस प्रकार मुसलमानोंके धर्ममें पाखण्डका स्फुरण स्पष्ट रूपसे होने लगा था। इसके पहलेसे ही मुसलमानोंके एकेश्वरवादकी प्रतिक्रिया सूफियों द्वारा हो चुकी थी; क्योंकि पारसियन साम्राज्यकी स्थापनाके साथ ही

* महात्मा कबीरका जन्म सं० १४५६ माना जाता है।

इस्लाम, कुरानसे पृथक् हो चुका था। इसका कारण था—कुरानका सात्विक जीवन; जिसमें वैभवको कोई स्थान न था। इधर साम्राज्य-स्थापनाके लिए वैभवकी आवश्यकता थी। इस परस्पर विरोधी विचार-धाराके परिणामस्वरूप मुसलमानोंके धर्ममें दो वर्ग हो गए—एक वह वर्ग था, जो इस्लामके व्यावहारिक प्राचीन मूलतत्वमें विकार न आने देना चाहता था और दूसरा वह जो शासकके साथ था। पहला वर्ग सूफ़ी कहलाता था और दूसरा कट्टर एकेश्वरवादी। भारतमें मुसलमानोंके साथ ये दोनों वर्ग आए।

महात्मा कबीरके आविर्भाव-कालमें इस प्रकार भारतीय एवं मुसलिम अनेक धार्मिक-धाराओंका प्रवाह चल रहा था; जिनमेंसे मुख्य धार्मिक-विचारधाराएँ थीं—१—भक्ति-मार्ग; जिसमें वैष्णव, शैव और शाक्त भक्तिधाराएँ सम्मिलित थीं। २—बौद्धोंकी सहजयानी शाखा, ३—नाथ-पन्थी योगधारा, ४—मुसलिम साधनाकी एकेश्वरवादी धारा और ५—सूफ़ीमतवाद।

१—भक्तिमार्ग

यों तो भक्तिका प्रारंभ ऋग्वेदसे ही होता है; किन्तु इसका महाभारतके नारायणीय-(सात्वत् सम्प्रदाय)-और विष्णुपुराण आदिमें प्रवाह चलता हुआ भागवतमें आकर अपनी उत्कर्ष सीमाको स्पर्श करता है। ऐसी ही अनेक महत्वपूर्ण कृतियाँ—जो भक्तिकी व्याख्यासे आछंकुलित हैं—गीता*, शाण्डिल्य सूत्र और नारदभक्ति-सूत्र हैं।

गीतामें कर्म, ज्ञान, योग एवं भक्ति सबको मान्यता यद्यपि दी गयी है; किन्तु गीता प्रतिपादित विषयोंमें भक्तिको सबसे अधिक प्रधानता दी गयी है, या यों कहा जा सकता है कि भक्ति-मार्गकी सर्वश्रेष्ठताका प्रथम

* 'गीता' यद्यपि महाभारतके अन्तर्गतकी ही रचना है, किन्तु इसकी अलग विशेषता मान ली गयी, अतः यह अंश अलग कर लिया गया है—लेखक।

दर्शन यहीं होता है। शाण्डिल्यसूत्रके अनुसार योग और ज्ञानके समुचित समन्वयके फलस्वरूप भक्तिका प्रादुर्भाव होता है, जो जीवको भव-बन्धन-मुक्त करनेमें समर्थ है। इसी प्रकार नारदभक्ति-सूत्रमें भी कर्म, ज्ञान अथवा योगमार्गसे भक्तिको ही श्रेष्ठ बताया गया है। कर्म, उपासना एवं ज्ञानके स्वरूपका दर्शन निगम (वेद) करता है और इनके साधन-भूत उपायोंको आगम स्पष्ट करता है; जिसमें भक्तिको ही प्रधानता दी गयी है। इष्ट-देवताके भेदके कारण आगम तीन तरहके हैं—

१ वैष्णवागम, २ शैवागम, और ३ शाक्तागम।

१—वैष्णवागममें विष्णुकी उपासनामें साधनभूत उपायोंका, २—शैवागममें इसी प्रकार शिवकी उपासनामें साधनभूत उपायोंका और ३—शाक्तागममें शक्तिकी उपासनामें साधन-भूत उपायोंका वर्णन है।

वैष्णव-भक्ति—विष्णुको नारायण वासुदेव एवं भागवत नामोंसे सम्बन्धित किया गया है। गीतामें जिस भक्तिमार्गका उल्लेख है, वह वासुदेव-धर्म है। बुद्धदेवके आविर्भावके पीछे इस भक्तिप्रधान सम्प्रदाय-को भागवत-धर्म कहा गया। शाण्डिल्य एवं नारदके भक्ति-सूत्र तथा पांचरात्र, संहिताएँ आदि समवतः इसी समय बनी हैं। कुछ विद्वान् मानते हैं—ईसाकी पाँचवीं-छठीं शताब्दीमें दक्षिणी भारतके तामिल प्रान्तमें विष्णु-भक्तोंकी एक प्रबल शाखा प्रतिष्ठित थी, जो अलवार नाम से प्रसिद्ध है। जब स्वामी शंकराचार्य वेदान्त-ज्ञानका प्रचार कर रहे थे, तब उन्होंने इन भक्तोंकी कड़ी आलोचना की थी। कालान्तरमें स्वामी रामानुजाचार्यने इसकी वेदमूलकता प्रमाणित कर इसे पुनः प्राणवन्त किया और उत्तरी भारतमें भी यह श्रीरामानुजाचार्य, माधवाचार्य, विष्णु-स्वामी और निम्बार्काचार्य द्वारा फैला। आगे चलकर श्रीरामानन्द, चैतन्य तथा वल्लभाचार्यने इसे बड़ी लोकप्रियता प्रदान कराई। उत्तरी भारतमें आते-आते वैष्णव-धर्म में राम और कृष्णके अवतारोंकी अलग-

अलग भक्ति-धाराएँ प्रवाहित होने लगी थीं। ज्ञान और कर्म-मार्गका भक्तिके अन्तर्गत समावेश होनेसे उपर्युक्त आचार्योंने इसकी वेदमूलकता प्रमाणित कर इसे अधिक पुष्ट कर दिया था। इधर स्वामी शंकराचार्यके वेदान्तमें जब भक्तिको आश्रय न मिल सका, तब उसकी आलोचना करते हुए उपर्युक्त आचार्योंने विशिष्टाद्वैत—श्रीरामानुजाचार्यने, द्वैत—श्रीमध्वाचार्यने, द्वैताद्वैत—श्रीनिम्बार्काचार्यने तथा शुद्धाद्वैत—श्रीवल्लभाचार्यने वेदान्तका नए ढंगसे प्रतिपादन किया।

शैव-भक्ति—इसका सम्प्रदाय रूपमें प्रचलन पाशुपत-धर्ममें सबसे पहले पाया जाता है। पाशुपत लोग 'महेश्वर'की पूजा करते थे, ये महेश्वर शिव थे। इनका दर्शन सांख्य दर्शनके अधिक समीप है। तामिल प्रान्तमें ईसाकी पाँचवीं-छठी शताब्दीमें वैष्णवों एवं शैवोंमें संघर्ष चल रहा था, यह इतिहास प्रसिद्ध बात है। धीरे-धीरे शैव-सम्प्रदाय अन्तर्भारतीयरूप ग्रहणकर चुका था। इसकी एक प्रबल शाखा काश्मीरमें भी थी, जो वेदमूलक शैव-साधना थी। तामिल और काश्मीरके शैवोंकी साधना-पद्धति लगभग एक सी ही थी। अधिकांश विद्वान् ऐसा ही मानते हैं।

शाक्त सम्प्रदाय—विद्वानोंका कथन है कि सांख्य-दर्शनमें प्रकृतिका जो स्वरूप निरूपित है, यह सम्प्रदाय उसीको स्थूलताको मानकर चलता है। सांख्य-दर्शनके अनुसार प्रकृति स्वभावतः निष्क्रिय है; पुरुषसे संबंध होने पर ही उसमें कर्तृत्व शक्ति स्फुरित होती है। पुराणोंमें पुरुषको ईश्वर एवं प्रकृतिको उसकी शक्ति माना गया है। शक्ति-दर्शन मानता है कि पराशक्ति त्रिपुरसुन्दरीसे ही शब्द तथा सब वस्तुओंका उद्भव हुआ है। परमतत्व शिव हैं। शक्तिके स्फूर्तिरूप धारण करने पर शिवने उसमें तेजस् रूपसे प्रवेश किया, तब विन्दुका उद्भव हुआ। शिवमें शक्तिके प्रवेशसे नारीतत्व—नाद व्यक्त हुआ। ये ही दोनों तत्व—नाद और विन्दु—मिलकर अर्द्धनारीश्वर हुए। यही कामतत्व है। पुंतत्व सफेद और नारीतत्व अरुणवर्ण है। दोनोंसे कलाकी उत्पत्ति हुई है। इस काम

एवं कलाके और नाद तथा बिन्दुके योगसे ही सृष्टि हुई है। मूलतत्व अव्यक्त तथा अनन्त है। सृष्टिके प्रत्येक विकासमें उस शिवतत्वका आगम है। उस शिवकी अजा आद्या-शक्ति ही प्रकृतिरूपा है।

आराधनाके लिए महाशक्तिके दस महाविद्यारूप माने गए हैं १—महाकाली, २—उग्रतारा, ३—षोडसी (त्रिपुर सुन्दरी) ४—भुवनेश्वरी, ५—छिन्नमस्ता, ६—भैरवी, ७—धूमावती, ८—बगलामुखी, ९—मातंगी, और १०—कमला। इन सभी शक्तियोंके साथ परातत्वके दस आराध्य रूपोंकी उपासना होती है। क्रमशः उनके नाम हैं—१—महाकाल, २—अक्षोभ्य पुरुष, ३—पंचवक्त्र रुद्र, ४—त्र्यम्बक, ५—कबन्ध, ६—दक्षिणामूर्ति, ७—एकवक्त्ररुद्र, ८—मतङ्ग, ९—सदाशिव तथा १०—विष्णु। जीव आराधना एवं आचारनिष्ठासे तथा शक्तिकी कृपासे शिवत्वको प्राप्तकर शापमुक्त होता है। कालान्तरमें प्रकृति एवं पुरुषकी कल्पना साधारण स्त्री तथा पुरुषके रूपमें कर ली गयी। प्राणोंमें प्रकृतिके शक्तिरूपमें मान लेनेसे शक्ति-उपासनाका भी अधिक प्रचलन हुआ, किन्तु शैव एवं वैष्णवमतके समान उसे सफलता न मिल पायी। कालान्तरमें पौराणिक युगमें सभी देवताओंकी विशेषताओंके साथ उनकी शक्तियोंकी भी कल्पना करली गया थी और दूसरे शाक्तमतमें अनेक वामाचारोंके गृहीत हो जानेसे इसका लोक-प्रियताम अभाव-सा होने लगा। महात्मा कबीरके युगसे प्रथम ही मूल-साधनासे विचार-विषमतायुक्त शाक्तमत ही था।

२—बौद्धोंकी सहजयानी शाखा

भगवान् बुद्धके पश्चात् उनके शिष्योंने जब उनके मतका भाष्य करना चाहा तब, विचार-विषमताके कारण बौद्ध-धर्म तीन प्रधान मार्गोंमें बँट गया। १—हीनयान, २—महायान और ३—वज्रयान।

हीनयान मत गौतमको एक महापुरुष मानता था, जिन्होंने साधन द्वारा निर्वाण प्राप्त किया था। यह निवृत्ति प्रधान मत था, जिसका लक्ष्य

एव आराध्य 'अर्हत्' था। महायान भक्तिको प्रधानता देने लगा। हीनयानके भावुक भक्तोंने इसका प्रचार किया। हीनमतके ग्रन्थ पाली भाषामें थे। महायानका संस्कृतमें विस्तारपूर्वक साहित्य बना। इस मतके आराध्य 'बोधिसत्व' हैं। भगवान् बुद्ध सामान्य महापुरुष न माने जाकर अवतार माने गए। बौद्ध-धर्ममें आगे चलकर तांत्रिक साधनाएँ प्रचलित हो गयीं। इसे प्रधानता देनेवाली शाखा 'वज्रयान' कहलायी।

दर्शनकी दृष्टिसे बौद्धधर्मके चार भाग हैं—१—मध्यम-दर्शन, २—योगाचार, ३—सौत्रान्तिक और ४—वैभाषिक।

अनेक बाह्याचारों, पूजा-विधानों तथा जटिल नियमोंके गृहीत हो जाने से वज्रयान भी शिथिल होने लगा। इसकी प्रतिक्रियास्वरूप सहजयान आया, जिसने सहज मार्गसे सहजानुभूतिका निर्देश किया। इनकी यह सहज-भावना उपनिषदोंके ब्रह्मके समान है।

३—नाथपंथी योगधारा

इसकी उत्पत्ति रसायन मतसे संबंधित प्राचीनकालमें प्रचलित सिद्धोंके एक सम्प्रदायसे मानी जाती है। कुछ विद्वान् इसे सहजियोंका ही परिष्कृत-रूप मानते हैं। नाथपंथी योगियोंकी साधना पद्धतिमें शैवों, बौद्धों तथा प्राचीन रसायनियों आदि सभीके तत्त्वसन्निहित हैं। विशुद्ध छाया-साधना द्वारा जीवन-मुक्ति प्राप्त करनेकी ओर इस सम्प्रदायने लक्ष्य किया था। इस सम्प्रदायमें इन्द्रिय-निग्रह पर विशेष ध्यान दिया गया था। इसके प्रवर्त्तक गोरखनाथ थे, जिन्होंने पतञ्जलिके उच्च लक्ष्य—ईश्वर-प्राप्तिको लेकर हठयोगका प्रवर्तन किया। इस मतका प्रचार राजपूताना और पंजाबमे अधिक हुआ।

४—मुसलिम एकेश्वरवाद

अनेक देवताओंको मान्यता न देकर एक ही देवताको महानता प्रदान करना ही एकेश्वरवाद है।

'ला इलाहि इल्लिल्लाह मुहम्मदरसूलिल्लाह' अर्थात् अल्लाहका कोई अल्लाह नहीं, वह एकमात्र परमेश्वर है तथा मुहम्मद उनका रसूल या पैग़म्बर है। यह सिद्धान्त पहले था, किन्तु जब उल्माओंके द्वारा यह दोष-ग्रस्त हो गया; तब इनसे भिन्न सूफियोंने अपना अलग मत स्थिर किया। भारतमें मुसलमानोंके साथ ये दोनों धार्मिक धाराएँ भी आयीं।

५—सूफ़ीमतवाद

सातवीं शताब्दीमें इस्लाम धर्मकी जन्मदात्री पुण्य-भूमि अरबका बहुत बड़ा अशान्तिपूर्ण वातावरण था। इस समय शान्ति चाहनेवाले जन-समुदायको मुहम्मद साहबके जीवनसे तथा क़ुरानकी पवित्र आयतोंसे एक नयी दिशा झलकने लगी जो सूफ़ी-धर्मका मूल यहीं पर इस्लामको एक गहरा धर्म माननेमें है। सूफ़ी-मतके सम्बन्धमें अगले परिच्छेदमें विशेष विचार किया जायगा। भारत आनेपर सूफ़ियोंने उल्माओंसे पृथक रहकर अपने धर्मका प्रचार किया।

हिन्दी-काव्यकी भक्तिकालीन—(सं० १३७५–१७००) *—रचनाएँ उपर्युक्त धार्मिक विचार-धाराओंसे विशेष प्रभावित हैं, अतः भारतीय उपासनाकी परम्परा पर संकेत कर देना आवश्यक था।

भक्तिकालकी रचनाओंमें मुख्य प्रवृत्तियाँ जो पायी जाती हैं, उनमें ज्ञानाश्रयी शाखा या सन्त-काव्य, प्रेममार्गी (सूफ़ी) शाखा या प्रेम-काव्य, राम-भक्ति शाखा या राम-काव्य और कृष्ण-भक्ति शाखा या कृष्ण-काव्य निर्गुण और सगुण दो धाराओंके बीच प्रवाहित होनेवाली हैं। इन प्रवृत्तियोंमें पड़े हुए जो धारा विशेषके विशिष्ट कवि हैं, हम उनकी काव्य-पद्धति, रचनाएँ, भाषा पर अधिकार, मत और सिद्धान्त, साहित्यमें उनका स्थान एवं उनकी विशेषताका सिंहावलोकन करेंगे।

---

* आचार्य शुक्लजीने हिन्दी-साहित्यके पूर्वमध्यकालको भक्तिकाल माना है। दे०—'हिन्दी-साहित्यका इतिहास'।

हिन्दी-काव्यमें भक्तिकालके चार प्रमुख साधक

निर्गुणधारा

१—महात्मा कबीर—(सन्त काव्य)

२—मलिक मुहम्मद जायसी—(प्रेम-काव्य)

सगुणधारा

३—गोस्वामी तुलसीदास—(राम-काव्य)

४—महात्मा सूरदास—(कृष्ण-काव्य)

निर्गुणधारा

१. महात्मा कबीर (सन्त-काव्य)

ज्ञान-पंथके-प्रतिनिधि कवि कबीर हैं। इनका जन्मकाल विक्रम-संवत् १४५६ माना जाता है, ये जेठकी पूर्णिमाके दिन पैदा हुए। इनके जन्मके संबंधमें कहा जाता है कि ये किसी विधवा ब्राह्मणीके गर्भसे पैदा हुए थे, जिसने पैदा होनेपर इन्हें लहरताराके तालमें फेंक दिया था। अली या नीरू नामके जुलाहेने इन्हें देखा और घर लाकर पाला। महात्मा कबीरमें हिन्दू-भावसे भक्ति करनेकी प्रवृत्ति बाल्यकालसे ही थी, वे 'राम-राम' जपते और माथेमें तिलक लगाते थे। इनकी इस भावनाको इनके पालन-पोषण करनेवाले माता-पिता न रोक सके। बड़े होनेपर रामानन्दजीके द्वारा राम-नामका गुरुमंत्र इन्होंने पाया। आगे चलकर इन्होंने जुलाहेका धन्धा भी किया। संवत् १५७५ के लगभग इनका देहान्त हो गया।

१—कबीरपंथ—कबीर पंथमें मुसलमान भी थे, जो सूफी फकीर शेख तकीको ही इनका गुरु मानते थे; किन्तु अधिकांश विद्वान् लोग इनका गुरु रामानन्दजीको ही मानते हैं। यद्यपि कबीर श्रीरामभक्तिके प्रचारक स्वामी रामानन्दजीके शिष्य थे, किन्तु इन्हें वैष्णव-सम्प्रदायके अन्तर्गत नहीं माना जा सकता। रामानन्दजीके 'राम' से कबीरके 'राम' भिन्न थे। कबीरने दूरकी भ्रमण किया, हठयोगियों और सूफी संतोंसे इनका समागम हुआ, जिससे ये बहुत प्रभावित भी हुए; अतः निर्गुण उपासनाकी ओर ये विशेष प्रवृत्त हो गए। जिस दशरथसुत—रामकी उपासनाका आदेश स्वामी रामानन्द देते थे, उसे न ग्रहणकर कबीरने कहा—

'दशरथ सुत तिहुँ लोक बखाना। राम नामका मरम है आना।'

हिन्दुओंकी विचारधारामें जिस निर्गुण ब्रह्मका निरूपण ज्ञानमार्गके अन्तर्गत था, कबीरने उसे सूफियोंकी भाँति उपासना एवं प्रेमका विषय बनाया। हठयोगकी साधनाको वे उसकी प्राप्तिमें सहायक मानते थे। इस प्रकार कबीरके पंथको, भारतीय ब्रह्मवादके साथ सूफियोंके भावात्मक रहस्यवादसे, हठयोगियोंके साधनात्मक रहस्यवादसे तथा वैष्णवोंके अहिंसा-वाद-प्रपत्तिवादसे बड़ा बल मिला।

महात्मा कबीरका आविर्भाव ऐसे समयमें हुआ था, जब भारतीय समाजमें धार्मिक-क्षेत्रके अन्तर्गत बड़ी विषमता पैदा हो चुकी थी। ऊँच-नीचकी भावना ज़ोरों पर थी, जातियोंके व्यक्तिगत नियम कठोर होते जा रहे थे, नयी जातियाँ उत्पन्न होने लगी थीं। हिन्दू-मुसलमानका एक प्रश्न अलग ही था। महात्मा कबीरने अपनी पैनी दृष्टिसे सारे देशमें भ्रमण करते समय सब प्रकारकी अराजकताका अध्ययन किया। यद्यपि कबीर पढ़े-लिखे न थे, किन्तु सत्संगके प्रभावसे उनकी अलौकिक प्रतिभाका लोहा अधिकांश जन-समुदाय मानने लगा था, तीखी, व्यंग्यपूर्ण, मर्मभरी तथा रहस्यपूर्ण इनकी वाणी साधारण जनताको शीघ्रही अपनी ओर आकृष्ट कर लेती थी। कबीरको पहलेसे आती हुई साधना-पद्धतियाँ एक भी ऐसी न दिखाई पड़ीं; जो समुचित ढंगसे उन्हें अपनी ओर आकृष्ट करतीं। गुणके साथही सभी प्रकारकी साधना-धाराएँ दोषग्रस्त उन्हें अधिक लगीं। फल यह हुआ कि सबकी अच्छाइयोंको ग्रहण करते हुए उन्होंने अपना एक अलग पथ खड़ा किया, जिसमें नाथों, वैष्णवों, सन्तों, मुसल-मानों तथा सूफियोंकी भावनाओंका मिश्रण पाया जाता है। यह सब होते हुए भी निर्भयद्रष्टा महात्मा कबीरने अपना व्यक्तित्व सुरक्षित रखा, इसके आधार पर ही वे हिन्दू-मुसलमान ऐक्यका प्रतिपादन तथा रूढ़ि-वादका बहिष्कार कर सके। इनकी रचनाओंमें हिन्दुओंके मूर्ति-पूजन, व्रत, अवतारवाद एवं मुसलमानोंके पैग़म्बर, रोज़ा, नमाज़ कुरबानी आदिका

बहिष्कार है और इनके स्थान पर सच्चे हृदयसे ब्रह्म, माया, जीव, अनहद्नाद सृष्टि तथा प्रलयकी चर्चा एक ब्रह्मज्ञानी दार्शनिककी भाँति मिलती है। इन्होंने अपने दृष्टिकोणसे शुद्ध ईश्वर तत्व तथा सात्विक-जीवनका प्रचार किया है।

मूर्त्ति पूजाके संबंधमें वे कहते हैं :—

'जो पाथर कहँ कहते देव। ताकी बिरथा होवे सेव॥'

इसी प्रकार वे अवतारवादमें विश्वास नहीं करते :—

"दसरथ कुल अवतरि नहिं आया। नहि लंका के राय सताया॥
नहिं देवकि के गर्भहिं आया। नहिं यशोदा गोद खिलाया॥"

महात्मा कबीरके अनुसार समग्र विश्वमें परमतत्व परिव्याप्त है। शरीरमें प्राणकी भाँति वह समस्त सृष्टिमें समाया है। उनका इस संबंधमें कथन है :—

'हरि महि तनु है तनु महि हरि है सरब निरतर सोइरे।'

\+ + +

'जलि-थलि पूरि रहे प्रभु सुआमो। जत पेखउ तत अन्तरजामी॥'

\+ + +

'देही माहि विदेह है साहब सुरति सरूप।
अनन्त लोकमें रमि रहा जाके रंग न रूप॥

\+ + +

मनुष्यके हृदयमे भी वह निवास करता है, किन्तु अज्ञानवश उसे कोई देख नहीं पाता—

'जा कारन जग ढूढ़िया, सो तो घट ही माँहि।
परदा दीया भरमका तातैं सूझै नाहिं॥'

\+ + +

'तेरा साईं तुज्झमें ज्यों पुहपनमें बास।
कस्तूरी का मिरग ज्यों फिरि-फिरि ढूँढ़े घास॥'

वे कहते हैं कि इसी शरीरमें वे सभी ज्योतियाँ तथा सभी मंगलवाद्य मौजूद हैं, जो बाह्य जगतमें दिखाई पड़ते हैं। इसीमें विश्वव्यापी वह अनाहद्‌नाद भी सुनाई पड़ती है, किन्तु बहरे कानोंको सुनाई नहीं पड़ता जिसके ज्ञाननेत्र नहीं खुले हैं, उसे ज्योतिके दर्शन नहीं होते :—

"चन्दा झलकै यही घट माहीं। अंधी आँखन सूझै नाहीं॥
यहि घट चंदा यहि घट सूर। यहि घट बाजै अनहद तूर॥
यहि घट बाजै तबल निसान। बहिरा सब्द सुनै नहिं कान॥"

कबीर कहते हैं—जो सच्चा साधक है, उसे मन्दिर या मसजिद, काबे या कैलाशके चक्कर लगानेकी जरूरत नहीं। किसी क्रिया-कर्म, योग-वैराग्यमें उसकी खोज करनेकी जरूरत नहीं; हाँ, खोजनेवाला चाहे तो क्षणमात्रमें उसे पा सकता है।

"मोको कहा ढूढे बंदे मैं तो तेरे पासमें।
ना मैं मन्दिर ना मैं मसजिद ना काबे कैलासमें।
नातो कौनो क्रिया कर्ममें नहीं जोग बैरागमें।
खोजी होयतो तुरतै मिलिहौं पलभरकी तालासमें।
मैं तो रहौं सहर के बाहर मेरी पुरी मवासमें।
कहैं कबीर सुनो भाई साधो सब साँसनकी साँसमें।"

इस प्रकार धार्मिक-क्षेत्रमें समस्त रूढ़ियोंका खण्डनकर एक नवीन पंथ चला देनेवाले महात्मा कबीर कुछ जनताका प्रतिनिधित्व करने लगे। देशमें प्रचलित इन धार्मिक-सम्प्रदायोंके मूलतत्वोंने कबीरको इस भाँति प्रभावित भी किया कि इनकी उपेक्षा भी नहीं कर सकते थे। ज्ञानाश्रयी अर्थात् निर्गुण-धाराके अन्तर्गत जो प्रवृत्ति पायी जाती है, उसके प्रवर्त्तक महात्मा कबीर थे।

२—मत और सिद्धान्त—महात्मा कबीरने अद्वैतवाद और सूफी-मतके मिश्रणसे अपने रहस्यवादकी सृष्टिकी। इस रहस्यवादी सिद्धान्तके

अनुसार आत्मा परमात्मासे मिलकर एक स्वरूप हो जाती है। इसके मूलमें प्रेमकी प्रधानता है, जिसकी श्रेणी दाम्पत्य प्रेमकी है। इस रहस्य-वादमें कबीरने आत्माको स्त्री रूप देकर परमात्मा रूपी पतिकी आराधना की है। जब तक ईश्वरकी प्राप्ति नहीं हो जाती, तब तक आत्मा विरहिणी स्त्रीकी भाँति दुःखी रहती है। जब आत्मा ईश्वरको पा लेती है, तब रहस्यवादके आदर्शकी पूर्ति हो जाती है। ईश्वरकी उपासनामें महात्मा कबीरने अपनी आत्माको पूर्ण रूपसे पतिव्रता स्त्री माना है; क्योंकि वे परमात्मासे मिलनेके लिए अत्यन्त व्याकुल हैं। ईश्वरसे विरहका जीवन उन्हें असह्य है :—

"बहुत दिनन की जोवती बाट तुम्हारी राम।
जिव तरसै तुम मिलन कूँ मन नाहीं विश्राम" ॥ १

* *

"कै विरहित कूँ मीच दे कै आपा दिखलाइ।
आठ पहरका दाझणां मो पै सहा न जाय ॥" २

कबीरका रहस्यवाद अत्यन्त भावपूर्ण है; क्योंकि उसमें परमात्माके लिए अविचल प्रेम है। जब उसकी पूर्ति होती है, तो कबीरकी आत्मा एक विवाहिता पत्नीकी भाँति पतिसे मिलने पर प्रसन्न हो उठती है—

"दुलहिनी गावहु मंगलचार। हम घर आए हो राजाराम भतार।३

विरह और मिलनके पदोंमें ही महात्मा कबीरने रहस्यवादकी प्रतिष्ठा की है। सन्तमतके अन्य कवियोंने भी इसी रहस्यवादी ढंगकी रचनाएँ कीं; किन्तु कबीर जैसी अनुभूति उनमें नहीं है। इस मतके कवि अपने विचारोंको साधारण भाषामें प्रकट करनेको जब असमर्थ हुए हैं, तब उन्होंने किसी न किसी रूपकका आश्रय ग्रहण किया है। इन रूपकोंका अर्थ वे ही समझ पाते हैं, जो सन्तमतसे पूर्ण परिचित होते हैं। कबीरकी

---

१ कबीर-ग्रन्थावली पृष्ठ ८। २ कबीर-ग्रन्थावली पृष्ठ १०।
३ कबीर-ग्रन्थावली पृष्ठ ८७।

उलटवासियाँ प्रसिद्ध हैं। जैसे :—

"पहले पूत पीछे भई माइ। चेला के गुरु लागै पाइ॥
जल की मछली तरवर ब्याई। पकड़ि बिलाइ मुरगैं खाई॥
पुहुप बिना एक तरवर फलिया, बिन कर तूर बजाया।
नारी बिना नीर घट भरिया, सहज रूप सो पाया * ॥

इनका सम्बन्ध रहस्यवादसे है। कबीरने रूपकोंको प्राय: पशुओं, जुलाहेकी कार्यावली तथा दाम्पत्य-प्रेमसे लिया है।

महात्मा कबीरकी रचनामें गुरुका महत्व, नाम स्मरण, सगति कुसगति एव साधु और असाधुको विवेचना स्पष्ट रूपसे हुई है। गुरुके उपदेशसे ही मायाका भ्रम दूर होता है, जिससे साधकका मन निर्मल हो जाता है और सांसारिक विषय वासनाके प्रति उदासीनता प्रकट होने लगती है। आत्मतत्वका बोधकरा, साधकके मनमें गुरु ही स्थिरता प्रदान कराता है। महात्मा कबीरके अनुसार ज्ञान भक्तिकी एक सीढी मात्र है। ज्ञानोपदेशके द्वारा गुरु भक्तको भगवत्-प्रेमका पाठ पढाता है; इसीलिए शिष्यको भक्ति-क्षेत्रमें आनेसे पूर्व गुरुकी खोज कर लेनी चाहिए। सतगुरुकी खोजकर लेनेके पश्चात् शिष्यको चाहिए कि उसे वह आत्मसमर्पण कर दे। नीचे कुछ पद दिए जाते हैं :—

"माया दीपक नर पतग भ्रमि भ्रमि इवै पडत।
कहै कबीर गुरु ज्ञान के एक आध उबरन्त॥"
"थापणि पाई थिति भई, सतगुरु दीन्हीं धीर।
कबीर हीरा वणजिया, मानसरोवर तीर॥"

महात्मा कबीरने नाम स्मरणको बहुत बड़ा महत्व दिया है, जिसमें ध्यान धारणा, पद सेवा आदिको स्थान नहीं दिया गया है। नाम-स्मरण-को कबीरने जितना महत्व दिया है, उतना और किसी अन्य कविने नहीं दिया। वे कहते हैं और उनका इस पर दृढ विश्वास भी है कि.—

* कबीर ग्रन्थावली पृ० ६१।

"कबीर सुमिरण सार है और सकल जंजाल।
आदि अन्त सब सोधिया दूजा देखौं काल॥"

इसी भाँति महात्मा कबीरने सत्सगतिको भी बहुत महत्व दिया है, किन्तु इसका विचार भी कर लेना आवश्यक है कि सत्संगति करनेके पूर्व साधु-असाधुका निर्णय कर लिया गया है, अथवा नहीं। साधुओंकी पहचानके लिए कबीरने कुछ आवश्यक लक्षणोंको गिनाया है :—

निष्काम-भक्ति, विषय-हीनता, विरक्ति, हरि-प्रेम, संशय-हीनता और अन्य लोगोंके प्रति निःस्वार्थ आदर-भाव इत्यादि। कबीरने मनकी कपट, आशा, दुविधा और चिन्ता आदिको चेतावनी दी है, इन सभी मानसिक विकारोंसे दूर रहनेके लिए उन्होंने उपदेश दिया है।—

मन गोरख मन गोविन्दौ मन ही ओघड़ होइ।
जे मन राखै जतनकरि तौ आपै करता सोइ॥"

मनके ऊपर कबीरने बड़ी विस्तृत रचनाकी है। "कथनी बिना करनी कौ अग", "चित्त कपटी कौ अंग", "सारग्राही कौ अंग" "भेष कौ अग", "मधि कौ अंग" और "वेसास कौ अंग"– अर्थात् कथनी और करनीका रूप एक होना चाहिए। चित्तकी दुविधा और कपट दोनों ही बुरे हैं। तत्वग्रहण करनेकी शिक्षा आवश्यक है, माला, तिलक, मुंडन, गेरुआ वस्त्र आदि साधुओंका वेश अर्थात् वाह्याडम्बर व्यर्थ हैं। मध्य मार्गका प्रतिष्ठापन—अर्थात् पंडित मार्ग, लोक-मार्ग, द्वैत-अद्वैत, हिन्दू और मुसलमान आदिसे सभीके कल्याणके लिए मध्य मार्ग खोजना। चिन्ता त्यागकर ईश्वरमें दृढ़तापूर्वक प्रीति करना। कबीरकी रचनाओंसे पता चलेगा कि उनके निम्नलिखित मत मुख्य हैं—

१—गोविन्दकी कृपासे गुरुकी प्राप्ति होती है।

२—माया, मोह, तृष्णा, कांचन और कामिनीके प्रति विरक्ति, भक्ति और ज्ञानकी प्राप्ति आदि गुरुके ही द्वारा संभव है।

३—महात्मा कबीरका कथन है कि मनुष्यको भक्ति प्राप्तिके लिये

प्रयत्न करना आवश्यक है, जो गुरुकी सेवा और सत्संगतिसे ही संभव है। इसके लिये अपने अवगुणोंका परित्याग करते जाना तथा सद्गुणोंका संग्रह करते रहना बहुत आवश्यक है।

४—साधक अन्तमें विरह साधनामें प्रविष्ट होता है। अब उसके लिए मात्र नामस्मरणका ही आधार बच पाता है। विरहकी साधनामें पहुँचकर भक्त आत्म-समर्पण कर देता है। यही भावना 'लौ' नामसे विख्यात है।

५—आत्म-समर्पणकी भावना ईश्वरके प्रति हो। कबीरने अलख, राम, निरंजन और हरि आदि अनेक नाम लिया है, जो ब्रह्मके प्रतीक हैं। उनका कथन है कि जो निराकार है, उसके गुणों या अवगुणोंके वर्णन करनेकी क्षमता प्राणी-मात्रमें नहीं है। उनके इन नामोंके साथ मात्र अनुग्रहका भाव हो सकता है। इसके पश्चात् साधक प्रेम और आत्म-समर्पणका भाव प्रकट करता है। यह स्थिति आगे चलकर इतनी बढ़ जाती है कि साधक अपनेको 'रामकी बहुरिया' का अनुभव करने लगता है। इस प्रकार महात्मा कबीरके विचार, वैष्णव-मतके अत्यधिक समीप हैं। जो अन्तर है, वह आलम्बनमें कुछ हेर-फेर हो जानेके कारण साधनोंमें ही। अवतारवादी दृष्टिकोणको न अपनानेके कारण महात्मा कबीर रूप-विग्रह और ध्यान-धारणाको सर्वथा मानते ही नहीं; परन्तु 'लय' की स्थितिमें प्रविष्ट होनेके लिए गोरखमतमें प्रचलित कुंडलिनी, सुषुम्ना और षटकमल आदिके महत्वको मान लेते हैं। साधनाको इन्होंने सहज माना है। योग-साधनाके बाह्याचारोंको न मानते हुए भी कुंडलिनी जाग्रति करनेवाली योग-साधनाको थोड़ा-सा कबीरने ग्रहण किया है; किन्तु उसमें भी भक्तिको ही प्रधानता उन्होंने दी है।

ऊपर लिखा जा चुका है कि महात्मा कबीर एकेश्वरवाद, द्वितवाद, मूर्तिपूजा, कर्मकाण्ड, व्रत-उपवास, तीर्थयात्रा, वर्ण-व्यवस्था आदिके विरोधी हैं। उनके मुहावरेके अनुसार एकेश्वरवाद शब्द ठीक नहीं;

क्योंकि उनका ईश्वर परब्रह्म, निर्गुण और सगुण सबके परे है। वे अपने ईश्वरको 'सत्यलोक' का निवासी मानते हैं, किन्तु उसके लक्षण, कबीरदासने वैष्णव ग्रन्थोंमें सगुण ब्रह्मके लिए वर्णित लक्षणोंको ही माना है। भक्तिको छोड़कर उस 'सत्य' की प्राप्ति किसी अन्य साधनसे नहीं हो सकती। वे अपने ईश्वरका 'राम' शब्द द्वारा परिचय देते हैं। उनकी रचनामें उनके ईश्वरके पर्यायवाची शब्द, हरि, नारायण, सारंगपाणि, समरथ, कर्त्ता, करतार, ब्रह्म और सत्य आदि भी आए हैं।

महात्मा कबीर जन्मान्तरवादमें विश्वास करते थे। उनके इस पदसे प्रमाण मिलता है :—

"कासी का वासी मैं बाह्मन नाम मेरा परबीना।
एक बार हरि नाम बिसारा पकरि जोलाहा कीना॥"

अवतारवादके विशेषणों और ईश्वरकी सगुणसत्ताके क्रिया कलापों की अभिव्यञ्जना करते हुए भी वे अवतारको नहीं मानते क्योंकि—

"दसरथ सुत तिहुँलोक बखाना। राम नाम का मरम है आना॥"

'राम' से कबीरका अभिप्राय निर्गुण ब्रह्मसे है। वे लोगोंको सदा 'निर्गुण' राम जपनेका ही उपदेश देते थे। उनकी 'राम-भावना' एकेश्वर-वादके निकट होने पर भी भारतीय ब्रह्मवादसे बहुत मिलती है। वे कहते हैं :—

"खालिक-खलक, खलक में खालिक सब घट रह्यो समाई।"

अतः कबीरके राम सगुण और निर्गुण दोनोंसे परे हैं—

"अला एकै नूर उपनाया ताकी कैसी निन्दा।
ता नूर के सब जग किया कौन भला कौन मंदा॥"

महात्मा कबीर पढ़े लिखे तो थे नहीं, अतः उन्हें दार्शनिक ग्रन्थोंके अध्ययनका अवसर नहीं प्राप्त हुआ। उन्हें राम और रहीममें कोई अन्तर नहीं जान पड़ा। उस परमसत्ताके लिए वे राम, रहीम, अल्ला, सत्यनाम गोविन्द, और साहब आदि कोई भी नाम प्रयुक्त कर देते हैं, क्योंकि

उनके विचारसे उस परम सत्ताके अनन्त नाम हैं। आचार्य श्रीसीताराम चतुर्वेदी एम० ए० कबीरके सिद्धांतोंके सम्बन्धमें मानते हैं :—

"भौतिकवादसे रहित भारतीय ब्रह्मवादको ग्रहण करनेवाले कबीर पर जीवात्मा-परमात्मा और जड़-जगत् तीनोंसे भिन्न सत्ता माननेवाले भौतिकवादसे युक्त एकेश्वरवादका प्रभाव नहीं पड़ा। वे चैतन्यके अतिरिक्त और किसीका अस्तित्व नहीं मानते थे। आत्मा और जड़-जगत् अन्तमें उसी परमात्मामें विलीन हो जाता है। संसारमें चारों ओर उन्हें ब्रह्म ही दिखलाई पड़ता है। उनकी रचनाओंमें स्थान-स्थान पर इसी आत्मवादकी झलक दिखलाई पड़ती है।

"पाणी ही तें हिम भया, हिम है गया बिलाई।
जो कुछ था सोई भया, अब कुछ कहा न जाई॥"

"जिस प्रकार छोटेसे बीजके अन्दर बड़ा विशाल वृक्ष अन्तर्निहित रहता है, उसी प्रकार बीज-रूप ब्रह्मके अन्दर नाम रूपात्मक जगत् निहित रहता है, जिसे इच्छा होने पर ब्रह्म जब चाहता है, तब विस्तार करता है और अन्तमें अपनेमें समेट लेता है।

ब्रह्मवादियोंकी वही भावना कबीरके शब्दोंमें स्पष्ट दिखाई पड़ती है।

"इनमें आप, आप में सबहिन; मैं, आप-आप सूँ खेलै।
नाना भाँति घड़े सब भाँड़े रूप धरि-धरि मैलै॥"

३—सन्तमत का दार्शनिक दृष्टिकोण—इस मतके सन्तोंकी दार्शनिक विचार-धाराके सम्बन्धमें आचार्य रामचन्द्रशुक्लका मत है—"निर्गुण मतके सन्तोंके सम्बन्धमें यह अच्छी तरह समझ रखना चाहिये कि उनमें कोई दार्शनिक व्यवस्था दिखानेका प्रयत्न व्यर्थ है, उन पर द्वैत, अद्वैत, विशिष्टाद्वैत आदिका आरोप करके वर्गीकरण करना दार्शनिक पद्धतिकी अनभिज्ञता प्रकट करेगा। उनमें जो थोड़ा-बहुत भेद दिखाई पड़ेगा, वह उन अवयवोंकी न्यूनता या अधिकताके कारण जिनका मेल करके निर्गुण पंथ चला है। जैसे किसीमें वेदान्त-तत्वका अवयव अधिक मिलेगा,

किसीमें योगियोंके साधना-तत्वका, किसीमें सूफियोंके मधुर प्रेम-तत्वका और किसीमें व्यावहारिक ईश्वर भक्ति (कर्त्ता, पिता, प्रभुकी भावनासे युक्त) का। .....निर्गुण पंथमें जो थोड़-बहुत ज्ञान-पक्ष है, वह वेदांतसे लिया हुआ है, जो प्रेम-तत्व है, वह सूफियोंका है, न कि वैष्णवों का। "अहिंसा" और "प्रपत्ति" के अतिरिक्त वैष्णवत्वका और कोई अंश उसमें नहीं है। उसके 'सुरति' और 'निरति' शब्द बौद्ध सिद्धोंके हैं। बौद्धधर्मके अष्टागमार्गके अंतिम मार्ग हैं—सम्यक् स्मृति और सम्यक्समाधि "सम्यक्स्मृति" वह दशा है, जिसमें क्षण-क्षण पर मिटनेवाला ज्ञान स्थिर हो जाता है और उसकी शृङ्खला बँध जाती है, अतः 'सुरति' 'निरति' शब्द योगियोंकी बानियोंमें आए हैं, वैष्णवोंसे उनका कोई सम्बन्ध नहीं।*

सन्त-काव्यमें ऐसे ईश्वरकी कल्पनाकी गई है, जो मुसलमानों तथा हिन्दुओंके धर्ममें समान रूपसे ग्राह्य हो सके। वह रूप कुरूप-रहित है। वह एक है, वह सर्वशक्तिमय, सर्वव्यापक एवं अखण्ड ज्योतिस्वरूप है। उसे समझनेके लिए आत्मज्ञानकी आवश्यकता है। वास्तवमें ईश्वरके इस रूपका प्रचार हिन्दुओं और मुसलमानोंकी संस्कृतिके मिश्रणसे हुआ। इस सम्प्रदायमें जहाँ एक ओर अवतारवाद, मूर्ति पूजा तथा तीर्थ-व्रत आदिका विरोध है, वहाँ दूसरी ओर नमाज, रोजा और हलाल आदिका भी निषेध है। कर्मकाण्डके अन्तर्गत जितने बाह्याडम्बरके रूप उपस्थित हो सकते हैं, सतमतमें उनका बहिष्कार सब तरहसे किया गया। वास्तवमें हिन्दू और मुसलमान दोनोंके धर्मोंमें जिन कर्मकाण्डोंके द्वारा विषमता पैदा हो सकती थी, उसका बहिष्कार आवश्यक समझा गया। ऐसी दशामें सन्त-काव्य ईश्वरके तात्विकस्वरूपकी ही मीमांसा करता है। जिसमें संस्कृति-

---

* आचार्य शुक्लका "हिन्दी-साहित्यका इतिहास" छठां संस्करण पृ० ९२ तथा ९३ देखिये।

विचारधारा और बौद्धिक गवेषणाके लिए कोई महत्त्वपूर्ण स्थान नहीं है। अतः इस मतका दार्शनिकपक्ष किसी एक दार्शनिक श्रेणीके अन्तर्गत नहीं आ सकता, क्योंकि भारतीय ब्रह्मज्ञान; योग-साधना और सूफियोंके प्रेमतत्त्वके मिश्रणसे अपना सिद्धान्त बनाकर उपासनाके क्षेत्रमें यह मत अग्रसर हुआ है।

महात्मा कबीरने ईश्वरको सब गुणोंसे परे कहा है। उनका कथन है कि ईश्वरको किसी गुण विशेषसे विभूषित करना, उसे सीमित करना है।

"बाहर कहौं तो सतगुरु लाजै, भीतर कहौं तो झूठा लो"
"कोई ध्यावै निराकार को, कोई ध्यावै आकाश।
वह तो उन दोउन ते न्यारा जाने जाननहारा॥"

वास्तवमें वह निर्गुण और सगुणसे परे है :—

"अपरम, परम रूप मगु नाहीं तेहि संख्या आहि।
कहहिं कबीर पुकारि के अद्भुत कहिए ताहि॥
एक कहूँ तो है नहीं, दो कहूँ तो गारि।
है जैसा तैसा रहै, कहैं कबीर विचारि॥"

और उसके लिए एक तथा दोकी संख्या भी नहीं कही जा सकती। मुसलमान लोग उसे एक कहते हैं, तो हिन्दू लोग उसे अनेक कहते हैं; किन्तु वह संख्यामें नहीं बांधा जा सकता। परमात्मा सबसे परे है। वहाँ तक किसीकी गति नहीं है :—

"पंडित मिथ्या करहु विचारा, नहि तहँ सृष्टि न सिरजनहारा
थूल अस्थूल पवन नहिं पावक, रवि ससि धरनि न नीरा।
जोति सरूप काल नहिं उहवाँ बचन न आहि सरीरा।"

उसका जो वास्तविक स्वरूप है, वह अकथनीय है, उसे 'सैना' और 'बैना'से ही समझना पड़ता है, अब यह सिद्धान्त यहींसे रहस्यवाद हो जाता है; जिसके कथनके लिए रूपकों और अन्योक्तियोंका आश्रय ग्रहण करना पड़ता है। इतना सब कुछ होते हुए भी ईश्वरकी समग्र संसारमें

व्याप्त मानते हुए भी कबीर उसके दो विशेष रूप मानते हैं। एक शब्द-स्वरूप और दूसरा ज्योतिस्वरूप।

यद्यपि मुसलमानोंने भी खुदाको नूरके रूपमें ही देखा है, तथापि ज्योतिकी भावना बहुत पुरानी है। उपनिषदोंमें भी परमात्माको ज्योतिस्वरूप कहा गया है।

"अन्तः शरीरे ज्योतिर्मयो हि शुभ्रो यं पश्यन्ति यतयः क्षीण दोषा।"

महात्मा कबीरने भी उसे अपने अन्तरमें ढूँढ़नेको कहा है :—

"मोको कहा ढूँढ़े बन्दे मैं तो तेरे पास में"

उसी परमात्मासे सारे संसारकी उत्पत्ति होती है उसके अतिरिक्त संसारमें और कोई नहीं है, इसके विषयमें कबीरका कहना है—

"साधो एक आप जग माहीं।
दूजा करम भरम है, किरतिन ज्यों दरपनमें भाईं।
जल तरंग जिमि जल तें, उपजे फिर जल माहि रहाई॥"

उन्होंने अद्वैतवादकी भी ओर संकेत किया है—

"कौन कहन को कौन सुननको दूजा कौन जना रे।
दरपन में प्रतिबिम्ब जो भासे आप चहूँ दिसि सोई॥
दुविधा मिटे एक जब होवे तो लख पावे कोई।
जैसे जल तें हेम बनत है, हेम घूम जल होई॥
तैसे या तत वाहू तत सो फिर यह और वह सोई॥"

एक उदाहरण और :—

"दरियाव की लहर दरियाव है जी, दरियाव और लहर भिन्न कोयम।
उठे तो नीर है बैठता नीर है, कहो किस तरह दूसरा होयम॥
उसी नाम को फेर लहर धरा, लहर के कहे पानी खोयम॥"

कबीरने मायाको एक परमशक्ति माना है जिसका प्रभाव बड़े-बड़े ऋषियोंके ही नहीं, देवताओं तकके भी ऊपर है।—

"माया महा ठगिनि हम जानी।

तिरगुन फाँस लिए कर डोलै बोलै मधुरी बानी।
केशव के कमला है बैठी, सिव के भवन भवानी॥
पंडा के मूरत है बैठी, तीरथ में भइ पानी।
योगीन के योगिन है बैठी, राजा के घर रानी॥
काहू के हीरा है बैठी, काहू के कौड़ी कानी।
भक्तन के भक्तिनि है बैठी, ब्रह्मा के ब्रह्मानी॥
कहत कबीर सुनो भइ सन्तो, यह सब अकथ कहानी॥"

किन्तु इस घोर मायासे छुटकारा तभी मिल सकता है, जब 'पीव' की कृपा होती है—

"बहु बंधन तें बाधिया, एक बिचारा जीव।
का बल छूटै आपने जो न छुड़ावै पीव॥"

भगवत् कृपाको केवल कबीरने ही माना हो, सो बात नहीं है; प्रायः सभी सम्प्रदायके सन्त इसे मानते हैं। महात्मा तुलसीदासकी भाँति कबीर भी दो प्रकार की माया मानते हैं:—

"माया दोही भाँति की देखो ठोक बजाय।
एक गहावै राम पै एक नरक लै जाय"—'कबीर'

"गो गोचर जहँ लगि मन जाई। सो सब माया जानेहु भाई।
तेहिकर भेद सुनहु तुम्ह सोऊ। बिद्या अपर अबिद्या दोऊ॥
एक दुष्ट अतिसय दुख रूपा। जायस जीव परा भव कूपा॥
एक रचइ जग गुन बस जाकें। प्रभु प्रेरित नहिं निजबल ताकें॥"—'तुलसी'

अन्तमें हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि कबीरका दर्शन थोड़ा-बहुत सभी दर्शनोंके सिद्धान्तोंसे मिलता है। किसी एक दर्शनके ही सभी सिद्धान्त इनके नहीं हैं।

४–रचनाएँ और उनका साहित्यिक मूल्यांकन, काव्य-पद्धति– कलात्मकताकी दृष्टिसे सन्तमतका काव्य निम्नकोटिका है। इस श्रेणीके अन्तर्गत आनेवाली रचनाएँ फुटकल दोहों या पदोंके रूपमें मिलती हैं,

जिनकी भाषा तथा शैली प्रायः अव्यवस्थित तथा ऊटपटांग है। इस वर्गकी भावना शास्त्रीय पद्धतिसे रहित होनेके कारण शिक्षित वर्गको अपनी ओर आकृष्ट न कर सकी। इस मतके सिद्धान्तों और विचारोंकी काव्यके अन्तर्गत जो मीमांसाकी गयी है, वह दो-एक प्रतिभा-सम्पन्न कवियोंकी रचनाओंको छोड़कर, महत्वहीन है, क्योंकि इस मतके कवियोंकी रचनाओंमें ज्ञान-मार्गकी सुनी-सुनाई बातोंका पिष्टपेषण एवं हठयोगकी बातोंके कुछ रूपक (भद्दी तुकबंदियों) का ही आधिक्य है। भक्ति-रसमें मग्न करनेवाली सरलताका सर्वथा अभाव-सा है। यही कारण था कि जनताका अधिकांश समुदाय इसे ग्रहण न कर सका; किन्तु इतना तो मानना ही होगा कि अशिक्षित साधारण जनताको इस सन्तमतने बहुत प्रभावित किया। साहित्यिक क्षेत्रमें इस मतका उतना महत्व नहीं रहा, जितना कि धार्मिक क्षेत्रमें था; क्योंकि मुसलमानोंका शासन प्रतिमा-पूजनके लिए सर्वथा प्रतिकूल था, वे मूर्तियाँ तोड़नेमें लगे थे और वे हिन्दू-धर्मकी मूर्ति-सम्बन्धी प्रवृत्तिका अन्त कर देना चाहते थे। हिन्दू मतावलम्बियोंके समक्ष एक जटिल समस्या थी, किन्तु इसका सुलझाव, सन्तमतमें देनेकी चेष्टा की गई। इसके प्रवर्त्तक महात्मा कबीर थे। उन्होंने हिन्दू और मुसलमानी धर्मोंके मूल सिद्धान्तोंके मिश्रणसे एक नवीन पंथ खड़ा किया। तात्विक-दृष्टिसे सन्त साहित्यका वर्ण्य-विषय प्रधानतः दो भागोंमें विभक्त हो सकता है। प्रथम तो आध्यात्मिक है और द्वितीय सामाजिक।

आध्यात्मिक भावनाके अन्तर्गत निराकार ईश्वरका गुणगान है, ईश्वरानुभूतिमें जितने साधन हो सकते हैं, उनका वर्णन—जैसे गुरु, भक्ति, साधु संगति और विरह आदि। इसके अन्तर्गत दया, क्षमा, संतोष, भक्ति, विश्वास, मौन और उच्च विचार आदिको स्थान दिया जाता है। सामाजिक भावनाके अन्तर्गत उपर्युक्त भावनाओंका जागरण कर कुरुचिपूर्ण भावनाओंका दमन कर, जैसे—माया, तृष्णा, कंचन, कामिनी, निन्दा, मांसाहार एवं तीर्थ व्रत इत्यादिसे बचकर शुद्ध अन्तःकरणसे ईश्वरका

चिन्तन करना आवश्यक है। सन्त काव्यके अन्तर्गत यदि विचार किया जाय, तो समग्र-काव्य आध्यात्मिक आधार ग्रहण करता है; किन्तु इस संत साहित्यका अध्ययन करनेसे ज्ञात होगा कि ये सन्त न तो निराकारकी ठीक उपासना कर सके हैं और न साकारकी पूरी भक्ति ही। यद्यपि इन सन्तोंके मतका प्रचार साधारण जनतामें हुआ, किन्तु ईश्वरकी भावनाका रूप बहुत अस्पष्ट रह गया। उसे न तो निराकार एकेश्वरकी उपासना कही जा सकती है और न साकारकी भक्ति ही।

सन्त-साहित्यमें मुसलमानी प्रभाव बहुत अधिक पाया जाता है, क्योंकि संतमत मुसलमानी संस्कृतिके अधिक निकट है। हिंदू-धर्मकी रूपरेखा होते हुए भी इसके निर्माणमें इस्लामका हाथ प्रमुख रहा। इस विचारधाराके अंतर्गत दो संस्कृतियों और दो धर्मोंकी धारा मिलकर प्रवाहित हुई है। इसके अन्तर्गत जो मूर्तिपूजाका विरोध और जाति-बन्धनका बहिष्कार पाया जाता है, वह केवल इस्लामकी देन कही जा सकती है।

सन्त-साहित्यमें जिन सिद्धान्तोंकी चर्चा है, वे अनेक बार दोहराए गए हैं। किसी कविने अपनी प्रतिभासे कोई मौलिक सन्देश देनेका प्रयत्न नहीं किया। एक ही बात बार-बार एक ही ढंगसे इस श्रेणीके कवियोंने शब्दोंके हेर-फेरसे कही हैं, जो साहित्यिक दृष्टिसे महत्वहीन है।

सन्त-साहित्यके अन्तर्गत छोटे-बड़े अनेक कवि हैं, किन्तु कबीरदास, रैदास या रविदास, धर्मदास, गुरुनानक, दादूदयाल, सुन्दरदास, मलूकदास और अक्षरअनन्य विशेष उल्लेखनीय हैं, इन कवियोंमें महात्मा कबीरदास संतमतके प्रधान प्रवर्त्तक थे और साथ ही प्रतिनिधि कवि भी।

५ महात्मा कबीर और उनकी रचना चातुरी—कबीरकी कितनी रचनाएँ हैं, यह एक सर्वसम्मतिसे नहीं निश्चय किया जा सकता; क्योंकि कबीरके सम्बन्धमें जब 'मसि कागद छुआ नहीं' निश्चित है तो वे अपनी रचनाओंको लिपिबद्ध तो कर नहीं सके, निर्विवाद है। लिपिबद्ध करनेका कार्य तो उनके शिष्योंने किया होगा। यही कारण है कि

महात्मा कबीरकी रचनाओंका शुद्ध पाठ नहीं मिल पाता। किन्तु विद्वानोंने इनके ५७ ग्रन्थोंको माना है जिनमें लगभग बीस हजार पद्य हैं।*

इन ग्रन्थोंका वर्ण्य-विषय प्रायः एक ही है। सभी ग्रन्थोंमें ज्ञानोपदेशकी ही चर्चा है; जिसमें योगाभ्यास, भक्तकी दिनचर्या, सत्य-वचन, प्रार्थना, विनय, नाम-महिमा, सन्तोंका वर्णन, आरती उतारनेकी रीति, माया विषयक सिद्धान्त, सत्पुरुषनिरूपण, रागोंमें उपदेश, गुरु-महिमा, सत्संगति और स्वर-ज्ञान आदिका विवरण है। महात्मा कबीरकी रचनाओंमें काव्य-तत्वका उतना प्राधान्य नहीं है, जितना कि सिद्धान्तोंके प्रतिपादनका। यही कारण है कि इनकी रचनाओंमें साहित्यके सौन्दर्यका साक्षात्कार नहीं हो पाता; किन्तु उसमें एक महान् सन्देश तो मिलता ही है। वास्तवमें सम्पूर्ण सन्त-साहित्यमें साहित्यिकताका भलीभाँति निर्वाह नहीं हो पाया है। इसमें तो भाव मिलेंगे, सिद्धान्त मिलेंगे और मिलेंगे आत्म-निर्माण संबंधी उपदेश। इस स्थल पर उनकी कुछ उत्कृष्ट रचनाओं पर विचार कर लेना आवश्यक है।

महात्मा कबीर रहस्यवादी कवि थे, जिसके आधार पर उन्होंने परमात्माको पति रूपमें और आत्माको पत्नी रूपमें चित्रित किया है, ऊपर ऐसा लिखा जा चुका है। कबीरकी कल्पना बड़ी सुन्दर है। इसीके कारण उनकी रचनामें कुछ न कुछ साहित्य सौष्ठवके भी दर्शन होजाते हैं। अर्थात् उनकी रचनामें विप्रलम्भ तथा संयोग-शृंगारके स्रोत प्रवाहित होते दिखायी पड़ते हैं। इनमेंसे विप्रलम्भ शृंगारका वर्णन संयोग-शृंगारकी अपेक्षा अधिक सुन्दर और मर्मस्पर्शी है। कबीरके काव्यमें वाग्वैदग्ध्य और उक्ति वैचित्र्यकी अच्छी छटा दिखाई पड़ती है। लोक-व्यवहारकी अनेक बातें अनूठे ढंगसे कहकर जनताको अपनी ओर आकृष्ट कर लेनेकी

---

* डा० रामकुमार वर्मा कृत "हिन्दी साहित्यका आलोचनात्मक इतिहास" पृ० २५८ तीसरा संस्करण देखिए।

कबीरदासमें अद्भुत प्रतिभा थी। इन्हींके द्वारा कबीरदासने नीति और धर्मका उपदेश दिया है। नीचे लिखे दोहे कितने प्रसिद्ध हैं:—

"आगे दिन पीछे गए, हरि सों किया न हेत।
अब पछताए होत क्या चिड़ियाँ चुँग गईं खेत॥"
कुसल कुसल ही पूछते, जग में रहा न कोय।
जरा मुई न भय मुआँ कुशल कहाँ ते होय॥
झूठे सुख को सुख कहै मानत है मन मोद।
जगत चबेना काल का कुछ मुख में कुछ गोद॥"

नारीके संबंधमें कबीरका मत है:—

"नारी की झाईं परत अन्धा होत भुजंग।
कबिरा तिनकी कौनगति नित नारी को संग॥"
"साँप बीछि को मंत्र है, माहुर झारे जात।
विकट नारि पाले परी, काटि करेजो खात॥"
"कनक कामिनी देखि कै तू मत भूल सुरंग।
बिछुरन मिलन दुहेकरा, कैंचुकि तजै भुजंग॥"

कबीरदास अपनी भावाभिव्यंजनाके लिए रूपकोंका सहारा लेते हैं और भावोंको स्पष्ट करतेमें वे उन्हींके द्वारा सफल होते हैं।

"काहे री नलिनी तू कुम्हिलाँनी। तेरे ही नालि सरोवर पानी।।टेक।।
जल मैं उत्पत्ति जल मैं बास। जल मैं नलिनी तोर निवास॥
न तल तपति न ऊपरि आगि। तोर हेत कहु कासनि लागि॥
कहै कबीर जे उदिक समान। ते नहिं मुए हमारे जान॥"

अर्थात् हे जीवात्मा! तू दुःखी क्यों है? तेरे समीप ब्रह्मरूपी जल फैला हुआ है। तेरी उत्पत्ति उसी जलसे है, और उसीमें तू रहता भी है। अतएव तेरे चारों ओर दुःखका क्या काम? तुमने कहीं मायासे तो मित्रता नहीं कर ली है? हे जीवात्मा! यदि तू ब्रह्मरूपी जलसे [illegible] लेगा तो अमरपद प्राप्त कर लेगा। इसी प्रकार एक पद औ[illegible]

स्वरूप दे देना उचित है :—

"सुनु हंसा प्यारे सरवर तज कहाँ जाय।
जेहि सरवर बिच मोतिया चुगत होते बहुविधि केलि कराय॥
सूखे ताल पुरइन जल छोड़े कवल गइल कुँमलाय।
कहहिं कबीर अबहिं के बिछुड़े, बहुरि मिलहु कब आय॥"

अर्थात् हे प्यारे हंस (जीव)! इस शरीर (सरवा) को त्यागकर तू कहाँ जा रहा है? तुम्हारे जाते ही यह शरीर (ताल) सूख जायगा। नेत्रों (पुरइन) से आँसू गिरने लग जायगा और मुख (कमल) मुरझा जायगा। इस बार विछोह होनेसे क्या फिर कभी मिल सकोगे?

जीवात्माका शरीर छोड़नेका कितना सुन्दर भावपूर्ण वर्णन है। इसमें ज्ञान और भावुकताका कितना सुन्दर समन्वय है!

इनके अतिरिक्त प्राकृतिक नियमोंके विरुद्ध जान पड़नेवाली उल्टबासियाँ कबीरदासकी रचनाओंमें मिलती हैं, किन्तु साधारण अर्थ इन पदोंका लगानेसे तो सार-रहित ये पद जान पड़ते हैं; किन्तु इनके अन्तर्गत हमें तात्विक-सिद्धान्त मिलेंगे। दो-एक पद नीचे दिए जाते हैं :—

"अवधू जगत नींद न कीजे।
काल न खाय कलप नहिं व्यापै, देही जुरा न छीजै॥ टेक॥
उलटी गंग समुद्रहि सोखैं' ससिहर सूर गरासै॥
नवग्रिह मारी रोगिया बैठे, जल में ब्यंब प्रकासै॥
डाल गह्यां तैं मूल न सूझै, मूल गह्या फल पावा॥

*　　　　*

अंबर बरसै धरती भीजै, यहु जानैं सब कोई॥
धरती बरसै अंबर भीजै, बूझै बिरला कोई॥"

६—माया और उसपर अधिकार—महात्मा कबीरकी वाणीका संग्रह 'बीजक' नामसे प्रसिद्ध है। 'रमैनी' 'सबद, और 'साखी' नामसे इसके तीन भाग हैं। जिसमें हिन्दू, मुसलमानोंको फटकार दी गयी है,

वेदान्ततत्व, संसारकी अनित्यता, हृदयकी पवित्रता, प्रेम-साधनाकी कठिनता; तीर्थाटन, मूर्तिपूजाकी निस्सारता; मायाकी प्रबलता; हज, नमाज, व्रत और आराधनाकी गौणता आदि विषयोंका निरूपण हुआ है। साम्प्रदायिक शिक्षा और सिद्धान्तके उपदेश प्रधानतः 'साखी' के अन्तर्गत वर्णित हैं, जो दोहेमें है। इसकी भाषा खड़ी बोली (राजस्थानी, पंजाबी मिली हुई) है। इसके अतिरिक्त 'रमैनी' और 'सबद' मे गानेके पद हैं, जो भाषाकी दृष्टिसे काव्यकी ब्रजभाषा तथा पूरबी बोलीका कहीं-कहीं व्यवहार माना जायगा।

कबीरकी भाषा पर विचार करते समय सबसे बड़ी समस्या यह खड़ी होती है कि उनकी रचनाका मूल रूप अप्राप्य है। इनकी रचनामें पूर्वी, पश्चिमी, पंजाबी, ब्रज, राजस्थानी, अवधी, मैथिली, बंगाली, अरबी और फारसी आदि सभी भाषाओंके शब्द पाये जाते हैं। आचार्य शुक्लजीके शब्दोंमें इनकी भाषाको सधुक्कड़ी भाषा ही कहना ठीक होगा। इनके पढ़े-लिखे न होनेके कारण इनके काव्यमें व्याकरणके नियमोंका पालन (लिंग, वचन, और कारक आदिका शुद्ध रूप) नहीं दिखायी पड़ता। इनके काव्यमें भाषाकी स्थिरता और एकरूपता नहीं है। शब्द-ज्ञानके अभावसे इनकी भाषा साहित्यकी सुन्दरतासे रहित और भावाभिव्यंजनामें असमर्थ हो जाती है।

रचनामें नहीं मिलता। इतना सब कुछ होते हुए भी कबीरने जब अपनी रचना साहित्यके दृष्टिकोणसे नहीं की, तब उसको साहित्यकी शास्त्रीय कसौटी पर कसना ठीक भी नहीं।

७—साहित्यमें स्थान—यद्यपि महात्मा कबीरने पिंगल और अलंकारके आधार पर काव्य-रचना नहीं की, तो भी उनकी उक्तियोंमें कहीं-कहीं विलक्षण प्रभाव और चमत्कार दिखायी पड़ते हैं। वास्तवमें काव्यकी मर्यादा मानव-जीवनकी भावात्मक और कल्पनात्मक विवेचनामें होती है। विचार किया जाय तो कबीर भावनाकी अनुभूतियोंसे संयुक्त हैं, वे जीवनके अत्यन्त निकट हैं, इसलिए वे महाकवियोंमें भी गिने जा सकते हैं। यद्यपि इनकी कवितामें छन्द और अलंकार गौण हैं, किन्तु इन्होंने अपनी रचनाओंमें एक महान् सन्देश दिया है। इस सन्देशकी अभिव्यक्ति-प्रणाली अलंकारों और शास्त्रीय-पद्धतियोंसे रहित होने पर भी काव्यमय है। इसमें तो सन्देह नहीं, कि महात्मा कबीरकी रचनामें कलाका अभाव है, पद-विन्यासका कौशल नहीं है, "उलटवासियों" में क्लिष्ट कल्पना है, भाषाका परिमार्जित रूप नहीं है; किन्तु भावुक और स्पष्टवादी व्यक्ति होनेके नाते उन्होंने अपनी प्रतिभाके सहारे अपने सन्देशोंको भावनात्मक रूप देकर अपनी रचनाओंको हृदयग्राही बना ही दिया।

धर्मकी जिज्ञासा उठानेके लिए महात्मा कबीर उल्टवासियोंकी रचना करते थे। अनेक प्रकारके रूपकों एवं अन्योक्तियों द्वारा इन्होंने ज्ञानका उपदेश दिया है, जो नवीन न होने पर भी वाग्वैचित्र्यके कारण साधारण अशिक्षित जनताको चकित करता रहा।

इतना होते हुए भी भारतीय शिक्षित-समाज पर प्रत्यक्ष रूपसे कबीरका प्रभाव कोई विशेष नहीं पड़ सका; किन्तु स्वभावमें इस भावनाकी लहर व्याप्त तो होही गई कि सबका ईश्वर एक है और सब ईश्वरके बन्दे हैं, जो हरिकी वन्दना करता है, वह हरिका दास है—'हरि को भजै सो हरि का होई। जाति-पाँति पूछै नहिं कोई॥" कुछ भी हो महात्मा कबीरने

हिन्दू-मुस्लिम ऐक्यके लिए सफल प्रयत्न किया—इसमें सन्देह नहीं। अतः हिन्दी-साहित्यमें महात्मा कबीर जो कुछ कहना चाहते थे और जैसे भी वह पाए हैं, उसे देखते हुए इन्हें ऊँचा स्थान तो मिल ही सकता है; क्योंकि इन्होंने जिस नवीन प्रणालीसे उपदेश दिया है, उसमें मानव-जीवनकी भावात्मक और कल्पनात्मक विवेचनाके साक्षात्कार होते हैं।

८—विशेषता—महात्मा कबीरकी जैसी सूक्ष्म-निरीक्षण और पैनी-दृष्टि-विस्तारकी क्षमता सन्त-साहित्यके अन्तर्गत गिने जानेवाले और किसी भी कविमें नहीं पायी जाती। महात्मा कबीरकी नवोन्मेषशालिनी एवं अलौकिक प्रतिभा पर थोड़ा विचार कर लेना विषयान्तर न होगा। महात्मा कबीरकी इस अद्‌भुत क्षमताका साक्षात्कार करनेके लिए आवश्यक है कि उनके समयमें फैली और उलझी हुई राजनीतिक परिस्थितियोंके कारण अशान्त वातावरणमें सांस्कृतिक—धार्मिक समस्याओं और परिस्थितियोंकी विषमताका विहंगावलोकन कर लिया जाय।

ऊपर लिखा जा चुका है कि बहुत प्राचीन कालसे ब्रह्म (परमतत्त्व) की प्राप्तिके लिए, विभिन्न मनीषियों द्वारा निश्चित किए गए—कर्म, ज्ञान और भक्ति-भावनाके तीनों प्रमुख-मार्ग चले आरहे थे। कालांतरमें जब ये साधना-पद्धतियाँ दोष-ग्रस्त अवस्थामें हो गयीं—(अर्थात् कर्मको प्रधानता देनेवाले वैदिक यज्ञ संबंधी क्रियाओंकी समाप्ति घोर हिंसात्मक बलिदानोंमें हुई, उपनिषदोंका ज्ञानमूलक तत्त्ववाद आत्मतत्त्वकी सर्व-व्यापकता एवं ब्रह्मकी उससे अभिन्नता प्रमाणित करके भी उसके बोधका उपाय न प्रस्तुत कर सका—सामान्य जनतामें 'मैं ही ब्रह्म हूँ' की एक अहं-भावनाका उदय होगया—और हृदयकी समस्त अनुरागात्मक वृत्तियोंको ईश्वरार्पित करते हुए कालांतरमें अनुरागके आधार नारीको भी देवार्पित करना प्रारम्भ हुआ और इसी प्रकार चित्तवृत्ति निरोधार्थ निश्चितकी गयी यौगिक क्रियाएँ ही समय पाकर साध्य हो गयीं; फलतः काया-साधना पर ही ज़ोर दिया जाने लगा)—तब एक नया मार्ग खोलकर बौद्ध-धर्म खड़ा हुआ।

बौद्ध-धर्मके पहलेही कर्म, ज्ञान, भक्ति और योग सभीको स्वीकार कर महर्षि व्यासने इन सभी साधना-पद्धतियोंकी युगानुसार एक नयी परिभाषा कर दी—कर्मसे अभिप्राय यज्ञसे है। देवताके उद्देश्यसे द्रव्य त्याग ही यज्ञ है। निष्काम-बुद्धिसे किए गए परमात्माकी ओर उन्मुख करनेवाले सभी कर्मोंका नाम यज्ञ है। इस प्रकार कर्मकी साधनात्मक महत्ता स्वीकारकर और उसका व्यापक अर्थमें प्रयोग करके महर्षि व्यासने उसे परिष्कृतकर दिया। भगवान् गौतम बुद्धकी भाँति उसका विरोध न कर उसकी नवीन व्याख्या उन्होंने उपस्थित कर दी थी।

गीताकी ज्ञान-व्याख्या उपनिषदोंसे भिन्न है। उपनिषदोंका अभीष्ट आत्मा तथा परमात्माका बोध और उसकी तात्विक एकताका प्रतिपादन है, किन्तु गीता-प्रतिपादित ज्ञान वस्तुतः आत्मैकत्वका सम्पूर्ण अनुभव है। सभी प्राणियोंमें अपनेको तथा अपनेमें सभी प्राणियोंको देखना ही गीताके ज्ञानका रहस्य है। ऐसी दशामें आत्म-परिष्कार हो जानेके बाद स्वार्थ-परायणताका प्रश्न अपने आप सुलझ जाता है।

इसी प्रकार गीतामें योगकी भी व्याख्या है। कर्मका कौशल ही योग है। आसक्ति और फलाकांक्षासे रहित होकर कर्म-सम्पादन ही कर्म-कौशल है। इसी प्रकार ध्यानयोगको ग्रहण करते हुए भी गीता उसकी नीरसताका परिष्कार कर देती है। गीताकी दृष्टिमें ध्यानयोगका उपयोग एकाग्रचित्त होकर सर्वत्र व्याप्त भगवान्‌के भजन करनेमें हैं; किन्तु इन सबको मानते हुए भी गीतामें भक्तिको ही प्रधानता दी गयी। गीतामें जिस भक्ति-का वर्णन है; वह अनन्या-भक्ति है, जिसकी समाप्ति शरणागतिमें होती है। भक्ति मार्गकी सर्वश्रेष्ठताका प्रथम दर्शन यहीं होता है।

इस प्रकार भारतवर्षमें साधना-पद्धतियोंकी उपर्युक्त धाराएँ अपनी गतिसे प्रवहमान् थीं। आगे चलकर अपनी एक भिन्न संस्कृति लेकर आनेवाले मुसलमानोंने इन साधना-धाराओंको अवरुद्ध कर उन्हें शिथिलकर

दिया* और मुस्लिम चिन्ताधारा अपना मार्ग ढूँढ़ने लगी। महात्मा कबीरके प्रादुर्भावकालमें साधना-क्षेत्रमें हिन्दुओं तथा मुसलमानोंकी सभी साधना-धाराएँ भारतवर्षमें फैली थीं। साधनाकी इन विभिन्न-धाराओंमेंसे किसी एक धाराका अनुवर्त्तन न कर महात्मा कबीरने इन सभी धार्मिक-स्रोतोंसे कुछ न कुछ अंश ग्रहण कर एक स्वच्छन्द धारा प्रवाहित कर अपनी अद्भुत क्षमताका परिचय दिया। मुसलमानोंके भारतमें आ जानेसे जो राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक और संस्कृतिक वातावरण क्षुब्ध हो उठा और उसमें मुसलमान शासकोंकी नृशंसतासे कटुता आने लगी थी; उसे दूर करनेका सफल प्रयत्न कबीरने किया, इसमें सन्देह नहीं। यही कारण है कि हमारे यहाँ महात्मा कबीर सन्त साहित्य के साथ अपनी एक विशिष्ट महत्ता रखते हैं।

---

*यहाँ यह ध्यान रखना आवश्यक है कि मुसलिम संस्कृति और धर्मने विद्वानों को अपनी ओर नहीं आकृष्ट किया था, वल्कि उससे अशिक्षित वर्गकी सामान्य जनता ही प्रभावित हुई थी।

निर्गुणधारा

२. मलिक मुहम्मद जायसी—(प्रेम-काव्य)

सूफीधर्मकी उत्पत्ति—हिन्दी-साहित्यके प्रेम-काव्यकी रचना पर मुसलमानी संस्कृति और धर्मका गहरा प्रभाव है। अतः पहले हम यही जाननेका प्रयत्न करेंगे कि मुसलमानोंका हमारे देशमें आगमन कब हुआ और उनके धर्मका प्रचार किस प्रकार हुआ।

८ जून सन् ६३२ ई० में इस्लामी धर्म एवं शासन-संबन्धी संस्थाओंके अध्यक्ष श्रीमुहम्मद साहबका जब देहान्त हो गया, तब समस्त अरबमें अनेक लोग अपनेको दूत घोषित कर यत्र-तत्र विद्रोह करने लगे; किन्तु खलीफा अबूबकरने जो उस समय इस्लामी धर्म एवं शासन सम्बन्धी संस्थाओंके अध्यक्ष थे, सफलतापूर्वक सभी विद्रोहोंको दबा दिया। इसके साथ ही उन्होंने फारस आदि प्रदेशों पर इस्लामी राज्यके विस्तारके उद्देश्यसे आक्रमण भी कर दिया। उनके उत्तराधिकारी खलीफा उमरने वहाँ इस्लामी विजयकी पताका फहरायी; किन्तु नमाज पढ़ते समय एक आतसी गुलामके हाथों जब खलीफा उमर मार डाले गये, तब इस्लामके सभी कार्योंमें शिथिलता आने लगी। चारों ओर विद्रोह होने लगे और उसमान खलीफा नियुक्त किए गए। इनके बाद अली आदि उत्तराधिकारियोंका समय युद्ध-जनित विषमताओं और अशान्तिके वातावरणमें व्यतीत हुआ। इस प्रकार जब एक एक कर मुहम्मद साहबके चारों साथी इस धराधाम पर न रह गये और मुआविया खलीफाके पद पर था, तब उसने अपनेको सर्वप्रथम बादशाह घोषित किया। इस समय जनता दो दलोंमें बँट गयी। एक दल तो अन्तिम सनातनी खलीफा अलीका;

जिसे जनता इस्लामका अन्तिम सच्चा नायक मानती थी और दूसरा उनके विपक्षी खारिजाका दल।*

अली-पुत्र हुसेन अपनेको खलीफा-पदका अधिकारी घोषित कर कुफासे सहायता प्राप्तकर पदके लिये लड़े, किन्तु कुफा-निवासियोंने उनकी पूरी सहायता न की। उस समय मुआविया-पुत्र यजीदके साथ उनका घोर युद्ध हुआ, जो इस्लामी इतिहासमें अन्तिम कर्बला-युद्धके नामसे प्रसिद्ध है। हुसेन अपने सभी साथियोंके साथ मार डाले गये और यजीदने मक्का-मदीना पर भी आक्रमण कर वहाँ भी अत्याचार और अशान्तिकी लहर उठा दी। इसी समय मुख्तार नामक एक व्यक्तिने विरोधीदल संगठित कर कूफा पर अपना अधिकार जमा लिया और यजीदके साथियोंको जो संख्यामें लगभग तीन सौ थे, मार डाला। परिणामस्वरूप सीरियाकी रहनेवाली अरबी जनता उत्तरी और दक्षिणी अरबमें विभक्त हो गयी।

इस प्रकार इस्लाम धर्मकी जन्मदात्री पुण्य भूमि अरबका (सातवीं शताब्दीका) ऐतिहासिक विवरण प्रस्तुत किया गया। उपर्युक्त ऐतिहासिक सिंहावलोकनसे स्पष्ट है कि उस समय जनताको अशान्त वातावरण का सामना करना पड़ा। इस विषम परिस्थितिमें धर्मके नाम पर फैली हुई मार-काट और नृशंसताओंकी ओर दृष्टिपातकर कुछ सुहृद विचारकोंने मुहम्मद साहब द्वारा प्रवर्तित कुरान, इस्लाम धर्मके सिद्धान्तों और उपदेशोंका परिष्कृत ढंगसे दर्शन किया। इस वर्गके विचारकोंको मुहम्मद साहबका जीवन और कुरानके उपदेश उदारता तथा सद्‌भावनाओंसे परिप्लावित जान पड़े। सूफी धर्मका मूल यहीं पर इस्लामको एक गहरा धर्म माननेमें है।†

---

* डा० कमलकुलश्रेष्ठ एम० ए०, डी० फिल० द्वारा प्रणीत "हिन्दी प्रेमाख्यानक-काव्य" पृ० ६३ देखिए। † डा० कमलकुल श्रेष्ठ एम० ए०, डी० फिल० द्वारा प्रणीत 'हि० प्रे० का०' पृ० ६७ देखिए।

अरबवालोंका साम्राज्य फारसमें था और इस्लाम धर्मको फारसकी जनताने स्वीकार तो कर लिया था, किन्तु उनके साथ समानताके व्यवहार-की कमी थी। फलतः फारसकी जनताने एक भारी क्रान्तिकी; जिससे आठवीं शताब्दीके उत्तरार्द्धमें राजवंशका परिवर्तन हुआ। अब राज-दरबारमें फारसी प्रभाव बढ़ने लगा। अलीके वंशजोंने जो अपनेको मुहम्मद साहबके सच्चे-उत्तराधिकारी मानते थे, विद्रोह पर विद्रोह किया। आगे चलकर अरब और फारसकी जनतामें जातीय-भावनाका अंकुर निकलने लगा, जिससे राष्ट्रीय एवं जातीय संघर्ष प्रस्फुटित हुआ।

परिस्थितिजन्य एक महान् आन्दोलन अब्दुल्ला बिनमैमून अलकद्दाह (जिनकी मृत्यु ८७४ ई० में हुई) के नेतृत्वमें हुआ। यह नेता फारससे अरब साम्राज्यको समूल विनष्ट कर डालना चाहता था। अलीके पक्षका समर्थन करते हुए इन्होंने इस आन्दोलनमें शियादलसे बहुत बड़ी सहायता प्राप्त कर ली।* जब फारसकी जनताको विदित हुआ कि वह फारससे विदेशी साम्राज्यका निष्कासन कर देना चाहता है, तब इस आन्दोलनमें फारसी जनताने उनका सब प्रकारसे साथ दिया। इसी समय सलमान फारसीने मुहम्मद साहबके धार्मिक सिद्धान्तोंकी उदार-दृष्टिकोणसे नवीन व्याख्या करते हुए धार्मिक आन्दोलन प्रारम्भ किया, जिससे इस्लामी धर्मके मार्गमें जो अन्धकार छाया था, एक नवीन आलोकके प्रस्फुटित होते ही दूर हो गया। अब्दुल्लाहके राजनीतिक आन्दोलनोंसे सलमानका धार्मिक आन्दोलन सजीव हो गया। सलमान ईश्वरके निर्गुण रूप पर अधिक जोर देते थे। उनका कहना था कि मनुष्यके जीवन तथा निर्गुण ईश्वरके बीच प्रेमका सम्बन्ध है। ईश्वरके निर्गुण होनेसे यह प्रेम भी लौकिक प्रेमसे सर्वथा भिन्न आध्यात्मिक प्रेम है, जो आगे चलकर सूफी धर्ममें रहस्यवादी प्रेमके नामसे विख्यात हुआ। इसीसे सूफी धर्म अनुप्राणित हुआ। इस प्रकार अब्दुल्लाहके राजनीतिक आन्दोलनका अपने अनुकूल प्रबल वेग पाकर सलमान

फारसीने आठवीं शताब्दीके प्रारम्भ होते-होते निरंतर विद्रोहों और विप्लवोंमें पिसी जाती हुई शान्तिप्रिय जनताके मध्य सूफी धर्मकी एक नवीन धारा प्रवाहित किया, जिसकी धीरे-धीरे गति बढ़ती गयी और नवीं शताब्दी तक तो उसमें दृढ़तासे स्थिरता भी आ गई।

सूफी धर्मका विकास—डा० श्रीकमलकुल श्रेष्ठने सूफी धर्मके समस्त विकासकालके इतिहासको चार भागोंमें विभक्त किया है।*

१—तापसी जीवन—(सातवीं से नौवीं शताब्दी ई० तक)

२—सैद्धान्तिक विकास—(दशवीं से तेरहवीं शताब्दी ई० तक)

३—सुसंगठित सम्प्रदाय-(चौदहवीं से अठारहवीं शताब्दी ई० तक)

४—पतन—(उन्नीसवीं शताब्दी ई० से आधुनिक समय तक)

१—तापसी जीवन—(७वीं से ६ वीं शताब्दी ई०) यद्यपि तापसी जीवन कुरान द्वारा स्वीकृत नहीं है, क्योंकि इस्लाम एक सामाजिक धर्म है; किन्तु इसमें प्रचलित कुछ नियम—जैसे रमजान के व्रत, मदिराका निषेध एवं तीर्थयात्रा आदि—तापसी जीवनसे सम्बन्ध रखते हैं।

ऊपर लिखा जा चुका है कि राजनीतिक परिस्थितियोंके महान् विप्लवके समय जब सलमान फारसीने इस्लामके नाम पर प्रचलित मार-काट अशान्ति और घोर नैतिक पतनके अमानुषिक बर्बरताके मध्य पिसी जाती सशंकित जनताको कुरानकी पवित्र आयतोंका और समुन्नत लक्ष्यकी ओर ले जानेवाले प्रशस्त पथको आलोकित करनेवाले मुहम्मद साहबके सन्देशोंका सूक्ष्मातिसूक्ष्म विश्लेषण कर उसकी महनीयता पर प्रकाश डाल अपनी ओर आकृष्ट किया, तब वहाँके पतनोन्मुख समाजसे अलग हो, शान्ति चाहनेवाला वर्ग एकान्तमें ही व्यष्टिका तापसी जीवन व्यतीत करने लगा जो सूफी धर्मकी उत्पत्तिका कारण हुआ।

---

*'हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य' (पृ० १०१)—डा० कमलकुल श्रेष्ठ एम० ए०, डी० फिल०—देखिये।

राजनीतिक उथल-पुथलके फलस्वरूप मुहम्मद साहब द्वारा प्रचारित इस्लामधर्म—शिया, खारिजा, मुर्जिया और कादरी सम्प्रदायमें विभक्त हो गया। कादरी सम्प्रदायमें अनेक उपसम्प्रदाय हुए, जिनमें एक मुतज़ाली नामसे प्रसिद्ध हुआ। इस सम्प्रदायके अनुयायी अपने आरम्भिक तथा वास्तविक स्वरूपमें तपसी ही थे। वे दुनियाँसे अलग पार्थिव संघर्षोंकी प्रतिध्वनियोंसे तटस्थ हो ऐकान्तिक जीवन बिताते थे। आत्म-निरूपण ही उनका लक्ष्य था। इसीको वे जीवनका वास्तविक लक्ष्य प्राप्त करनेका सच्चा पंथ मानते थे।

शिया सम्प्रदायमें एक वर्ग ऐसा भी था जो वह भी तापसी जीवन व्यतीत करता था और कुरानका अन्योक्तिमूलक अर्थ बताता था। मुतज़ाली सम्प्रदायकी बहुतसी बातें इस सम्प्रदायकी अनेक बातोंसे मिलती थीं। वास्तवमें ये एकेश्वरवादी थे तथा नकारात्मक प्रणालीमें अपने आराध्यका वर्णन करते थे। मश्रामरबिनश्रब्बाने और भी सूक्ष्मतासे एक विशेषता और भी स्थापित कर दी। उन्होंने कहा—'ईश्वर एक ऐसी भावात्मक सत्ता है जिसके सम्बन्धमें कुछ भी नहीं कहा जा सकता; क्योंकि वह अवर्णनीय है।'

ज़ुअलनूनके सिद्धान्तोंमें अद्वैतवादके भी आन्तरिक चिन्ह मिलते हैं; परन्तु बायज़ीद्के विचार सर्वथा अद्वैतवादसे मिलते हैं। वह "विविध रूपोंमें मैं ही परमेश्वर हूँ, मेरे अतिरिक्त और कोई अन्य परमेश्वर नहीं; इसलिए मेरी उपासना करो।" की घोषणा करता है।

"मैं ही मदिरा तथा मदिरा पीनेवाला हूँ और पिलानेवाला साकी भी हूँ।"

बायज़ीदने ही सूफ़ी धर्ममें सर्व प्रथम फनाका सिद्धान्त मिलाया, जिसके अनुसार मानव-जीवनका उद्देश्य उसी परमसत्तामें समाहित हो जाना था।

उपर्युक्त विवरणके अनुसार संक्षिप्तरूपसे कहा जा सकता है कि

नवीं शताब्दी तक सूफी धर्मके अनुयायी तापसी जीवन व्यतीत करते थे, तथा वहीं एकान्तमें ईश्वर संबन्धी चिन्तन-मनन किया करते थे। अद्वैत-वादी सूफियोंके सिद्धान्तानुसार मानव जीवनका लक्ष्य उसी परमसत्तामें सदैवके लिए विलीन हो जाना था, ससार व्यर्थ ही संघर्षोंकी रंगभूमि है। अतः सत्यकी प्राप्तिके हेतु इसका परित्याग अत्यावश्यक है। तपस्या अथवा ऐकान्तिक चिन्तन तथा उस परमसत्तासे प्रेम करना इस लक्ष्यको प्राप्त करनेका साधन-पथ है।

इस समय तक सूफी सिद्धान्त कुरान और मुहम्मद साहबके जीवनसे निकला हुआ माना जाता है। मुहम्मद साहब सर्वथा सादा जीवन व्यतीत करते थे। वे विलासितासे बहुत दूर रहते थे। रात्रिमें ईश्वरका चिंतन करते और दिनमें उपदेश देते। कभी-कभी वे महीनों तक मन रखते और रातमें प्रायः बहुत कम सोया करते। उनकी कही हुई ईश्वर-की प्रार्थनाकी परिभाषामें सूफी सन्तोंने अपने प्रेम विह्वलतावाले तत्व खोज निकाले हैं। कुरानमें ज़िक्र (स्मरण) और ज़िहाद मिलता है, इन वाक्योंका साधारणतया अर्थ है—ईश्वरीय मार्गमें प्रयत्न करना, किन्तु सूफी मार्गावलम्बी सन्तोंने "अपनी पतनोन्मुख प्रवृत्तियोंसे लड़ना ही ज़िहाद है" अर्थ लगाया। कुरानका वाक्य है—"जो तुम स्वयं करते हो, एकमात्र उन्हीं अच्छे कर्मोंका उपदेश दो।" सूफी सन्तोंने इसी भाव-नाको थोड़ा परिवर्त्तनके साथ दोहराया—"आत्मनिरूपण कर पहले आत्म-शुद्धि करलो, तब तुम्हें दूसरोंको उपदेश देनेका अधिकार होगा।" इन्हीं तत्वोंके आधार पर सूफी अपना सिद्धान्त शास्त्रोय एवं परम्परागत मानते थे। जिसके परिणामस्वरूप सूफी धर्म अत्यन्त व्यावहारिक एवं अत्यन्त आदर्शवादी हो उठा। इसी प्रकार सूफी धर्मका क्रमिक विकास होने लगा।

२—सैद्धान्तिक विकास—(१० वीं से १३ वीं शताब्दी ई०) इस समयके सूफी सन्तोंने तर्क एवं अनुभूतिका आश्रय ग्रहण कर अपने धर्म-का विश्लेषण करते हुए विचारोंका स्पष्टीकरण किया। सूफी धार्मि

साहित्यमें अब अनेक ग्रन्थोंका प्रणयन भी होने लगा था। इन ग्रन्थोंमें सबसे प्राचीन पुस्तक अबूतालिब अलमक्कीकी "कुतूअलकुलूब" अरबी-की है। इससे पूर्व खलीफा मामूकी आज्ञानुसार अरस्तूके ग्रन्थ अरबीमें किन्दीके* द्वारा अनुवादित हो चुके थे†। इस समय तक भारतीय विद्वान् अरबमें पहुँच चुके थे। और खलीफाके द्वारा उन्हें काफी सम्मान भी प्राप्त था। फलतः सूफी धर्मके सिद्धान्तोंके निर्माणमें ग्रीस और भारत दोनोंने सहयोग दिया।

अब तकके समस्त सूफी सिद्धान्त-निर्माताओंमें गज्जालीका स्थान सर्वोपरि है। अबूअलफतअल शहरस्तानीका भी नाम उल्लेखनीय है। इन प्रमुख सन्तोंने उल्माओंकी तीन श्रेणियाँ बनाईं। १—परम्पराको माननेवाले, २—कुरानका अर्थ बतानेवाले और ३—सूफी। इनमें पहली

---

* किन्दी अरब देशका निवासी था। उसे अरब-दार्शनिक कहा जाता है। बसरा और बगदादमें उसने शिक्षा प्राप्तकी थी। वह बहुत बड़ा विद्वान था, वह अनेक विषयोंका ज्ञाता था। अनेक यूनानी कृतियोंका उसने अरबीमें अनुवाद किया, ऐसा कहा जाता है। किन्दीने मनुष्यकी स्वतंत्रता पर बल दिया, ईश्वरकी एकता तथा कल्याणरूपता पर भी वह बल देता था। कार्य-कारणवादमें उसका विश्वास था। जगत् ईश्वरकी कृति है; किन्तु ईश्वर और जगत्के मध्य अनेक अन्य शक्तियाँ भी हैं। ईश्वरसे विश्वचेतना (नफस आलम) और उससे क्रमशः फरिश्ते तथा मनुष्य पैदा होते हैं। चित्-शक्तिके चार भेद हैं। १—ईश्वर जो सदैव सत् है और समग्र चेतनाओंका कारण है। २—बुद्धि। ३—जीवकी क्षमता और ४—क्रियाशक्ति। इस प्रकार किन्दी अरस्तूके सक्रिय बुद्धि तथा निष्क्रिय बुद्धिके विभागसे प्रभावित था। किन्दी का समय ८७० ई० था—("पूर्वी-पश्चिमी दर्शन" पृ० २७७-८ डा० देवराज प्रणीत देखिए)

† देखिए "दर्शन-दिग्दर्शन" पृ० १०५-६—श्रीराहुल सांकृत्यायन।

श्रेणीके लोग मुहम्मद साहबकी जीवन सम्बन्धी घटनाओंका दुनियाँके कोने-कोनेमें भ्रमण कर प्रचार करते थे। उनका जीवन एक आदर्श जीवन था कुरानकी व्याख्या करनेवाले उलमा कुरानका गम्भीर अध्ययन कर उसका बड़ी बारीकीसे अर्थ करते। कुरानके पठन-पाठनको ही ये लोग जीवनका मुख्य उद्देश्य समझते। यही भावना इनके धर्मकी नींव थी। औरोंकी अपेक्षा जनतामें इनका सम्मान अधिक था। तीसरी श्रेणी जो सूफियोंकी थी वह मुहम्मद साहबकी जीवनी और कुरानकी कुछ आयतों (दोनों) से प्रेरणा प्राप्त कर उसीका अनुकरण एवं अनुभूति करती थी। इस वर्गकी सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि आराध्य और आराधकके मध्य जो प्रेमका मनोहर और कलापूर्ण सम्बन्ध पूर्ववर्ती सूफी सन्तोंने निश्चित किया था, वह इन सूफियोंके प्रयत्नसे विशुद्ध वैज्ञानिक हो गया। कल्पना की गयी कि आराधक प्रेम-पथ पर चलता है और यात्रामें सफल होने पर आराध्य तक पहुँचता है। आराधकको इस यात्रामें अनेक स्थान मिलते हैं। इसी वर्गीकरणके अनुसार सूफी-प्रेम तीन श्रेणियोंमें विभक्त हुआ। उत्तम, मध्यम और निकृष्ट। आत्मा-परमात्माका ज्ञान प्राप्तकर जब उससे प्रेम किया जाता है, तब वह उत्तम प्रेम कहलाता है; किन्तु जब आत्मा, परमात्माको सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापी और सर्वान्तर्यामी मानकर उससे प्रेम करती है, तब यह प्रेम मध्यम कोटिमें गिना जाता है। जब आत्माको परमात्मा अपना प्रेम देता है और आत्मा, परमात्माको एक साधारण दयावान् दाता मानती है और इसी भावसे उससे प्रेम करती है, तो उसको निकृष्ट-कोटिका प्रेम माना जाता है।

तर्कजनित ज्ञानकी अपेक्षा गजाली अनुभूतिको श्रेष्ठ मानता है। तर्क द्वारा प्राप्त हुआ ज्ञान प्रत्येक दशामें अनुभूतिके आधार पर प्राप्त किए गए ज्ञानसे प्रायः निम्नकोटिका होता है। उसने घोषणाकी कि परमात्माको जानना और उसकी अनुभूति प्राप्त करना असम्भव नहीं है, क्योंकि ईश्वरकी प्रकृति मानव प्रकृतिसे भिन्न नहीं है। मानवता स्वयं परमात्मासे

ही आई है, तथा सांसारिक बन्धनोंसे छूटने पर उसीमें लीन हो जायगी।* इस स्थल पर 'लीन' शब्दको भारतीय-दर्शनके 'तिरोहित' शब्दका समानार्थक या पर्यायवाची समझना चाहिए। गज़ाली परमात्माको सर्वव्यापी मानता हुआ प्रकृतिके पीछे उसके दर्शन करता है और हमें इसका निर्देश करता है कि प्रकृतिका संचालक वही है।

सूफी सिद्धान्तोंके विकासकी एक नवीन अवस्था इब्नसीनामें मिलती है। उसके अनुसार परमसत्ताका स्वरूप शाश्वत और सौन्दर्य भरा है। आत्माभिव्यक्ति उसकी विशिष्टता तथा प्रकृति है। वह अपना स्वरूप सृष्टिमें प्रतिबिम्बित कर देखती है और आत्माभिव्यक्ति ही उसका प्रेम है, जो समस्त विश्वमें व्याप्त है। प्रेम सौन्दर्यका आस्वादन है तथा सौन्दर्यपूर्ण होनेके कारण प्रेम भी पूर्ण है। प्रेम विश्वकी जीवनी शक्ति है। यह प्राणियोंको मूलस्रोतकी ओर उन्मुख करता है जो कि पूर्ण है तथा जिससे वे सृष्टि-सर्जनामें अलग हो गए हैं। प्रेमके द्वारा ही मानव-आत्मा परमात्मासे एकत्वकी अनुभूति करती है।

इब्न अरबीके विचारोंसे प्रकृति और मनुष्य दोनों ही उस परमसत्ताके प्रत्यक्ष स्वरूप हैं। सृष्टिके कण-कणमें वह परमसत्ता आभासित होती है। मनुष्य परमात्माका एक स्वरूप है और परमात्मा मनुष्यकी आत्मा है। विश्वके समस्त धर्म उसी परम सत्यकी ओर उन्मुख करते हैं। अतः किसीसे द्वेष नहीं करना चाहिए। इस युगके सभी सूफी इसी सिद्धान्तको मानते हैं।

अब्दुल करीम इब्नजीलीका मत था कि विश्वके समस्त धर्म तथा सम्प्रदाय उसी परमसत्ताका विश्लेषण तथा चिन्तन करते हैं और उसके किसी न किसी पक्षकी ही अभिव्यंजना करते हैं। विभिन्न धर्मों तथा सम्प्रदायोंमें नाम तथा विशेषणोंका मात्र अन्तर है। अब्दुलकरीम इब्न-

*देखिए—हिन्दी-प्रेमाख्यानक-काव्य पृ० ११०—डा० कमलकुल श्रेष्ठ एम. ए., डी. फिल० प्रणीत।

चीलीके इस उदार और व्यापक-दृष्टिकोणसे स्पष्ट है कि वह हिन्दू धर्मसे पूर्ण परिचित था।

उपर्युक्त इन शास्त्र-निर्माताओंके अलावा कुछ सूफी कवि भी धर्म-प्रचार कार्यमें बहुत बड़ा सहयोग देने लगे थे। इन कवियोंका योग पाकर सूफी-धर्म लोकप्रिय होकर खूब पनपा। जलालुद्दीनरूमीकी मसनवीका इन प्रचार-साधनाओंमें बड़े सम्मानके साथ नाम लिया जा सकता है। इसी प्रकार सादी, रबिया और खय्यामकी कविताएँ सूफी धर्मको दिगन्तव्यापी बनानेमें बहुत बड़ा महत्व रखती हैं। अब यहींसे सूफी धर्म एक नियमित सम्प्रदायके रूपमें स्थित हो जाता है। इस समयसे इसको एक और दृढ़ आधार प्राप्त हो जाता है, वह है राज्याश्रय।

उपर्युक्त संक्षिप्त विवरणोंसे पता चलेगा कि सूफी धर्म सामयिक परिस्थितियोंकी प्रतिक्रियासे उद्भूत हुआ था और राजनीतिक विप्लवोंसे ऊबी जनताका इस उदार दृष्टिकोणवाले धर्मकी ओर आकृष्ट होना स्वाभाविक था, क्योंकि इस्लामधर्म और शासन सम्बन्धी संस्थाओंके अध्यक्षोंसे जनताका विश्वास हट चला था; अतः इस्लाम धर्मके हितचिंतक नवीन व्याख्या करनेवाले इस सम्प्रदायके प्रति जनताके हृदयमें श्रद्धा-भावना जाग्रत हो गई। यह स्मरण रहे कि इस धर्ममें यहींसे गुरु परम्परा भी चल पड़ी, जिससे अनेक सम्प्रदायोंका गुरुओंके नाम पर निर्माण होने लगा।

३—सुसगठित संप्रदाय—(१४ वीं से १८ वीं शताब्दी ई०)—सूफी सन्त मुहम्मद साहबको ही अपने धर्मका आदि गुरु मानते हैं। मुहम्मद साहबसे अलीने दीक्षा ग्रहणकी और अलीके चार मुरीद हुए जिनके नाम थे—कामिल, हसन, हुसेन और खानहसनबसरी। अन्तिम खानहसनबसरीके दो शिष्य हुए—खानहबीबअजबी और खान अबदुल-वाहिद। आगे चलकर खानहबीबअजबीके भी दो शिष्य हुए—खान-तफूर और खानदाऊद। खानतफूरसे तफूरी सम्प्रदाय चला। खान मारूफ कर्खी खान दाऊदके शिष्य हुए। जिनके नामसे कर्खी संप्रदाय चला।

आगे चलकर खानसिरीसिक्ती खर्वीके शिष्य हुए, जिन्होंने सिक्ती सम्प्रदाय चलाया। जुनैदने उन्हें अपना मुर्शिद बनाया, जिससे जुनैदी सम्प्रदाय चला। उनके भी दो मुरीद हुए—हजरत ममसदोब एवं शेख अबूबकर। हजरत ममसदोबके दो मुरीद हुए—शेखअबूअली और खानअहमद। शेखअबूअलीके शिष्य शेख अबूहशाक गज़रूनी हुए, उनसे गज़रूनी सम्प्रदाय चला।

खानअहमद हजरत ममसदोबके शिष्य थे, जिनके मुरीद हुए—शेखअमोइया। शेखअमोइयाके मुरीद थे—शेखवजीउद्दीन।

इन सम्प्रदायोंके अतिरिक्त 'नक्शबन्दी' नामक एक और सम्प्रदाय है, जो अलीसे अपना सम्बन्ध न जोड़कर मुहम्मद साहबके दूसरे शिष्य अबूबकरसे जोड़ता है। इस सम्प्रदायके गुरु परम्पराकी तालिका निम्न प्रकार है :—

मुहम्मद साहब—अबूबकर—सलमानफारसी—इमाम कासिम—इमाम जाफर—यजीद बुस्तमी—शेखअबुलहसन—शेखअबुलकासिम—खान-अबुलअली—खानयुसुफ—खानअब्दुलखालिक—खानखरीफ — खान-महमूद—खानअली—खानमुहम्मदबाबा— अमीरकलाल — खानबहा-उद्दीन नक्शबन्द।

उपर्युक्त विवरणमें यद्यपि विभिन्न सम्प्रदायोंका नाम लिया गया है, किन्तु सिद्धान्ततः इनमें कोई विशेष अन्तर नहीं है। इनमें गुरु परम्परा-ओंके नाम पर ही नाममात्रका अन्तर है। ये सन्त अपनी गुरु-परंपराको कंठस्थ रखते थे। इस्लामधर्मानुयायी प्रदेशोंमें ये सम्प्रदाय व्यष्टि रूपसे सूफी धर्मका प्रचार करते थे। ये लोग अपने धर्मका प्रचार करते हुए उत्तर-पश्चिममें स्पेन तक पहुँचे और पूर्वमें भारत तक आए। इन्हीं सूफियों द्वारा भारतमें इस्लाम का प्रचार हुआ। इधर हिन्दू-धर्म अपने दृढ दार्श-निक आधारों पर पुष्ट था। तलवारके द्वारा विश्वास नहीं बनता, धार्मिक कट्टरताकी तो बात ही दूसरी है। अपने धर्मके प्रचारार्थ इन सूफी सन्तोंने

प्राणायाम आदि योग सम्बन्धी कितनी ही बातोंकी विशेष जानकारी प्राप्त की।

४—पतन—(१८ वीं शताब्दी ई० से वर्त्तमान् काल तक)—सूफ़ी धर्मके पतन पर भी थोड़ा विचार कर लेना आवश्यक होगा। अपने अति उन्नतकालमें इस धर्ममें एक करामाती प्रवृत्ति भी पायी जाती है; जिससे बादका प्रत्येक सन्त करामाती होने लगा। उसके शिष्य जनतामें अपने गुरुकी धाक जमानेके लिए उसकी करामातोंका अति अतिरंजनाके साथ प्रचार करते थे। जनतामें सरल विश्वाससे भरे कितने लोग इन करामातोंको सत्य मानकर प्रभावित हो जाते थे। परिणाम यह हुआ कि हिन्दू-जनतामें भी सूफ़ी पीरोंके प्रति श्रद्धा और उन्हें पूजनेकी प्रवृत्ति फैलने लगी। यही पीरत्व आगे चलकर सूफ़ी धर्मके पतनका कारण हुआ।

भारतमें प्रचार—भारतमें सूफ़ी धर्मकी स्वतन्त्र उत्पत्ति नहीं हुई; बल्कि सूफ़ी दरवेश ही इस्लामी प्रान्तोंसे यहाँ ले आए। यों तो मुसलमानोंका आगमन सबसे पहले भारतमें अरबोंके आक्रमणसे होता है, जो सन् ३५ हिजरी (सन् ६३६ ई०) में बहरैनके शासककी आज्ञासे थाना नामक बन्दर स्थानसे हुआ था। कुछ दिनों बाद भड़ौच, देवल और ठट्ठा भी मुसलमान आक्रमणके लक्ष्य बने थे, किन्तु उनका सम्यक्‌रूपसे सम्पर्क ईसाकी बारहवीं शताब्दीसे होता है। कौन सूफ़ी प्रथम भारत आया, यह निश्चित रूपसे नहीं कहा जा सकता; क्योंकि इसका कोई प्रामाणिक विवरण नहीं मिलता। आठ सूफ़ी दरवेशोंका बारहवीं शताब्दी तक आनेका विवरण मिलता है; जिनके नाम हैं—शेखइस्माइल, २—सैयदनथरशाह, ३—शाहसुलतान रूमी, ४—अब्दुल्लाह, ५—दातगंजबख्श, ६—नीरुद्दीन, ७—बाबा आदिमशाही, और ८ वें थे—मुहम्मदअली।

इन दरवेशोंके भारत आनेके पूर्व भी नवीं शताब्दीके आसपास तजूली (नवीं शताब्दी ई०) और बेरूनी (दशवीं शताब्दी ई०) के यात्रा-

विवरणोंसे पता चलता है कि बिना किसी राजनीतिक विप्लवके बहुत शान्तिपूर्ण ढंगसे यहाँ इस्लामके प्रभाव बढ़ रहे थे। हिन्दू और मुसलमान दोनों जातियोंको एक दूसरेके सम्बन्धकी बातें जाननेका अवसर मिलता था।* अरबों और हिन्दुओंमें, जिनमें बौद्ध धर्म भी सम्मिलित था, धार्मिक शास्त्रार्थ हुआ करते थे और अपने-अपने धर्मकी श्रेष्ठताके लिए प्रतियोगिताएँ हुआ करती थीं। ये घटनाएँ प्रसिद्ध हैं।

अरब और भारतके इस प्राचीन संबन्धमें यह कल्पनाकी जा सकती है कि वेदान्तकी विचारधारा अरबीमें अवश्य ही रूपान्तरित हुई होगी, जिससे सूफी धर्मने अपने निर्माणमें वेदान्तकी चिन्तन शैलीको सहायता अवश्य ली होगी; क्योंकि फारसी और अरबीके प्राचीन साहित्यमें "कलेला दमना" नामक एक पुस्तक है, जो बेरूनीके अनुसार संस्कृत "पंचतंत्र" का अनुवाद है। इस पुस्तकका अनुवाद फारसीमें हिजरी द्वितीय शताब्दीके पूर्वही हो चुका था। बादमें इसका अनुवाद अरबी भाषामें भी हुआ। "पंचतंत्र" पुस्तकका लेखक वेदपा पंडित कहा जाता है। प्रोफेसर सखाऊने अपनी पुस्तक 'इण्डिया' की भूमिकामें इस वेदपा-का नाम वेदव्यासके अर्थमें लिया है; जो वेदान्तके आचार्य हैं। वेदपा चाहे वेदव्यास हों, या न हों, परन्तु यदि 'पंचतंत्र'का प्रभाव इस्लामी संस्कृति पर पड़ सकता है, तो वेदान्त (उत्तर-मीमांसा) का प्रभाव तो बहुत पहलेसे ही इस्लामी संस्कृति पर पड़ सकता था। आगे चलकर जब सूफी मत लेकर सन्तोंने भारतमें आगमन किया, तब तो वह यहाँकी वेदान्त सम्बन्धी विचारधारासे विशेष प्रभावित हुई होगी।

ऊपर लिखा जा चुका है कि बारहवीं शताब्दी तक आठ सूफी दर-वेशोंका भारत आना पाया जाता है, यदि उनके भारत आने और प्रचार

---

* "अरब और भारतके सम्बन्ध," मौलाना सैयद सुलेमान नदवी पृ० १६२-३ देखिए।

कार्यों पर विहंगम दृष्टि डाल ली जाय तो अप्रासंगिक न होगा।

१—शेख इस्माइल—ये भारतमें १००५ ई० के आस-पास आए और लाहौरमें बस गए। ये बड़े प्रभावशाली दरवेश थे, जिसके कारण ये अपने निकट आनेवालोंको अपने मजहबके अन्दर अवश्य ले लेते थे।

२—सैयद नथरशाह—ये त्रिचनापलीमें आकर बसे। इनका जीवनकाल ६३६ से १०३६ ई० तक माना जाता है खुत्तनोंकी इस्लामी जातिका कथन है कि इनके साथियोंके और इनके द्वारा ही वह मुसलमान बनी।

३—शाह सुलतान रूमी—इन्होंने एक कोचराजाको, जो बंगालका रहनेवाला था, मुसलमान बनाया।

४—अब्दुल्लाह—ये १०६५ ई० के आसपास गुजरातमें आए और इन्होंने कम्भके निकट इस्लाम धर्मका प्रचार किया। इनके द्वारा बने मुसलमान बोहरा कहलाते हैं।

५—दातागंजबक्श—इनकी गणना बहुत बड़े दरवेशोंमें की जाती है। ये भी लाहौरमें आकर बसे थे। इन्होंने "कश्फअल महबूब" नामक एक महान् ग्रन्थकी रचना की थी। इनकी मृत्यु १०७२ ई०में हुई थी।

६—नूरद्दीक—ये बारहवीं शताब्दीके पूर्वार्द्धमें गुजरात आए और कोयी, खर्वा तथा कोरी जातिके हिन्दुओंको इन्होंने मुसलमान बनाया। ये बड़े ही दक्ष प्रचारक थे।

७—बाबा आदिमशाहिद—ये बंगालमें बल्लालसेनके राज्य-काल में आए।

८—मुहम्मदअली—ग्यारहवीं शताब्दी ई०के समाप्त होते-होते ये गुजरात आए और इन्होंने अधिक संख्यामें हिन्दुओंको मुसलमान बनाया।

इस प्रकार यहाँ पर सूफी दरवेशोंके भारत आगमनका संक्षिप्त विवरण दिया गया। ये सूफी दरवेश किसी न किसी सम्प्रदायसे अवश्य सम्बद्ध होते थे। इन सम्प्रदायोंका भी संक्षिप्त विवरण दे देना आवश्यक

होगा। भारतमें आनेवाले, मुख्य सम्प्रदायोंके नाम हैं—१—चिश्ती संप्रदाय, २—सुहरावर्दी संप्रदाय, ३—कादिरी संप्रदाय, ४—नक्शबंदी संप्रदाय, ५—जुनैदी संप्रदाय और ६—शत्तारी संप्रदाय।

१—चिश्ती संप्रदाय—इस सम्प्रदायके आदि प्रवर्त्तक ख्वाजा-अब्दुल्लाह चिश्ती (जिनकी मृत्यु सन् ९६६ई० में हुई थी), थे। यह संप्रदाय भारतमें सीस्तानके ख्वाजामुईनुद्दीन चिश्ती (सन् ११४२-१२३६) के द्वारा आया। सन् ११९२ ई० में भारतमें इसका प्रचार हुआ। ख्वाजा-मुईनुद्दीन चिश्ती भ्रमण करनेके बड़े प्रेमी थे। उन्होंने खुरासान, नैशापुर आदि स्थानोंमें भ्रमण करते हुए बड़े-बड़े सन्तोंका समागम प्राप्त किया और दीर्घकाल तक ख्वाजाउसमान चिश्ती हारूनीके निकट रहे और उनसे प्रेरणाएँ लेते रहे। इन्होंने उनके सिद्धान्तोंकी अनुभूति, निकट (सम्पर्क) में आकर प्राप्त की। इन्होंने मक्का और मदीनाकी तीर्थयात्रा करते हुए, शेखशिहाबुद्दीन सुहरावर्दी तथा शेखअब्दुलकादिर जीलानीसे भी सत्संग किया और उनसे शिक्षा प्राप्तकर अपने धार्मिक सिद्धान्तोंमें ये प्रवीण हुए। जब सन् ११९२ ई० में शहाबुद्दीन गोरीने भारत पर चढ़ाईकी तो उसके साथ ये भी भारत आए। इन्होंने ११९५ ई० में अजमेरकी यात्रा की और वहाँ अपना प्रमुख केन्द्र बनाया। इनका अजमेरमें ही सन् १२३६ ई० में ९३ वर्षकी उम्रमें देहान्त हुआ। इन्हींके वंशमें वर्त्तमान सूफी विद्वान् ख्वाजाहसन निजामी हैं, जिन्होंने अनेक उत्कृष्ट ग्रन्थोंका प्रणयन किया। इन्होंने कुरानका हिन्दीमें अनुवाद भी कराया। यह सम्प्रदाय भारतमें पनपनेवाले सूफी सम्प्रदायोंमें सबसे प्राचीन है। इस सम्प्रदायको माननेवालोंकी, अन्य सम्प्रदायोंके अनुयायियोंसे संख्या अधिक है। अधिक क्या कहा जाय इसी सम्प्रदायका विशेष प्रभाव मुगल सम्राटों पर भी पड़ सका। कहा जाता है, इसी सम्प्रदायके अनुयायी शेखसलीम चिश्तीके प्रभावसे अकबरको पुत्र प्राप्त हुआ था, जिसका नाम सन्त नाम पर सलीम रखा गया।

२—सुहरावर्दी सम्प्रदाय—इस सम्प्रदायकी सबसे बड़ी विशेषता है, कि इसने सूफी सिद्धान्तोंके प्रचार करनेके निमित्त प्रतिभा सम्पन्न अनेक सूफी सन्तोंको संस्कारित किया। सन् ११९६ से १२९१ ई० की अवधिमें सर्वप्रथम इस सम्प्रदायका प्रचार सैय्यद जलालुद्दीन सुर्खपोशने किया। इनका जन्म स्थान बुखारा था और स्थायी रूपसे ये सिन्धमें रहे। यद्यपि इन्होंने भारतके अनेक स्थानोंमें अपने धर्मका प्रचार किया, किन्तु गुजरात, सिन्ध और पंजाबमें इनके केन्द्र विशेष रूपसे स्थापित हुए। इनकी परम्परामें अनेक प्रभावशाली सन्त हुए। इनके पौत्र जलालइब्नअहमद-कबीर मखदूम इजहानियाँके नामसे प्रख्यात हुए। कहा जाता है, इन्होंने मक्काकी ३६ बार यात्राकी थी। मखदूमइजहानियाँके पौत्र आबूमुहम्मद-अब्दुल्लाने सारे गुजरातमें अपने धर्मका प्रचार किया। इनके पुत्र सैयद मुहम्मदशाहआलम, जिनकी मृत्यु सन् १४७५ई० मानी जाती है, इनसे भी अधिक प्रसिद्ध हुए। इनकी समाधि अहमदाबादके निकट रसूलाबादमें है।

पूर्वमें बिहार तथा बंगालके प्रान्तोंमें भी इस सम्प्रदायके सिद्धान्तोंका प्रचार हुआ। इस सम्प्रदायके सन्तोंकी विशेषताएँ पूर्ववर्ती स्थानोंके समाधि लेखोंमें बड़ी श्रद्धा भावनासे वर्णित हैं। इसकी बड़ी विशेषता यह थी कि इस सम्प्रदायने अपने धर्ममें बड़े-बड़े राजाओं तकको दीक्षित किया। बंगालके राजा कंसके पुत्र जटमल, जो बादमें 'जादू जलालुद्दीन' के नामसे प्रसिद्ध हुए, धर्मपरिवर्त्तनके लिए प्रसिद्ध हैं। हैदराबादका वर्त्तमान् राजवंश भी इसी सप्रदायकी परम्परामें है। अतः कहना न होगा कि इस संप्रदायका महत्त्व जन-साधारणसे लेकर बड़े-बड़े राजाओं तक रहा। इस सप्रदायके सन्त राजगुरुके सम्मानसे गौरवान्वित हुए।

३—कादिर संप्रदाय—इस सप्रदायके जन्मदाता बगदादके शेख अब्दुलक़ादिर जीलानी थे। इनका कार्यकाल सन् १०७८ से ११६६ ई० तक माना जाता है। इनके उच्चकोटिके व्यक्तित्व, तेजस्वी स्वर तथा सात्विक जीवनके प्रभावसे इनके संप्रदायको बड़ी लोकप्रियता प्राप्त हुई।

इनके संप्रदायकी सबसे बड़ी विशेषता उत्कट प्रेमावेश तथा भावुकता थी; जिस कारण इस्लामी धर्मके प्रचारमें बड़ी सफलता प्राप्त हुई। सूफी-सन्तोंमें अब्दुलकादिर जीलानी अपने भावोन्मेषके लिए प्रसिद्ध हैं। इस संप्रदायका हमारे यहाँ प्रवेश सन् १४८२ ई० में अब्दुलकादिर जीलानीके वंशज सैयदबंदगीमुहम्मद गौस द्वारा सिन्धसे आरंभ हुआ। गौसने सिन्धमें ही अपना निवास-स्थान बनाया। वहीं सन् १५१७ ई० में गौसका देहान्त हो गया।* इस संप्रदायके सन्तोंका भारत भरमें स्वागत हुआ। क्योंकि उनकी भावुकता देशकी भक्तिपरंपराके अधिक समीप पहुँचकर जन-रुचिको अपनी ओर विशेष आकृष्ट करने लगी। काश्मीर इनसे प्रभावित रहा। प्रसिद्ध सूफी कवि गजाली इसी संप्रदायमें हुए थे।

४—नक्शबन्दी संप्रदाय—इस सम्प्रदायके आदि प्रवर्त्तक तुर्किस्तानके ख्वाजा बहाअलदीन नक्शबन्द थे, जिनकी मृत्यु सन् १३८९ ई० में हुई। हमारे यहाँ भारतमें इस सम्प्रदायका प्रचार ख्वाजामुहम्मदबाकी-गिल्लाह बैरग द्वारा हुआ। इनकी मृत्यु सन् १६०३ ई० में हुई। कुछ लोगोंका कथन है कि इस सम्प्रदायका भारतमें प्रचार शेखअहमदफारूकी सरहिन्दीके द्वारा हुआ। सरहिन्दीकी मृत्यु १६२५ ई० में हुई। इस सम्प्रदायको भारतमें कोई विशेष सफलता न प्राप्त हो सकी; क्योंकि इस सम्प्रदायकी बुद्धिवादी क्लिष्टता तथा सम्प्रदायवादी दृष्टिकोणकी जटिलता प्रचारमें बाधक हुई। वह अपने क्लिष्ट तर्कजालमें केवल वर्ग विशेषमें ही पनपा। साधारण जनतासे यह सम्प्रदाय अग्राह्य ही रह गया। इस प्रकार भारतमें आनेवाले सम्प्रदायोंमें सबसे दुर्बल और प्रभाव-हीन यही सम्प्रदाय था।

---

* अन्य मतसे यह संप्रदाय १३८८ ई० में अब्दुलकरीमबिनइब्राहीम अलजीलीके द्वारा भारत आया। इसके पश्चात् शेखसैयदनियामतुल्ला नामक दरवेश भारत आया। देखिए—"हिन्दी प्रेमाख्यानक-काव्य"—डा० श्रीकमलकुल श्रेष्ठ एम० ए०, डी० फिल०।

५—जुनैदी संप्रदाय—अभी तक इस संप्रदायका क्रमबद्ध विवरण नहीं प्राप्त हो सका है। भारतमें सर्वप्रथम आनेवाला जुनैदी दरवेश दातागंजबख्श था, चौदहवीं शताब्दीमें बाबाइशाक मगरबीका नाम उल्लेखनीय है। इन्होंने खट्टूमें अपना केन्द्र बनाया था। इनका उत्तराधिकारी शेखनसीरुद्दीन अहमद था, जिसने गुजरातको अपना कार्य-क्षेत्र बनाया। इसके पश्चात् बहाउद्दीनने सरहिन्दमें इसका प्रचार किया।

६—शत्तारी संप्रदाय—चौदहवीं शताब्दीके अन्तिम समयमें अब्दुल्लाह शत्तारी नामक सूफी दरवेशने शत्तारी संप्रदायकी संस्थापना की। इनके शिष्योंका नाम तो प्रकाशमें नहीं आया, किन्तु शत्तारीने इस संप्रदायमें कुछ नवीन प्रथाएँ चलाईं। भारतीय जनताने उनका विश्वास न किया। इस संप्रदायमें मुहम्मद गौस नामके एक दरवेश और थे, जिनके संबंधमें कहा जाता है कि सम्राट् हुमायूँ तकको इन्होंने दीक्षा दी। इस संप्रदायमें कुछ दरवेश और भी थे जिसके नाम हैं—बहाउद्दीन जौनपुरी, मीरसैय्यदअली कौसाम और शाहपीर।

उपर्युक्त सम्प्रदायोंके अतिरिक्त "मदारी" नामक एक सम्प्रदाय और भी है, जिसे भारतमें शाहमदार बदीउद्दीन नामक सन्तको प्रचारित करनेका श्रेय है। इस सम्प्रदायका दूसरा नाम "उवैसी" भी था। इसका विशेष प्रचार उत्तरी भारत तथा उत्तर प्रदेशमें हुआ। अब्दुलकुद्दूस गंगुई तथा शाहमदारी इसमें दीक्षा लिए थे।

दार्शनिक दृष्टिकोण—उपर्युक्त सभी सम्प्रदाय प्रायः तुर्किस्तान, इराक, इरान और अफगानिस्तानसे विविध सन्तोंके द्वारा भारतमें फैले। इन सम्प्रदायोंका पन्द्रहवीं शताब्दी तक स्वतंत्र विकास तो होता रहा, किन्तु आगे चलकर ये उपसम्प्रदायोंमें बँट गए। इनमें तात्विक दृष्टिसे तो कोई अन्तर नहीं था, यदि अन्तर था भी तो केवल गुरु-परम्पराका ही। तात्विक-दृष्टिसे ये समस्त सूफी सन्त इस्लामका ही प्रचार कर रहे थे। मुसलमानोंके शासनकालमें हिन्दू जनताने तलवारके आगे मस्तक तो झुका

दिया था, किन्तु विदेशी शासनसे वह शंकितचित्त तो रहती ही थी। उसका विश्वास न जमता था। यही काम सूफियों द्वारा हुआ; क्योंकि ये सूफ़ी सन्त अपने धार्मिक जीवनमें अत्यन्त सरल और सहिष्णु थे। मुसलमान बादशाहों द्वारा धर्म-प्रचार उतना सम्भव न था जितना सूफ़ी सन्तोंके लिए संभव था। उस समयका राजनैतिक वातावरण अत्यन्त क्षुब्ध था। सुलतानकी मृत्यु होते ही उपद्रव मच जाता था, जिस कारण प्रत्येक शासकको कुछ समय तक तो शान्ति-स्थापन तथा अपने पद और प्राणकी रक्षामें ही चिन्तित रहना पड़ता था। अधिक क्या कहा जाय, आरम्भिक अफगान बादशाहोंको तो शान्ति-पूर्वक राज्य करनेका अवसर ही न मिला। यद्यपि साधारण ढंगसे उन्होंने धर्म-प्रचारकी भी व्यवस्था कर रखी थी, किन्तु उस व्यवस्थामें बल न था। धर्म-प्रचार-कार्यमें तो सूफ़ी दरवेशोंने ही विशेष सफलता पायी; क्योंकि एक तो इन दरवेशोंमें धर्म-प्रचारकी बड़ी लगन थी और दूसरे इन दरवेशोंमें बड़े-बड़े लोग भी थे, जिनका प्रभाव पड़े बिना न रहता। सैय्यदअशरफ जहाँगीर दरवेश तो इस्फहानका बादशाह था, उसने सूफ़ी धर्मके लिए सिंहासन तक त्याग दिया था। ये दरवेश बड़े विद्वान् थे, जिससे इनके कार्य जादूकी भाँति आश्चर्यपूर्ण होते थे। इनका अध्ययन तगड़ा तो होता ही था, ये अनेक गुरुओंके निकट जा-जाकर ज्ञान प्राप्त करनेमें बड़ा समय भी देते थे। कहना न होगा कि इस मार्ग पर वही आता भी था जो सच्चा विद्यानुरागी होता था। सूफ़ी दरवेशोंके साथ उनकी लगी हुई करामाती आख्यायिकाएँ प्रसिद्ध हैं, जिनसे जनता बहुत प्रभावित हुआ करती थी। संक्षेपमें कहा जा सकता है कि सूफ़ी दरवेशोंने अपने शान्त और अहिंसापूर्ण प्रभावसे इस्लामी संस्कृति और धर्मको जितना व्यापक बनाया—जितनी दूर तक प्रचारित किया—उतना व्यापक मुसलमान बादशाहोंकी तलवारें उसे न बना सकीं। दूसरे धर्मानुयायी जनवर्गको अपने व्यक्तिगत सात्विक प्रभावमें लाकर इन सूफ़ी दरवेशोंने इस्लामके अनुयायियोंकी संख्यामें अपरिमित

अभिवृद्धि की; क्योंकि यह उनकी प्रेमकी विजय थी, जिसमें आत्मीयता और विश्वासकी अपार क्षमता होती है। इन सूफी दरवेशोंकी विशेष सफलताका एक कारण और भी था, जिसे हम सामाजिक समता और एकता कह सकते हैं। भारतीय समाजकी निम्नस्तरकी जातियोंको भी (यदि वे धर्म परिवर्त्तन कर मुसलमान हो जायँ, तो वे भी बहुत बड़े सम्मान और श्रद्धाके पात्र समझे जाते थे) आदर मिलता था। यही नहीं, पूर्व संस्कारोंके प्रति सहिष्णु भावके साथ उन्हें अन्तर्जातीय विवाहमें पूर्ण स्वतन्त्रता और सुविधा भी दी जाती थी और अपने नवीन स्वीकृत धर्मके पूर्ण अधिकार भी उन्हें दिए जाते थे। उनका इतना ध्यान रखा जाता था कि इस्लामके न्यायाधीश भी उन्हें 'शेख', 'मलिक' और 'खलीफा' आदिकी उपाधियोंसे विभूषित करते थे। अस्पृश्य और घृणित जातियोंके लाखों व्यक्ति सूफी सन्तोंके चमत्कारों और सात्विक जीवनकी सभी सुविधाओंके प्रलोभनसे इस्लाम-धर्मके अन्तर्गत सूफी सम्प्रदायमें दीक्षित हुए। इस प्रकार सूफी धर्मके प्रचारमें दरवेशोंने तीन शताब्दियोंमें ही इतनी प्रगति लायी कि सूफी धर्मके अन्तर्गत चौदह सम्प्रदायोंकी अभिवृद्धि हुई। इनका विशेष विवरण आइने-अकबरीमें मिलता है।

इतना होते हुए भी हमारे देशमें पढ़ी लिखी और अभिजात वर्गकी जनतामें सूफी सिद्धान्तका कोई विशेष प्रभाव न पड़ सका। दाराशिकोह तथा दातागंजबख्श जो बहुत बड़े सिद्धान्त-निर्माता माने जाते हैं, कोई नवीन खोज न उपस्थित कर सके। उन्होंने पुराने लेखकों तथा कवियोंके ही विचारोंकी पुनरावृत्ति की। वास्तवमें सूफी तापसी जीवनमें कुछ-कुछ योग प्रवृत्तियाँ दिखायी पड़ती हैं। शेखबुरहान तो योगी ही कहलाते थे। अतः कालान्तरमें सूफी-धर्म गोरखपंथी धर्मसे मिला हुआ स्पष्ट दिखाई पड़ने लगा। गोरखपंथमें योग ही प्रधान वस्तु थी और भारतमें उसी प्रकार गोरखपंथी सन्तोंमें भी करामाती कहानियाँ प्रचलित थीं, जिस प्रकार फारसमें सूफियोंके साथ। साधारण जनता गोरखपंथियों और

सूफियोंकी इन करामाती कहानियोंसे बहुत प्रभावित हुआ करती थी। विदेशसे सूफियोंके साथ आनेके कारण ये प्रवृत्तियाँ और भी बढ़ीं। भारतमें जिस प्रकार सरल जनताको प्रभावित करनेके लिए यहाँके गोरख-पंथी योगी समस्त विश्वको इसी मनुष्य-शरीरके भीतर देखनेको कहते थे* उसी प्रकार सूफी भी यही कहा करते थे। "सुनु चेलाजस सब संसारू। श्राही भाँति तुम कया बिचारू। और भी "जैसी अहै पिरथमी सगरी। तैसी जानहु काया नगरी।" † इस प्रकार सूफी धर्म और भारतीय धर्ममें कुछ बातोंकी समानता थी, जैसे धार्मिक सौहष्णुताके साथ-साथ अपने-अपने धर्मके प्रचारमें रहस्यवादी प्रणयमूलाभक्ति तथा गुरु-परम्पराओं और उपसम्प्रदायकी स्थापना आदिमें काफी साम्य था।

अद्वैतवादी-दर्शनका, शंकराचार्यने सूफी-धर्मके बहुत पहलेही प्रतिपादन किया था, जिसका भारतके कोने-कोने तक प्रभाव जम चुका था। आचार्य शंकरने जिस ब्रह्मसूत्रका भाष्य लिखा, उसके अनेक भाष्य लिखे गए। वास्तवमें आचार्य शंकरकेही अद्वैतवादके आधार पर द्वैत, द्वैताद्वैत और शुद्धाद्वैत अनेक वाद प्रचलित हुए। इन सभी वादोंका मूलस्रोत अद्वैतवादही था, जो तात्विक दृष्टिसे कुछ भिन्न होते हुए भी वादोंको मार्ग दिखारहा था। सर्वसाधारण जनतामें एकेश्वरवाद और अद्वैतवादमें कोई विशेष अन्तर न समझ पड़ा। मध्ययुगमें यह एकेश्वरवाद भी हमें हिन्दू-धर्ममें मिलता है।

मुहम्मद साहबके समयमें अरबमें जो धार्मिक विप्लव हो चुका था, उसका वर्णन हम पहले कर चुके हैं। अतः उसी आधार पर कहा जा सकता है कि वहाँ की जनता अध्यात्मकी प्रेमी न थी। जनताका ध्यान तत्वचिन्तनसे अधिक युद्ध पर रहता था। शास्त्रसे अधिक महत्व वहाँकी

---

* देखिए गोरखबानी (१९९९) पृ० १३५। † जायसी-ग्रन्थावली देखिए।

जनता शासको देती थी। "मुहम्मद साहबके निधनके उपरान्त मुसलिम समुदायमें 'इमान', 'इसलाम' एवं 'दीन' के संबंधमें जो प्रश्न उठे, उनका समुचित समाधान सहज न था। इसलामको 'तौहीद' का गर्व था। मुसलमान समझते थे कि तौहीदका सारा श्रेय मुहम्मद साहबको ही है। परन्तु मनुष्य मननशील प्राणी है। उसकी बुद्धि सहसा शान्त नहीं होती। जिज्ञासाके उपशमनके लिए उसे छानबीन करनी ही पड़ती है। अत मनीषियोंने देखा कि इसलामका अल्लाह एक परमदेवतासे किसी प्रकार आगे नहीं बढ़ सकता, इसके अतिरिक्त अन्य देवता सेव्य नहीं हैं, सो तो ठीक है, पर अन्य सत्ताएँ तो हैं? फरिश्तोंकी बात अभी अलग रखिए। स्वयं मुहम्मद साहबकी वास्तविक सत्ता क्या है? इन्सान और अल्लाहसे उनका क्या संबंध है? अब ऐसे-ऐसे विकट, परन्तु सहज और सच्चे प्रश्नोंका समाधान तौहीदके प्रतिपादनके लिए अनिवार्य था। भारतीय ऋषियोंके सम्मुख जिस प्रकार आत्मा और ब्रह्मके समन्वयका प्रश्न था, उसी प्रकार सूफियोंके सामने अल्लाह और मुहम्मदसाहबके संबंधका। निदान उसमें भी चिन्तनका प्रवेश हो ही गया।"*

कुरानमें वर्णित अल्लाह; आदि, अन्त, व्यक्त, अव्यक्त, स्वयम्, भगवान्, रब्ब, रहीम, उदार, घोर, गनी, नित्य, कर्त्ता आदि सब कुछ है, भक्तों पर उसकी बड़ी अनुकम्पा रहती है और जो भक्त नहीं हैं, उनके ऊपर उसका कोप भी होता है, वह हमारे प्रत्येक कार्योंको देखता है, हम उसकी दृष्टिसे बच नहीं सकते, उसके प्रणिधान और शरणागतिसे हमारा उद्धार हो सकता है, वह प्रसन्न होकर हमें शाश्वत सुख दे सकता है, इस्लामका अल्लाह सगुण एवं साकार अल्लाह है, सूफी सामान्यतः इसी प्रियतम ईश्वरके वियोगी हैं, सूफीमतमें बन्दे तथा खुदाका एकीकरण है, उसमें मायाको नहीं माना गया है, किन्तु मायाकी जगह शैतानको

*तसव्वुफ अथवा सूफीमत पृ० १२६—श्रीचन्द्रबली पाण्डेय।

स्थिति मानी गयी है। जिस प्रकार मायाके प्रभावसे मनुष्य मूढ हो जाता है, उसी प्रकार शैतान बन्देको भ्रममें डालकर उसे कुमार्ग पर ले जाता है। खुदासे मिलनेके लिए बन्देको अपनी रूहका परिष्कार करना पड़ता है। इसके लिए 'शरीयत', 'तरीकत', 'हकीकत' और 'मारिफत' आदि चार दशाएँ मानी गयी हैं। 'मारिफत' में रूह (आत्मा) 'बका' (जीवन) प्राप्त करनेके लिए 'फना' हो जाती है। 'फना' होनेमें इश्क (प्रेम) का विशेष हाथ है। बिना इश्कके 'बका'की कल्पनाही नहीं हो सकती 'बका' में रूह (आत्मा) अपनेको 'अनलहक'की अधिकारिणी बना सकती है।*

'अनलहक'की स्थितिमें आत्मा आलमे 'लाहूत'की निवासिनी बनती है। 'लाहूत' के पहले अन्य तीन जगतोंमें रूह अपने परिष्करणका प्रयत्न करती है। उन तीनों जगतके नाम हैं आलमे नासूत (सत् भौतिक संसार), आलमे मलकूत (चित्-संसार) और आलमे जबरूत (आनन्द संसार)। 'लाहूत' में हक (ईश्वर) से सामीप्य होता है। जो सदैव एक है। इसे और भी स्पष्ट किया जा सकता है:—सूफीमतमें ईश्वर एक है, जिसका नाम 'हक' है। आत्मा और उसमें कोई भेद नहीं। आत्मा 'बन्दे' के रूपमें अपनेको प्रस्तुत करती है और 'बन्दा' इश्क अर्थात् प्रेमके आधार पर ईश्वर तक पहुँचनेका प्रयत्न करता है। शरीयत, तरीकत, हकीकतको पार करती हुई आत्मा जब मारिफत अवस्थाको पहुँचता है, तब वह ईश्वर-को प्राप्त करती है। यहाँ रूह स्वयं 'फना' होकर 'बका' के लिए प्रस्तुत होती है। इस प्रकार आत्मामें परमात्माका अनुभव होने लगता है और 'अनलहक' सार्थक हो जाता है। सूफीमतमें प्रेमका बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान है, क्योंकि इस मतमें प्रेम ही धर्म है और कर्म भी। या यों कहा जा सकता है कि सूफीमत ही प्रेममय है। इस प्रेमके साथ इसका नशा भी

---

* कबीर ग्रन्थावली पृ० १७७—"हम चुबूदिन बूद खालिक गरक हम तुम पेस।"

प्रधान है, क्योंकि इसी नशेके माध्यमसे ईश्वरानुभूतिका अवसर प्राप्त होता है। इसके कारण संसारकी विस्मृति हो जाती है, शरीरका कुछ ध्यान नहीं रह जाता। मात्र परमात्माकी ही 'लौ' लग जाती है। एक बात और भी स्पष्ट कर देनी आवश्यक है कि अनुरागके आधार नारीका ही रूप ईश्वरको इस मतने माना है। भक्त, पुरुष बनकर उस स्त्रीकी प्रसन्नताके लिए नाना प्रकारकी चेष्टा करता है। उससे प्रेमकी भीख माँगता है।

रचनाएँ और काव्य-पद्धति—प्रेम-काव्यकी आदिम रचना "चन्दावन" या "चन्दावत" है।* इसके बाद 'स्वप्नावती', 'मुग्धावती', 'मृगावती', 'खण्डरावती', 'मधुमालती' और 'प्रेमावती' आदि रचनाएँ मिलती हैं। उपर्युक्त ग्रन्थोंकी ओर प्रसिद्ध सूफी कवि मलिकमुहम्मद जायसीने अपनी पुस्तक 'पद्मावत' में इसका संकेत कर दिया है :—

"विक्रम धँसा प्रेम के बारा। सपनावति कहँ गयउ पतारा॥
मधू पाछ मुगधावति लागी। गगनपूर होइगा बैरागी॥
राजकुँवर कंचनपुर गयऊ। मिरगावति कहँ जोगी भयऊ।।
साधे कुँवर खंडावत जोगू। मधुमालति कर कीन्ह वियोगू॥
प्रेमावति कहँ सुरपुर साधा। उपा लागि अनिरुधवर बाँधा॥†

इन ग्रन्थोंके अतिरिक्त दामो नामक कविकी "लक्ष्मणसेन-पद्मावती" तथा जायसी कृत 'पद्मावत' ग्रन्थ और हैं। इन प्रेम-कथाओंके अतिरिक्त अनेक प्रेम-कथाएँ ऐसी भी मिलती हैं, जो संपूर्णतः आख्यानक थीं; जिनमें प्रेमके मनोविज्ञानके अतिरिक्त और कोई व्यंजना नहीं है। यह ध्यान देनेकी बात है कि ये रचनाएँ पद्य और गद्य दोनोंमें लिखी गयी हैं, जिनमेंसे प्रमुख हैं "माधवानल काम कन्दला", "कुतुब सतक", "रस-

* हिंदी-साहित्यका आलोचनात्मक इतिहास—(पृ० ३०६)—डा० रामकुमार वर्मा एम० ए०, पी-एच० डी०। †—जायसी-ग्रन्थावली (पृ० १०७-१०८) (ना० प्र० स०) सं० आचार्य रामचंद्र शुक्ल।

रतन", ज्ञानद्वीप", "पंचसहेली कवि छीहलरी कही", "सदैवछसावलिंगारा दूहा", "कनक मंजरी", "मैनासत", "मदन सतक", "ढोला मारु रा दूहा", "बिनोदरस" "पुहुपावती", "नल-दमन", "जलाल गहाणी री बात", "हंस-जवाहर", "चन्दनमलयागिरि री बात", "मधुमालती", "त्रिया विनोद" "इन्द्रावती", "कामरूपकी कथा", "चन्द्रकुँवर री बात", "प्रेमरतन" और "पनावीरमदेरी बात" ये रचनाएँ पद्यमें हैं। इनके अतिरिक्त "बात संग्रह", "बीजल विजोगण री कथा", "मोमल री, बात", "रावल लखणसेन री बात", "राणै खेतैरी बात", "देवरे नायकदेरी बात", "बीझरै अहीर री बात", ऊमादे भटियाणी री बात", सोहणी री बात" और पँमै घोरान्धार री बात" आदि रचनाएँ गद्यमें हैं।

उपर्युक्त रचनाओंके लेखक हिन्दू और मुसलमान दोनों हैं। इन रचनाओंकी कथा-वस्तु हिंदू-पात्रोंके जीवनसे ली गयी है। इन रचनाओंमें जिनके लेखक हिंदू हैं, वे आख्यायिका और मनोरंजनकी भावनासे पूर्ण हैं। किसी-किसी रचनामें सिद्धांत-निरूपण भी पाया जाता है; ऐसी रचनाओंके लेखक मुसलमान हैं, जिनकी रचनाओंमें कथा और सूफी सिद्धांतोंकी गतिके साथ-साथ चलती है। इन समस्त रचनाओंमें सबसे अधिक प्रसिद्ध और उत्कृष्ट रचना "पद्मावत" है, जिसके लेखक मलिकमुहम्मद जायसी हैं।* 'पद्मावत' की रचनाके पूर्व प्रेम-काव्य पर कुछ ग्रन्थ लिखे जा चुके थे, यह तो 'पद्मावत' में कविने स्वीकृत ही किया है। मलिकमुहम्मद जायसीके बहुत पहलेही महात्मा कबीरने हिन्दू और मुसलमान एकताका ऐसा वातावरण पैदा किया था, जिससे कि साधारण जनता राम और रहीमके भेदको मिटानेके प्रयत्नमें थी। हिन्दू साधुओं और मुसलमान

*जायसीका जन्म सं० ९०० हिजरी माना जाता है, ये जायसके रहनेवाले थे। कहा जाता है ये एक आँखके काने थे, जिससे बड़े कुरूप थे।

फकीरोंको दोनों धर्मके लोग आदर देते थे। किन्तु जो साधु या फकीर भेद-भावसे रहित होते थे, उन्हींको दोनों दीनोंके लोग समादर करते थे। इस प्रकार जनताके हृदयमें (हिन्दू और मुसलमान दोनोंमें) एक दूसरे-के प्रति सद्भावना पैदा होने लगी और धार्मिक विचारोंमें आदान-प्रदान होने लगा। हिन्दू और मुसलमान दोनोंके मध्य साधुताका सामन्य आदर्श प्रतिष्ठित हो गया था। भारतमें हिंदू धर्मके प्रतिनिधि चैतन्य महाप्रभु, वल्लभाचार्य तथा रामानन्द आदिके प्रभावसे प्रेमप्रधान वैष्णव-धर्मका जो व्यापक प्रभाव बंगाल और गुजरातमें पड़ा, उसका सबसे अधिक विरोध वाम-मार्ग और शाक्तमतने किया। शाक्त मतमें विहित पशुहिंसा, मंत्र-तंत्र, यक्षिणीकी पूजा, वेद-विरुद्ध आचरणके रूप समझी जाने लगी। उधर विदेशसे आयी मुसलमान जनतामें भी कुछ लोग (जो फकीर थे) अहिंसाका सिद्धान्त ग्रहण कर मांस भक्षणको बुरा कहने लगे थे।

भारतवर्षमें यद्यपि पहलेसे ही अमीर खुसरो और कबीर आदि कवियों ने हिन्दू जनताके प्रेम, विनोद और धार्मिक भावनाओंमें योग देकर भावोंके पारस्परिक आदान-प्रदानका महत्वपूर्ण कार्य प्रारम्भ कर दिया था, किन्तु उसकी पूर्ण प्रतिष्ठा कुतबन, जायसी आदि प्रेमाख्यानक काव्य-स्रष्टाओंके द्वारा हुई। इन कवियोंने अपनी इन रचनाओंके द्वारा प्रेमका पवित्र मार्ग दिखाते हुए उन सामान्य जीवन दशाओं पर प्रकाश डाला, जिनका प्रभाव मनुष्यमात्रके हृदय पर एक समान दिखाई पड़ता है। इन मुसलमान कवियोंने हिन्दुओंकी कहानियाँ हिन्दुओंकी भाषासे पूरी सहृदयताके साथ लिखकर उनके जीवनकी मर्मस्पर्शिनी अवस्थाओंके साथ अपने उदार हृदयका पूर्ण सामंजस्य दिखानेकी चेष्टा की।* वास्तवमें महात्मा

* यहाँ यह बात ध्यानमें रखनी चाहिये कि जायसी आदि कवियोंने अपनी रचनामें हिन्दुओंकी कहानी अवश्य कही है; किन्तु धर्मके सम्बन्धमें इस्लाम पर इन्होंने अधिक बल दिया है।

कबीरने पहले ही भिन्न प्रतीत होती हुई परोक्ष सत्ताकी एकताका आभास दिया था, किन्तु हिन्दी-प्रेमाख्यानक-काव्योंके रचयिताओंने प्रत्यक्ष जीवन-की एकताका दृश्य सामने रखनेकी चेष्टा की।

इन प्रेमाख्यानक-काव्योंकी विशेषता यह है कि इनकी रचना भारतीय चरित काव्योंकी सर्ग-बद्ध शैली पर न होकर फारसीकी मसनवियोंके ढर्रे पर हुई है, जिनमें कथा सर्गों या अध्यायोंमें विस्तारके हिसाबसे नहीं बँटती, वह बराबर चलती है। शीर्षकके रूपमें विशेष घटनाओं या प्रसंगों-का निर्देश रहता है। मसनवीका साहित्यिक नियम यही समझा जाता है कि सारा काव्य एक ही मसनवी छन्दमें हो और परम्परा निर्वाहके अनुसार उसमें कथारम्भके पूर्व ईश्वर-स्तुति, पैगंबर-वन्दना तथा उस समय-के राजाकी प्रशंसा भी हो। मसनवीकी यह प्रणाली प्रायः सभी हिन्दी-प्रेमाख्यानक-काव्योंमें पायी जाती है। ये प्रेमाख्यानक-काव्य अवधी भाषामें एक नियमक्रमके साथ, मात्र दोहे और चौपाई छन्दमें लिखे गए हैं *।

इन सभी प्रेमाख्यानक-काव्योंमें प्रतिनिधिरचना 'पद्मावत' है और प्रतिनिधि कवि मलिकमुहम्मद जायसी हैं। अतः अब 'पद्मावत' पर ही अध्ययन उपस्थित कर प्रेमाख्यानक-काव्यका प्रसंग समाप्त किया जाता है।

जायसीका पद्मावत—"पद्मावत" की कलात्मकताका परीक्षण करनेके पूर्व यह आवश्यक है कि इस ग्रन्थकी कथाका संक्षिप्त परिचय दे दिया जाय। 'पद्मावत' की कथा इस प्रकार है—"सिंहल द्वीपमें राजा गन्धर्वसेन राज्य करता था, उसकी पुत्रीका नाम पद्मावती था। राजभवन-में हीरामन नामक एक विलक्षण तोता था; जिससे पद्मावती बहुत प्रेम करती थी और वह तोता सदा उसीके समीप रह कर अनेक प्रकारकी बातें कहा करता था। जब पद्मावती कुछ बड़ी हुई तो उसके सौन्दर्यकी प्रशंसा

---

* जायसीने सात-सात चौपाइयों (अर्द्धालियों) के बाद एक-एक दोहेका क्रम रखा है।

सारे भूमण्डलमें होने लगी। किन्तु विवाहका समय आ जाने पर भी जब उसका विवाह न हुआ, तब वह रात-दिन हीरामन तोतसे इसकी चर्चा किया करती थी। एक दिन उसके साथ समवेदना प्रकट करते हुए तोतेने कहा यदि कहो तो तुम्हारे लिए देश-देशान्तरमें भ्रमण कर योग्य वर ढूँढ दूँ। इसका समाचार पाते ही राजा क्रुद्ध हो गया और उसने तोतेके वधकी आज्ञा दे दी। किन्तु राजपुत्री पद्मावतीने किसी प्रकार उसे बचा लिया। तोतेने पद्मावतीसे विदा माँगी, किन्तु पद्मावतीने उसे रोक लिया। हीरामन उस समय रुक तो गया, किन्तु उसे भय तो हो ही गया था।

"एक बार पद्मावती सखियोंके साथ क्रीड़ा करते हुए मानसरोवरमें स्नान करने गयी, उसी समय हीरामन तोता चल पड़ा, जब वह एक बनमें गया तो पक्षियों द्वारा उसका बड़ा सम्मान हुआ। दस दिनोंके पश्चात् एक बहेलिया हरी पत्तियोंकी टट्टी लिए उस बनकी ओर चला आ रहा था और पक्षी तो उसे देखकर उड़ गए, किन्तु हीरामन चारेके लोभसे वहीं रहा। बहेलिएने अन्तमें उसे पकड़ लिया और बाजारमें उसे बेचने लाया। चित्तौरके एक व्यापारीके साथ एक दीन हीन ब्राह्मण भी कहींसे कुछ रुपए लेकर लाभकी आशासे सिंहलकी हाटमें आ पहुँचा। उसने उस विलक्षण तोतेको खरीद लिया और वह चित्तौर वापस लौट आया। उस समय चित्तौरका राजा चित्रसेन मर चुका था। उसका पुत्र रत्नसेन गद्दी पर बैठा था। हीरामनकी प्रशंसा सुन उसने उसे एक लाख रुपएमें खरीद लिया।

"एक दिन रत्नसेन शिकार खेलने चला गया। उसकी रानी नागमती तोतेके पास आयी और बोली "मेरे समान सुन्दरी और भी कोई संसारमें है?" इस पर हीरामनको हँसी आ गयी और उसने कहा कि सिंहलकी पद्मिनी स्त्रियोंकी समानतामें तुम्हारी वैसी ही सुन्दरता फीकी है जैसे दिनके प्रकाशकी समानतामें अँधेरी रात फीकी रहती है। रानीने

सोचा; यदि यह तोता किसी दिन ऐसे ही राजासे भी कह देगा तो वे मुझसे प्रेम करना छोड़कर पद्मावतीके लिए योगी होकर चले जायँगे। उसने अपनी दासीको उस तोतेका वध कर देनेकी आज्ञा दी; किन्तु दासीने इस कार्यका परिणाम सोचकर तोतेका वध न किया, उसे छिपा दिया। जब शिकारसे राजा लौटा और उसे तोता न दिखायी पड़ा, तब वह अत्यन्त कुपित हुआ। धायने तोता लाकर उपस्थित किया और उसने सब वृत्तान्त सुना दिया। अब क्या था राजाको पद्मावतीके सौन्दर्य-वर्णनकी बड़ी उत्कंठा हुई और हीरामनने उसके स्वरूपका बड़ा विस्तृत वर्णन किया। राजा वर्णन सुनते ही उसपर मुग्ध हो गया और अन्तमें हीरामनको साथ ले, योगी हो; घरसे चल पड़ा। राजाके साथ सोलह हजार कुँवर भी योगी होकर चल पड़े। मध्य प्रदेशके अत्यन्त दुर्गम स्थानोंको लाँघते हुए, वे लोग कलिंग देश पहुँचे। वहाँ राजा गजपतिसे जहाज लेकर रत्नसेन सब साथियों सहित सिंहलद्वीपकी ओर चल पड़ा। क्षारसमुद्र, क्षीरसमुद्र, दधिसमुद्र, उदधिसमुद्र, सुरासमुद्र, और किलकिला समुद्रको पारकर वे सब सातवें मानसरोवर समुद्रमें जा पहुँचे, यह समुद्र सिंहलद्वीपके चारों ओर फैला है। सिंहलद्वीपमें उतरकर रत्नसेन अपने सब साधुओंके साथ योगी वेशमें महादेवके मन्दिरमें बैठकर तप और पद्मावतीका ध्यान करने लगा। इसी बीच हीरामन पद्मावतीके पास चला गया। जाते समय उसने रत्नसेनसे कह दिया था कि बसन्त-पंचमीके दिन पद्मावती इसी महादेवके मंडपमें बसंत पूजा करने आवेगी। उसी समय तुम्हें उसका दर्शन होगा। तुम्हारी इच्छा पूरी हो जायगी। उधर अधिक दिनोंके बाद हीरामनसे मिलने पर पद्मावती रोने लगी। हीरामनने अपने भाग निकलने और बेचे जानेका सारा वृत्तांत कह सुनाया, इसके साथ ही तोतेने राजा रत्नसेनके रूप, कुल, ऐश्वर्य और तेज आदिका बड़ा बखान किया और कहा वह तुम्हारे योग्य वर है। वह तुम्हारे प्रेममें योगी होकर यहाँ आ पहुँचा है। पद्मावतीने उसकी प्रेम-व्यथा सुनकर

जयमाल देनेकी प्रतिज्ञा की और कहा कि बसन्त पंचमीके दिन पूजाके बहाने उसे देखने जाऊँगी। यह सब समाचार राजाको तोतेने लौटकर मठपमें सुना दिया। बसंत पचमीके दिन अपनी सभी सखियोंके साथ पद्मावती मठपमें गयी और उधर भी पहुँची, जिधर रत्नसेन अपने साथियोंके साथ था। ज्योंही रत्नसेनकी आँखें उस अनिन्द्य सुन्दरी पद्मावती पर पड़ीं, वह मूर्च्छित होकर गिर पड़ा। पद्मावतीने भी रत्नसेनको वैसा ही पाया जैसा हीरामनने कहा था। पद्मावती मूर्च्छित योगीके पास गयी और होशमें लानेके लिए उस पर चन्दन छिड़का। जब उसकी मूर्च्छा दूर हुई, तब चन्दनसे उसके हृदय पर "जोगी तूने भिक्षा प्राप्त करने योग्य योग नहीं सीखा, जब फल प्राप्तिका समय आया तब तू सो गया।" लिखकर चली गयी। जब राजाको होश हुआ तब वह बहुत पश्चात्ताप करने लगा। अन्तमें वह जल मरने पर आरूढ हुआ। सभी देवता भयभीत हो गए कि कहीं यह जलमरा तो इस भयंकर विरहाग्निसे समस्त लोक भस्म हो जायँगे। उन्होंने जाकर महादेव पार्वतीके यहाँ पुकार की। महादेव कोढीके वेशमें बैल पर चढे राजाके पास आए और चलनेका कारण पूछने लगे। इधर पार्वतीकी, जो महादेवके साथ थीं, यह इच्छा हुई कि राजाके प्रेमकी परीक्षा लें। वे अत्यन्त सुन्दरी अप्सराका रूप धर राजाके समीप जाकर बोलीं—"मुझे इन्द्रने भेजा है। पद्मावतीको जाने दो, तुझे अप्सरा प्राप्त हुई।" रत्नसेन बोला—"मुझे पद्मावतीको छोड़ और किसीसे कोई प्रयोजन नहीं।" पार्वतीने महादेवसे कहा—'राजाका प्रेम सच्चा है।' राजाने देखा इस कोढीकी छाया नहीं पड़ती, इसके शरीर पर मक्खियाँ नहीं बैठतीं, इसकी पलकें भी नहीं गिरतीं, अतः यह निश्चय ही कोई सिद्ध पुरुष है। फिर महादेवको पहचानकर वह उनके पैरों पर गिर पड़ा। महादेवने उसे सिद्धि गुटिका दी और सिंहलगढमें घुसनेका मार्ग दिखाया। सिद्धि-गुटिका पाकर रत्नसेन सब योगियोंके साथ सिंहलगढ पर चढने लगा।

"जब यह समाचार राजा गन्धर्वसेनको मिला, तब उसने दूत भेजा। दूतोंसे योगी रत्नसेनने पद्मिनीके पानेका अभिप्राय कहा। दूत कुपित होकर लौट पड़े। इसी बीच हीरामन रत्नसेनका प्रेम सन्देश लेकर पद्मावतीके पास पहुँचा और पद्मावतीका प्रेम-भरा सन्देश राजा रत्नसेनसे कहा। इससे रत्नसेनको और भी प्रेरणा मिली। गढ़के भीतर जो अगाध कुण्ड था, उसमें वह रातको घँसा और भीतरीद्वारको, जिसमें वज्रके किवाड़ लगे थे, उसने जा खोला, परन्तु इसी बीच सबेरा हो गया और वह अपने साथी योगियोंके सहित घेर लिया गया। राजा गन्धर्वसेनके यहाँ यह विचार हुआ कि योगियोंको पकड़कर सूली दे दी जाय। दल बलके सहित सब सरदारोंने योगियों पर चढ़ाई की। रत्नसेनके साथी युद्धके लिये उत्सुक हुए, रत्नसेनने उन्हें उपदेश देकर शान्त कर दिया और कहा प्रेम मार्गमें क्रोध करना उचित नहीं। अन्तमें सब योगियों सहित रत्नसेन पकड़ा गया। ऐसा समाचार पाने पर पद्मावतीकी दशा अत्यन्त खराब हो गयी। हीरामन तोतेने आकर उसे धैर्य बँधाया कि रत्नसेन पूर्ण सिद्ध हो गया है, वह मर नहीं सकता। जब रत्नसेन बाँधकर सूलीके लिए लाया गया, तब जिसने जिसने उसे देखा, सबने कहा—"यह कोई राज पुत्र जान पड़ता है। इधर सूलीको तैयारी हो रही थी, उधर रत्नसेन पद्मावतीका नाम रट रहा था, महादेवने जब योगी पर ऐसा सङ्कट देखा तब वे और पार्वती भाँट भाँटिनका रूप धर कर वहाँ पहुँचे। इसी बीच हीरामन तोता भी रत्नसेनके पास पद्मावतीका सन्देश लेकर आया कि "मैं भी हथेली पर प्राण लिए बैठी हूँ; मेरा जीना मरना तुम्हारे साथ है।" भाँट (जो कि वास्तवमें महादेव थे,) ने राजा गन्धर्वसेनको बहुत समझाया कि यह योगी नहीं, राजा है। यह तुम्हारी कन्याका योग्यवर है, किन्तु राजा इस पर भी और अधिक क्रुद्ध हो गया। उधर योगियोंका दल चारों ओरसे लड़ाईके लिए बढ़ा। महादेवके साथ हनुमान आदि देवता योगियोंकी सहायताके लिए आ खड़े हुए। गन्धर्वसेनकी सेनाके

हाथियोंका समूह जब आगे बढ़ा तब हनुमानजीने अपनी लंबी पूँछमें उसे लपेटकर आकाशमें फेंक दिया। गन्धर्वसेनको महादेवका घंटा और विष्णुका शंख योगियोंकी ओर सुनाई पड़ा और प्रत्यक्ष शिवजी युद्धस्थलमें दिखाई पड़े। ऐसा देखतेही गन्धर्वसेन महादेवजीके चरणों पर जा गिरा और बोला 'कन्या आपकी है, जिसे चाहें, उसे दें।" इसके पश्चात् हीरामन तोताने आकर राजा रत्नसेनके चित्तौरसे आनेका सब वृत्तान्त भी कह सुनाया। गन्धर्वसेनने बड़ी धूम-धामसे पद्मावतीका विवाह रत्नसेनके साथ कर दिया और रत्नसेनके साथी जो सोलह हजार कुंवर थे, उन सबका भी विवाह पद्मिनी-सखियोंके साथ हो गया। कुछ दिनों तक सब लोग आनन्दपूर्वक सिंहलगढ़में रहे।

इधर चित्तौरमें वियोगिनी रानी नागमतीको राजाकी प्रतीक्षा करते एक वर्ष बीत गया। उसके विलापसे सभी पशु पक्षी तक व्याकुल होगये। अन्तमें आधी रातको एक पक्षीने नागमतीके दुखका कारण पूँछा। नागमतीने उससे रत्नसेनके पास पहुँचानेके लिए अपना संदेश कहा। वह पक्षी नागमतीका संदेश लेकर सिंहलद्वीप पहुँचा और समुद्रके किनारे एक पेड़ पर बैठा। संयोगसे रत्नसेन शिकार खेलते-खेलते उसी वृक्षके नीचे आ खड़ा हुआ। पक्षीने नागमतीकी दुःख कथा पेड़ परसे कह सुनाई और चित्तौरकी दीन-हीन दशाओंका भी वर्णन किया। अब रत्नसेनका जी सिंहलसे उचटा और वह अपने देशकी ओर लौट पड़ा। चलते समय सिंहलके राजाके यहाँसे उसे बिदाईमें बहुत सामान मिला; किन्तु अधिक संपत्ति देखकर राजाके मनमें लोभ हुआ और साथही बड़ा गर्व भी। उसने सोचा यदि इतना धन लेकर मैं स्वदेश पहुँचा तो मेरे समान और कौन है! इस प्रकार राजाके मनमें अत्यन्त लोभ हो गया।

"सागर-तट पर जब रत्नसेन आया, तब समुद्र याचकका रूप धर राजासे दान माँगने लगा; किंतु राजाने लोभवश उसका तिरस्कार कर दिया। राजा आधे समुद्रमें भी न पहुँच पाया था कि बड़ा भयंकर तूफ़ान

आया जिससे जहाज दक्षिणमें लंका की ओर बह गए। वहाँ विभीषणका एक राक्षस माँझी मछली मार रहा था। वह अच्छा आहार देख राजासे बोला—"चलो हम तुम्हें रास्ते पर लगा देंगे। राजाने उसकी बात मान ली। वह राक्षस सभी जहाजोंको एक भयंकर समुद्रमें ले गया, जहाँसे निकलना अत्यन्त कठिन था। जहाज चक्कर खाने लगे, हाथी, घोड़े, और मनुष्य आदि डूबने लगे। वह राक्षस आनन्दमें डूबने लगा। इसी बीच समुद्रका एक राजपक्षी वहाँ आ पहुँचा, जिसके डैनोंका ऐसा घोर शब्द हुआ कि जान पड़ता था कि पहाड़के शिखर टूट रहे हैं। वह पक्षी उस दुष्ट राक्षसको चगुलमें दबाकर उड़ गया। किसी प्रकार उस राक्षससे निस्तार हुआ; किन्तु सब जहाज खण्ड-खण्ड हो गए। जहाजके एक एक तख्ते पर एक ओर राजा बहा और दूसरे तख्ते पर दूसरी ओर रानी। पद्मावती बहते-बहते वहाँ जा लगी जहाँ समुद्रकी कन्या लक्ष्मी अपने सहेलियोंके साथ खेल रही थीं। लक्ष्मी मूर्च्छित पद्मावतीको अपने घर ले गयीं। जब पद्मावतीको चेत हुआ तब वह रत्नसेनके लिए विलाप करने लगी। लक्ष्मीने उसे धैर्य बँधाया और अपने पिता समुद्रसे राजाकी खोज करानेका वचन दिया। राजा बहते बहते एक ऐसे निर्जन स्थानमें पहुँचा जहाँ मूँगेकी टीलोंके सिवा और कुछ न था। राजा पद्मिनीके लिए बहुत व्यथित होकर विलाप करने लगा था। राजा कटार लेकर अपने गलेमें मारा ही चाहता था कि ब्राह्मणका रूप धारणकर उसके सामने समुद्र आ खड़ा हुआ और उसे बचाया। समुद्रने राजासे कहा तुम मेरी लाठी पकड़कर आँखें बन्द करलो; मैं तुम्हें वहीं पहुँचा दूँगा, जहाँ पद्मावती है।

"जब राजा उस तट पर, जहाँ पद्मावती थी, पहुँचा; तब लक्ष्मी उसकी परीक्षाके लिए पद्मावतीका रूप धारण कर बैठी थीं, राजा पहले उन्हें पद्मावती समझ उनकी ओर लपका। राजाके अपने निकट आने पर वे कहने लगीं—"मैं ही पद्मावती हूँ।" किन्तु जब राजाने देखा कि यह पद्मावती नहीं है, तब तुरन्त उसने मुँह फेर लिया। तब अन्तमें लक्ष्मी

राजाको पद्मावतीके पास ले गयीं। पद्मावती और रत्नसेन अनेक दिनों तक समुद्र और लक्ष्मीके मेहमान होकर वहाँ रहे। पद्मावतीकी प्रार्थना पर लक्ष्मीने उन सब साथियोंको भी ला खड़ा किया, जो इधर-उधर बह गए थे। जो मर गए थे, वे भी अमृत पिलानेसे जी गए। तब बड़े आनन्दके साथ वे सब वहाँसे विदा हुए। विदा होते समय समुद्रने बहुतसे अमूल्य रत्न भेंट किए। उसमें सबसे अधिक महत्वपूर्ण वस्तुएँ थीं—अमृत, हंस, राजपक्षी, शार्दूल और पारसपत्थर। इन सभी अनमोलपदार्थोंको लिए हुए रत्नसेन पद्मावतीके साथ चित्तौर जा पहुँचा। नागमती और पद्मावती दोनों रानियोंके साथ राजा सुखपूर्वक रहने लगा। नागमतीसे नागसेन और पद्मावतीसे कमलसेन, ये दो पुत्र राजाको हुए।

"चित्तौरकी राज-सभामें राघवचेतन नामक एक पंडित था, जिसे यक्षिणी सिद्ध थी। एक दिन राजाने पंडितोंसे पूछा—"दूज कब है?" राघवके मुँहसे निकला—"आज।" अन्य पंडितोंने कहा—"आज नहीं हो सकती, कल होगी।" राघवने कहा यदि आज दूज न हो तो मैं पंडित नहीं। "पंडितोंने कहा कि "राघव वाममार्गी है, यक्षिणीकी पूजा करता है, जो चाहे सो कर दिखावे, किन्तु आज दूज नहीं हो सकती।" राघवने यक्षिणीके प्रभावसे उसी दिन संध्याको द्वितीयाका चन्द्रमा दिखा दिया, किंतु दूसरे दिन फिर द्वितीयाका ही चन्द्रमा दिखाई पड़ा। इस पर पंडितोंने राजा रत्नसेनसे कहा—"देखिए यदि कल द्वितीया रही होती, तो आज चन्द्रमाकी कला कुछ अधिक होती। झूठ और सचकी परख कर लीजिए।" राघवका भेद खुल गया और वह वेद-विरुद्ध आचरण करनेवाला प्रमाणित हुआ। राजा रत्नसेनने उसे देश निकालेका दण्ड दिया।

"पद्मावतीने जब यह वृत्तान्त सुना, तब उसने ऐसे गुणी पंडितका असंतुष्ट होकर जाना राज्यके लिए अच्छा नहीं समझा। उसने भारी दान देकर राघवको प्रसन्न करना चाहा। सूर्यग्रहणका दान देनेके लिए उसने

उसे बुलवाया, जब राघव महलके नीचे आया तब पद्मावतीने अपने हाथका एक अमूल्य कगन—जिसका जोड़ा अन्यत्र दुष्प्राप्य था—झरोखे परसे फेंका। झरोखे पर पद्मावतीकी झलक देख राघव बेसुध होकर गिर पड़ा। जब उसे चेत हुआ तब उसने सोचा कि अब यह कगन लेकर बादशाहके पास दिल्ली चलूँ और पद्मिनीके रूपका वर्णन करूँ। वह लंपट है, तुरन्त चित्तौड़ पर चढ़ाई करेगा और इसके जोड़का दूसरा कगन भी मुझे इनाममें देगा। यदि ऐसा हुआ तो मैं राजासे बदला भी ले लूँगा और सुखपूर्वक जीवन भी बिताऊँगा।

"यही सोचकर राघव दिल्ली पहुँचा और वहाँ बादशाह अलाउद्दीनको कगन दिखाकर उसने पद्मिनीके रूपका वर्णन किया। अलाउद्दीनने बड़े आदरसे उसे अपने यहाँ रखा और सरजा नामक एक दूतके हाथ एक पत्र रत्नसेनको भेजा कि पद्मिनीको तुरन्त भेज दो, बदलेमें जितना राज्य चाहो ले लो। पत्र पाते ही रत्नसेन क्रोधसे लाल हो गया और बहुत बिगड़कर दूतको वापस कर दिया। अलाउद्दीनने चित्तौरगढ़ पर चढ़ाई कर दी। आठ वर्ष तक मुसलमान चित्तौरको घेरे रहे। घोर युद्ध होता रहा, किन्तु गढ़ न टूट सका। इसी बीच दिल्लीसे एक पत्र अलाउद्दीनको मिला उसमें हरेव लोगोंके फिरसे चढ़ आनेका समाचार लिखा था। बादशाहने जब देखा कि गढ़ नहीं टूटता है, तब उसने एक कपटकी चाल सोची। उसने रत्नसेनके पास सधिका एक प्रस्ताव भेजा और यह कहलाया कि मुझे पद्मिनी नहीं चाहिए; समुद्रसे पाँच वस्तुएँ जो तुम्हें मिली हैं, उन्हें देकर मेल कर लो, राजाने स्वीकार कर लिया और बादशाहको चित्तौरगढ़के भीतरले जाकर बड़ी धूम धामसे उसकी दावत की।

"गोरा और बादल नामके दो विश्वास-पात्र सरदारोंने राजाको बहुत समझाया कि मुसलमानोंका विश्वास करना ठीक नहीं, किन्तु राजाने ध्यान न दिया। वे दोनों वीरनीतिज्ञ सरदार अप्रसन्न होकर अपने घर चले

गए। कई दिनों तक बादशाहकी मेहमानदारी होती रही। एक दिन वह टहलते टहलते पद्मिनीके महल'की ओर भी जा निकला जहाँसे एकसे एक रूपवती स्त्रियाँ स्वागतके लिए खड़ी थीं। बादशाहने राघवसे, जो उसके साथ हो था पूछा कि "इनमें पद्मिनी कौन है?" राघव बोला—"इनमें पद्मिनी कहा है? ये सभी उसकी दासियाँ हैं। बादशाह पद्मिनीके महलके सामने ही बैठकर राजाके साथ शतरञ्ज खेलने लगा। जहाँ वह बैठा था, वहाँ उसने एक दर्पण भी इस उद्देश्यसे रख दिया था कि पद्मिनी यदि झरोखे पर आवेगी तो उसकी छाया दर्पणमें देखूँगा। पद्मिनी कौतूहलसे झरोखे पर आई बादशाहको उसका प्रतिविम्ब दर्पणमें दिखाई पड़ा, उसे देखते ही वह बेहोश होकर गिर पड़ा।

'अलाउद्दीनने राजासे विदा माँगी। राजा उसे पहुँचाने साथ साथ चला। एक एक फाटक पर राजा बादशाहको कुछ न कुछ देता जाता था। अन्तिम फाटक पर होते ही राघवके इशारेसे बादशाहने रत्नसेनको पकड़ लिया और बाँधकर दिल्ली ले गया। वहाँ राजाको एक तंग कोठरीमें बन्द करके अनेक प्रकारसे भयंकर कष्ट देने लगा। इधर चित्तौरमें भयंकर हाहाकार मच गया था, दोनों रानियाँ रो रोकर प्राण देने लगीं। इसी अवसर पर राजा रत्नसेनके शत्रु कुमलनेरके राजा देवपालको दुष्टता सूझी। उसने कुमुदिनी नामकी एक दूतीको पद्मावतीके पास भेजा। पहले तो पद्मावती उस दूतीको अपने मायकेकी स्त्री सुनकर बड़े प्रेमसे मिली और उससे अपना दुःख कहने लगी, किन्तु जब धीरे धीरे उसका भेद खुला, तब उसने उसे उचित दण्ड देकर निकलवा दिया। इसके बाद अलाउद्दीनने भी योगिनिके वेशमें एक दूती इस आशासे भेजी कि वह रत्नसेनसे भेंट करानेके बहाने पद्मिनीको योगिनि बनाकर अपने साथ दिल्ली लावेगी, किन्तु उसकी भी दाल न गली।

"अन्तमें पद्मिनी गोरा और बादलके घर गयी और दोनों क्षत्रिय वीरोंके सामने अपना दुःख सुनाकर राजाको छुड़ानेकी प्रार्थना की। दोनों

वीरोंने राजाको छुड़ानेकी प्रतिज्ञाकी और रानीको बड़ा धैर्य्य बँधाया। दोनोंने सोचा जिस प्रकार मुसलमानोंने धोखा दिया, उसी प्रकार उनके साथ भी चाल चलनी चाहिए। उन्होंने सोलह सौ दकी पालकियोंके भीतर दो सहस्र राजपूत सरदारोंको बैठाया और सबसे उत्तम बहुमूल्य पालकीमें औजारके साथ एक लोहारको बैठाया और इसका प्रचार कर दिया कि सोलह सौ दासियोंके साथ पद्मिनी दिल्ली जा रही है। गोराके पुत्र बादलकी अवस्था छोटी थी, जिस दिन दिल्ली जाना था, उसी दिन उसका गवना आया था। उसकी नवागता वधूने उसे युद्धमें जानेसे बहुत रोका, किन्तु उस वीर कुमारने एक भी न सुनी। अन्तमें सभी सवारियाँ दिल्लीके किलेमें पहुँची। वहाँ पर कर्मचारियोंको घूस देकर अपने पक्षमें किया गया जिससे किसी पालकी की तलाशी न ली गयी। बादशाहके यहाँ खबर दी गयी कि पद्मिनी आई है और वह कहती है कि मैं राजासे मिल लूँ और चित्तौरके खजानेकी कुँजी उनके सिपुर्द कर दूँ तब महलमें जाऊँ। बादशाहने आज्ञा दे दी। वह सजी हुई पालकी वहाँ पहुँचाई गयी, जहाँ राजा रत्नसेन कैद था। लोहारने वहाँ पहुँच कर चट राजाकी बेड़ी काट दी और वह शस्त्र लेकर घोड़े पर सवार हो गया, जो पहलेसे तैयार था। देखते-देखते हथियारबन्द सरदार भी पालकियोंसे निकल पड़े। इस प्रकार गोरा और बादल राजाको छुड़ा कर चित्तौर चले। जब बादशाहको समाचार मिला, तब उसने अपनी सेना सहित पीछा किया। गोरा-बादलने जब शाहीफौजको पीछे आते हुए देखा, तब एक हजार सैनिकोंके साथ गोरा तो शाहीफौजको रोकनेके लिए डट गया और बादल राजाको लेकर चित्तौरकी ओर बढ़ा। गोरा वीरतासे लड़कर हजारोंको मार अन्तमें सरजाके हाथों मारा गया। इसी बीच रत्नसेन, चित्तौर पहुँच गया और चित्तौर पहुँचते ही राजाने पद्मिनीके मुँहसे देवपालकी दुष्टताका समाचार पाते ही उसे बाँध लानेकी प्रतिज्ञा की। सवेरा होते ही राजाने कुंभलनेर पर चढ़ाई कर दी। देवपाल और

रत्नसेनसे द्वन्द युद्ध हुआ। देवपालकी साँग रत्नसेनकी नाभिमें घुस कर उस पार निकल गयी। देवपाल साँग मार कर लौटा ही चाहता था कि रत्नसेनने उसे जा पकड़ा और उसका सिर काटकर उसके हाथ-पैर बाँधे। इस प्रकार अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर और चित्तौरगढकी रक्षाका भार बादलको सौंपकर रत्नसेनने शरीर छोड़ा।

"राजाके शवके साथ नागमती और पद्मिनी दोनों रानियाँ सती हो गयीं। इतनेमें शाही-सेना चित्तौरगढ़ आ पहुँची। बादशाहने पद्मिनीके सती होनेका समाचार सुना। बादलने प्राण रहते गढकी रक्षा की, किन्तु अन्तमें वह फाटकके युद्धमें मारा गया और चित्तौरगढ पर मुसलमानोंका अधिकार हो गया।"

जायसीके 'पद्मावत' की कथा यदि इतिहाससे मिलायी जाय तो जान पड़ेगा कि कथानकका पूर्वार्द्ध तो कविकी कल्पनात्मक कथा है और उत्तरार्द्ध तो कविकी कल्पनात्मक कथा है और उत्तरार्द्ध इतिहास प्रसिद्ध कथा है। यदि अंतर है तो थोड़ा सा; वह भी कविकी कुशलताका (कथानकको रोचक बनानेके लिए ऐतिहासिक कथानकको लेकर कुछ घटनाएँ छोड़ देने और कुछको कल्पकाके द्वारा बना लेने की) परिचायक है।

सभी प्रेम-काव्यकी कथाएँ प्रायः काल्पनिक ही हैं; किन्तु जायसीने कल्पनाके साथ साथ इतिहासकी भी सहायता ली है; क्योंकि रत्नसेनकी सिंहल-यात्रा काल्पनिक है और अलाउद्दीनका पद्मावतीके आकर्षणमें चित्तौर पर चढाई करना ऐतिहासिक घटना है। "टाड राजस्थान" में यह घटना इस प्रकार है—"विक्रम संवत् १३३१ में लखनसी चित्तौरके सिंहासन पर बैठा। वह छोटा था, इससे उसका चाचा भीमसी (भीमसिंह) ही राज्य करता था। भीमसीका विवाह सिंहलके चौहान राजा हम्मीरशंककी कन्या पद्मिनीसे हुआ था, जो रूप-गुणमें जगत्में अद्वितीय थी। उसके रूपकी ख्याति सुनकर दिल्लीके बादशाह अलाउद्दीनने चित्तौरगढ

पर चढ़ाई की। घोर युद्धके उपरान्त अलाउद्दीनने संधिका प्रस्ताव भेजा कि मुझे एक बार पद्मिनीका दर्शन ही हो जाय तो मैं दिल्ली लौट जाऊँ। इस पर यह ठहरी कि अलाउद्दीन दर्पणमें पद्मिनीकी छायामात्र देख सकता है इस प्रकार युद्ध बंद हुआ और अलाउद्दीन बहुत थोड़ेसे सिपाहियोंके साथ चित्तौरगढ़के भीतर लाया गया। वहाँसे जब वह दर्पणमें छाया देखकर लौटने लगा तब राजा उसपर पूरा विश्वास करके गढ़के बाहर तक उसको पहुँचाने आया। बाहर अलाउद्दीनके बहुतसे सैनिक पहलेसे घातमें लगे हुए थे, ज्योंही राजा बाहर आया, वह त्योंही पकड़ लिया गया और मुसलानोंके शिविरमें, जो चित्तौरसे थोड़ी दूर पर था, कैद कर लिया गया। राजाको कैद करके यह घोषणा की गई कि जब तक पद्मिनी न भेज दी जायगी, राजा नहीं छूट सकता।

"चित्तौरमें हाहाकार मच गया। पद्मिनीने जब यह सुना तब उसने अपने मायकेके गोरा और बादल नामके सरदारोंसे मंत्रणा की। गोरा पद्मिनीका चाचा लगता था और बादल गोराका भतीजा था। उन दोनोंने राजाके उद्धारकी एक युक्ति सोची। अलाउद्दीनके पास कहलाया गया कि पद्मिनी जायगी; पर रानीकीम र्यादाके साथ। अलाउद्दीन अपनी सब सेना वहाँसे हटा दे।। पद्मिनीके साथ बहुत-सी दासियाँ रहेंगी और दासियोंके सिवा बहुतसी सखियाँ भी होंगी, जो केवल उसे पहुँचाने और बिदा करने आयँगी। अन्तमें सात सौ पालकियाँ अलाउद्दीनके खेमे की ओर चलीं। हरएक पालकीमें एक-एक सशस्त्र वीर राजपूत बैठा था। एक-एक पालकी उठानेवाले जो छः-छः कहार थे, वे भी कहार बने हुए सशस्त्र सैनिक थे। जब वे शाहीखेमेके पास पहुँचे तब चारों ओर कनातें घेर दी गयीं। पालकियाँ उतारी गयीं। पद्मिनीको अपने पतिसे अन्तिम भेंट करनेके लिए आध घंटेका समय दिया गया। राजपूत चटपट राजाको पालकीमें बिठाकर चित्तौरगढ़की ओर चल पड़े। शेष पालकियाँ मानों पद्मिनीके साथ दिल्ली जानेके लिए रह गयीं। अलाउद्दीनकी भीतरी इच्छा

चित्तौरसे हारकर सात कोसकी दूरीपर लौटा ही था कि वहीं रुक गया और मित्रताका नवीन सन्देश भेजकर रतनसीको मिलनेके लिए बुलाया। अलाउद्दीनकी अनेक चढाइयोंसे रतनसी ऊब गया था इसलिए उसने मिलना स्वीकार कर लिया। एक विश्वासघातीके साथ वह अलाउद्दीनसे मिलने गया और धोखेसे मार डाला गया। उसका सबंधी अरसी चटपट चित्तौरके सिंहासन पर बैठाया गया। अलाउद्दीन चित्तौरपर फिर चढ आया और उसपर अधिकार कर लिया। अरसी मारा गया और पद्मिनी सभी स्त्रियोंके साथ सती हो गयी।"

उपर्युक्त दोनों ऐतिहासिक घटनाओंके मिलान करनेसे 'पद्मावत' में आयी कथामें अनेक तथ्योंका पता चल जाता है। सर्वप्रथम जायसीने जो रत्नसेन नाम दिया है, वह कल्पित नहीं कहा जा सकता; क्योंकि यही नाम 'आइने-अकबरी' में भी आया है। इतिहासग्रंथोंमें यह नाम अवश्य प्रख्यात था। कविवर जायसीको इतिहासका ज्ञान था। दूसरी बात जायसी-ने जो लिखी है कि रत्नसेन कुम्भलनेरगढके नीचे देवपालके साथ द्वन्द्वयुद्धम मारा गया, उसका उल्लेख (जो 'आइने अकबराने विश्वासघातके साथ मिलनेवाली घटनाका किया है) जान पड़ता है कि इससे सम्बधित है।

इन घटनाओंका स्वतन्त्र रूपसे कुछ फेरफार कर उन्हें काव्योपयोगी स्वरूप देनेके लिए कवि जायसीने सफल प्रयास किया। उन्हें ऐसा करनेसे बड़ी सफलता मिली। क्योंकि कविने कथाका विस्तार बड़ेही मनोरञ्जक ढगसे किया है। घटनाओंकी शृङ्खला सब प्रकारसे स्वाभाविक है; किन्तु यदि कहीं दोष भी आ गया है, तो वह अति आदर्श और अतिरञ्जनाके कारण ही। वास्तवमें कविके हिन्दू धर्मके आदर्शोंने सात्विक मार्गपर चलनेके लिए बाध्य किया है।

काव्यके विशेष गुण और दोष—जायसीके द्वारा वर्णित कथामें कल्पनाको जो स्थान मिला, वह बड़ा मार्मिक है और कविकी कला-कुशलताका परिचायक है। 'पद्मावत' में राघवचेतनकी घटना कल्पनात्मक

है। अलाउद्दीनके चित्तौरगढ़पर आक्रमण करनेके बाद सन्धिकी जो शर्तें (समुद्रसे प्राप्त पाँचों वस्तुओंके देनेकी) अलाउद्दीनकी ओरसे रखी गयीं, उनकी घटना कल्पनाजनित है। इसी प्रकार इतिहासमें दर्पणके बीच पद्मिनीकी छाया देखनेकी शर्त प्रसिद्ध है, किन्तु दर्पणमें प्रतिबिंब देखनेकी घटना कविने आकस्मिक रूपमें वर्णित किया है। इस प्रकार घटनामें थोड़ी मौलिकता आ जानेसे कवि नायक रत्नसेनके गौरवकी रक्षा कर सका है। पद्मिनीकी छाया भी दूसरेको दिखानेपर सहमत होना रत्नसेन जैसे वीर राजाके व्यक्तित्वको गिराना था इसी प्रकार अलाउद्दीनके शिविरमें राजा रत्नसेनके बन्दी होनेका वर्णन न देकर कविने उसे दिल्लीमें बन्दी होना लिखा है, ऐसा करनेसे कविको दूती और जोगिनके वृत्तांत, रानियोंके वियोग तथा विलाप और गोरा, बादलके प्रयत्न विस्तारके वर्णनका अवसर मिल सका है। इस प्रसंगमें कविने पद्मिनीके सतीत्वकी मनोहर झाँकी और वीर बादलके क्षात्रतेज एवं कर्तव्यकी कठोरतापर ऐसा प्रकाश डाला है, जो अत्यंत मार्मिक होनेसे पाठकका हृदय पिघला देता है। देवपाल और अलाउद्दीनके दूती भेजने एवं बादल और उसकी पत्नीके सम्वादकी सृष्टि कविने इसीलिए कल्पितकी है। कविने अपने चरित-नायकके सम्मानमें पीछा करते हुए अलाउद्दीनके चित्तौर पहुँचनेके पूर्व रत्नसेन या देवपालके हाथों मारा जाना और अलाउद्दीनके द्वारा पराजित न होना आदि घटनाओंकी कल्पना कर अपने उच्च कवि हृदयका परिचय दिया है।

जैसा कि हम ऊपर लिख आए हैं कि 'पद्मावत' के पूर्वार्द्धकी कथा कल्पनात्मक है, उसपर आचार्य शुक्लजीका मत है कि "उत्तर भारतमें विशेषतः अवधमें 'पद्मिनी रानी और हीरामन सुए' की कहानी अब तक प्रायः उसी रूपमें कहा जाती है, जिस रूपमें जायसीने उसका वर्णन किया है। जायसी इतिहासविज्ञ थे, इससे उन्होंने रत्नसेन, अलाउद्दीन आदि नाम दिए हैं, पर कहानी कहनेवाले नाम नहीं लेते हैं, केवल यही कहते

है कि "एक राजा था", "दिल्लीका एक बादशाह था" इत्यादि। यह कहानी बीच-बीचमें गा-गाकर कही जाती है, जैसे राजाकी पहली रानी जब दर्पणमें अपना मुँह देखती है, तब सुएसे पूँछती है—

"देख-देख तुम फिरौ, हो सुअटा! मोरे रूप और कहुँ कोई?

सुआ उत्तर देता है—

"काह बखानो सिंहलकै रानी। तोरे रूप भरैं सब पानी॥

\+ + +

"इस सम्बन्धमें हमारा अनुमान यह है कि जायसीने प्रचलित कहानीको ही लेकर, सूक्ष्म ब्योरोंकी मनोहर कल्पना करके उसे काव्यका सुन्दर स्वरूप दिया है। इस मनोहर कहानीको कई लोगोंने काव्यके रूपमें बाँधा। हुसेन गजनवीने "किस्सए पद्मावत" नामका एक फारसी काव्य लिखा। सन् १६५२ ई० में राय गोविंद मुंशीने पद्मावतीकी कहानी फारसी गद्यमें "तुकफतुलकुलूब" के नामसे लिखी। उसके पीछे मीर जियाउद्दीन 'ईब्रत' और गुलामअली 'इशरत'ने मिलकर सन् १७९६ ई०में उर्दू शेरोंमें इस कहानीको लिखा। मलिकमुहम्मद जायसीने अपनी 'पद्मावत' सन् १५२० ई० में लिखी थी।*

"पद्मावती" का कथानक मौलिक नहीं है। जायसीसे पहले पाठक राजवल्लभने १४५७ ई० में इसे संस्कृतमें लिखा था† 'पद्मावत'की कथासे स्पष्ट है कि यह एक प्रेम-कहानी है, जिसमें कविने कथाका विस्तार बड़ेही मनोरंजक ढंगसे किया है 'पद्मावत'की रचना इतिवृत्तात्मक होते हुए भी रसात्मक है। कौतूहलकी सृष्टि इतिवृत्तसे होती है और रसात्मकता वर्णन-विस्तारसे भी होती है। जायसीने जहाँ कौतूहलकी सृष्टि की है, वहाँ वर्णन-

---

* आचार्य शुक्ल प्रणीत "त्रिवेणी" पृ० २२-२३। †नागमतीके वियोग-वर्णनको आचार्य शुक्लजीने हिंदी-साहित्यमें विप्रलंभ-शृङ्गारका अत्यन्त उत्कृष्ट वर्णन माना है। "त्रिवेणी"—पृ० ३३।

विस्तारमें मनोरंजनकी यथेष्ट सामग्री दे दी है। कविकी सबसे बड़ी सफलता पात्रोंके मनोवैज्ञानिक चित्रणमें मिली है। नागमतीका विरहवर्णन, उसकी उन्मादावस्था, पशुपक्षियोंका उसके प्रति सहानुभूति प्रकट करना, पक्षी द्वारा संदेश भेजना आदि स्वाभाविक ढंगसे विदग्धतापूर्ण भाषामें वर्णित हैं, जो कविकी रचनामें विशेष *मार्मिक स्थल हैं।** इसी प्रकार बारहमासामें वेदनाका स्वरूप और हिन्दू दाम्पत्य-जीवनका अत्यन्त हृदयहारी दृश्य कविने उपस्थित किया है। रत्नसेन और पद्मावती-मिलनमें संयोग तथा नागमतीके विरह-वर्णनमें वियोगशृङ्गारकी मनोवैज्ञानिक अभिव्यंजना कविने बड़े कौशलसे किया है। गोराबादलके उत्साहमें तो वीररस जैसे मूर्त्तिमान हो गया है। इसी प्रकार रत्नसेनके योगी होनेकी और उसकी मृत्युकी कथामें करुणरसकी सृष्टि अत्यन्त मार्मिक है। जायसी ऐकान्तिक प्रेमकी गम्भीरता और गूढ़ताके मध्य जीवनके दूसरे अंगोंके साथ भी प्रेमका स्पर्श करते चले हैं, यही कारण है कि उनकी प्रेम-गाथा पारिवारिक और सामाजिक जीवनसे विच्छिन्न नहीं होने पायी है। वास्तवमें उसमें व्यवहारात्मक तथा भावात्मक दोनों शैलियोंका संघटन है। इतना होते हुए भी 'पद्मावत' जीवन-गाथा नहीं कही जा सकती, बल्कि इस रचनाको प्रेम गाथा ही कहना उपयुक्त होगा। ग्रन्थका पूर्वार्द्ध भाग तो प्रेम-गाथाके विवरणोंसे पूर्ण है; किंतु उत्तरार्द्धमें जीवनके दूसरे मार्गोंका भी सन्निवेश पाया जाता है। दाम्पत्य-प्रेमके अतिरिक्त मानवकी दूसरी वृत्तियाँ, जिनका कुछ विस्तारके साथ समावेश है, वे पूर्णरूपसे परिस्फुट नहीं हो पायी हैं। जैसे यात्रा, युद्ध, मातृस्नेह, सपत्नीकलह, स्वामिभक्ति, वीरता, कृतघ्नता सतीत्व और प्रवंचना। दाम्पत्य-प्रेमके अतिरिक्त मानवजीवनकी इन वृत्तियोंके बावजूद भी 'पद्मावत' शृङ्गाररस-प्रधान काव्य कहा जा सकता है।

* 'हिंदी प्रेमाख्यानक काव्य, पृ० १९६-७—डा० कमलकुल श्रेष्ठ एम० ए०, डी० फिल० देखिए।

'पद्मावत' का सबसे अधिक महत्वपूर्ण स्थल नागमतीके विरह-वर्णनका है, जहाँ कविको अभूतपूर्व सफलता प्राप्त हुई है। अतः यहाँ थोड़ा विचार कर लेना आवश्यक है। हिंदी-साहित्यके अन्य कवियोंने भी विरह-वर्णन किया है; किंतु जायसीका विरह-वर्णन अपनी अलग विशेषता रखता है। नागमती उपवनमें वृक्षोंके नीचे सारी रात व्यथित हो, रोती रहती है। उसकी इस दशासे पशु-पक्षी वृक्ष, पल्लव सभी सहानुभूति रखते हैं। यद्यपि कवियों द्वारा ऐसा वर्णन और दूसरी रचनाओंमें भी पाया जाता है, किंतु जायसीने पशु-पक्षियों, पेड़-पल्लवोंको सहानुभूति दिखाकर कवि परम्पराके इस तत्वको ग्रहण करनेमें भी नवीनता ला दी। दूसरे कवियोंने इस वर्णनमें पशु-पक्षियोंको संबोधित भर किया है, किंतु जायसी इससे एक कदम आगे हैं।

"फिरि फिरि रोव कोइ नहि डोला। आधी राति बिहंगम बोला ॥
तू फिरि फिरि दाहे सब पाँखी। केहि दुख रैनि न लावसि आँखी ॥"

नागमतीकी इस दीनदशा पर विहंगमको दया आ जाती है और जब उससे रहा नहीं जाता, तब वह उसके दुःखका कारण पूछता है। ऐसा करके कविने हृदय तत्वकी सृष्टि-व्यापिनी भावना-द्वारा मानव एवं पशु-पक्षी सबको एक ही जीवन-सूत्रमें आबद्ध करनेकी, सफल चेष्टा की है। क्योंकि अन्य कवियोंके खग-मृग मौन रहते हैं। वे कुछ भी उत्तर नहीं देते, जिससे किसीकी (पशु-पक्षियोंकी) सहानुभूति प्रकट नहीं होती।

नागमती अपना हृदय खोलकर पक्षीसे कहती है :—

"चारिउ चक्र उजार भए, कोइ न सँदेसा टेक।
कहौं बिरह-दुख आपन, बैठि सुनहु दँड एक ॥"

समवेदना प्रकट करते हुए वह विहंग सँदेशवाहक होनेको तत्पर हो जाता है। नागमतीने पद्मावतीके पास जो सदेशा भेजा है वह अत्यन्त मार्मिक है; क्योंकि वह मान, गर्व आदिसे रहित है, उसमें सुख और

भोगकी कामना नहीं है, उसमें है विनम्रता, शीतलता और विशुद्ध प्रेमकी अभिव्यञ्जना।

पद्मावति सौं कहेहु बिहंगम। कंत लोभाइ रही करि संगम॥
तोहि चैन सुख मिलै सरीरा। मो कहँ हिए दुंद दुख पूरा॥
हमहूँ बियाही सँग ओहि पीऊ। आपुहि पाइ, जानु पर जीऊ॥
मोहि भोग सौं काजन बारी। सौंह दिस्टि कै चाहन हारी॥"

उपर्युक्त वर्णनमें जायसीने विलासितासे रहित पवित्र प्रेमकी सृष्टि की है, जिसमें 'नागमतीके व्यक्तित्वका संरक्षण करते हुए कविने पाठकके हृदयमें संवेदनाका स्रोत बहा देनेका सफल प्रयत्न किया है।

इसी प्रकार—

"दहि कोइला भई कंत सनेहा। तोला माँसु रही नहिं देहा॥
रकत न रहा, बिरह तन जरा। रती रती होइ नैन ह्व ढरा॥

\+ + +

हाड़ भए सब किंकरी, नसैं भईं सब ताँति।
रोवँ रोवँ तें धुनि उठै, कहौं बिथा केहि भाँति॥"

विरह वर्णनका यह दृश्य जो कविने दिखाया है वह कितना मार्मिक है! विरह वर्णनके अन्तर्गत कविने जिस बारहमासेकी सृष्टि की है, वह वेदनाकी कितनी सुन्दर अभिव्यञ्जना है, उसके भीतर जो हिंदू दाम्पत्य-जीवनका हृदयहारी चित्रण है, जिसमें चारों ओरकी प्राकृतिक वस्तुओं तथा व्यापारोंके साथ पवित्र भारतीय हृदयकी साहचर्य भावना और विषयके अनुसार भाषाका स्वाभाविक प्रयोग संघटित है, वह भुलाया नहीं जा सकता। नीचे कुछ उदाहरण दिये जाते हैं—

"चढ़ा असाढ़ गगन घन गाजा। साजा बिरह, दुंद दल बाजा॥
धूम, साम, धौरे घन आए। सेत धजा बग पाँति देखाए॥
खड़ग बीजु चमकै चहुँ ओरा। बुंद-बान बरसहिं चहुँ ओरा॥

\+ + +

"बाट असूझ अथाह गँभीरी । जिउ बाउर मा फिरै भँभीरी ॥
जग जल बूड़ जहाँ लगि ताको । मोरि नाव खेवक बिनु थाकी ॥
जेठ जरै जग चलै लुवारा । उठहि बवंडर परहिं अँगारा ॥
उठै आगि औ आवै आँधी । नैनन सूझ, मरौं दुख बाँधी ॥"

वास्तवमें जायसी-कृत नागमतीका विरह-वर्णन व्यक्तिगत न होकर सार्वजनिक विरह-रूपमें वर्णित हुआ है। क्योंकि उसके दुखसे छोटे-बड़े सभी स्तरोंके व्यक्ति समवेदना प्रकट कर सकेंगे। उसके विरह-वर्णनमें राजमहलके ऐश्वर्योंका नाम लिया गया होता तो नागमतीका विरह शायद इतना व्यापक न होकर एकांगी हो जाता। विरह-वर्णनमें चौमासे-वाले प्रसंगमें स्वामीके घर न रहने पर घरकी जो स्थिति होती है, वह सर्वसाधारणकी स्थितिका चित्र है—

"पुष्य नखत सिर ऊपर आवा। हौं बिनु नाह, मँदिर को छावा।"

इसी प्रकार शरीरका रूपक देकर वर्षाके आगमन पर जिस चिन्ताकी झलक कविने दिखायी है वह साधारण गृहस्थोंके स्तरको स्पर्श करती है।

"तपै लागि अब जेठ असाढ़ी। मोहि पिउ बिन छाजनि भइ गाढ़ी ॥
तन तिन उरमा, झूरौं खरी। भइ बरखा, दुख आगरि जरी ॥
बंध नाहिं औ कंध न कोई। बात न आव, कहौं का रोई ॥
साँठि नाठि, जग बात को पूछा। बिन जिउ फिरै, मूँज-तनु छूँछा ॥
भई दुहेली टेक-बहूनी। थाँम नाहिं उठि सकै न थूनी ॥
बरसे मेह, चुवहिं नैनाहा। छपर छपर होइ रहि बिनु नाहा ॥
कोरौ कहाँ, ठाट नव साजा। तुम बिनु कन्त न छाजनिछाजा ॥

इसी प्रकार—

"काँपै हिया जनावै सीऊ। तो पै जाइ होइ सँग पीऊ ॥
पहल-पहल तन रूई झाँपै। हहरि हहरि अधिको हिय काँपै ॥"

*   *   *

"चारिहु पवन झकोरै आगी। लंका दाहि पलंका लागी ॥

उठै आगि औ आवै आँधी। नैन न सूझ मरौ दुख बाँधी॥

संक्षेपमें यही कहा जा सकता है कि जायसीके विरहोद्गार अत्यन्त मर्मस्पर्शी हैं; क्योंकि विरह-वेदनामें जो कोमलता, गम्भीरता और सरलता इनकी रचनामें है, वह बहुत कम कवियोंकी रचनाओंमें मिलता है। नागमती सहानुभूतिकी जो भावना सभी जीव-जन्तुओंमें करती है वह विलक्षण है। रानी सोचती है कि उसकी विरहाग्निके धुएँसे भौंरे और कौवे काले हो गए हैं—

"पिउ सौं कहेहु सँदेसड़ा, हे भौंरा हे काग।
सो धनि बिरहै जरि मुई, तेहिक धुँवा हम्ह लाग॥"

इतना होते हुए भी कहीं-कहीं विरह-वर्णनमें वीभत्सता आ गयी है—

"बिरह दगध कीन्ह तन माठी। हाड़ जराइ कीन्ह जस काठी॥
नैन-नीर सौं पोता किया। तस मदचुवा बरा जस दिया॥
बिरह सरागहि भूँजै माँसू। गिरि-गिरि परै रकत कै आँसू॥"

इस विरह-वर्णनसे घृणा उत्पन्न होती है, सहानुभूति नहीं। रचना कहीं-कहीं अस्वाभाविकताके दोषसे दूषित भी हो गयी है—

"बसा लंक बरनै जग झीनी। तेहितें अधिक लंक वह खीनी॥
परिहँस पियर भए तेहि बसा। लिए डंक लोगन कहँ डसा॥
मानहुँ नाल खंड दुइ भए। दुहुँ बिच लंक तार रहि गए॥"

जान पड़ता है कि कटि-प्रदेशकी सूक्ष्मताके वर्णनमें कविने आध्यात्मिक-तत्त्व रख देनेकी चेष्टा की है। क्योंकि बर्रेकी कमर अत्यंत पतली होती है, किंतु पद्मावतीकी कमर उससे भी पतली है, जिससे बर्रें लजाकर पीली हो गयी और ईर्ष्याके कारण डंक लेकर लोगोंको काटती फिरती है। उसकी कमर अत्यन्त क्षीण है जैसे मृणालके दो टुकड़े हो जाने पर अत्यंत पतले तारे लगे रहते हैं। इसी प्रकारका दूसरा वर्णन भी नीचे दिया जाता है—

"बरुनी का बरनौं इमि बनी। साधे बान जानु दुइ अनी॥

जुरो राम रावन के सेना। बीच समुद्र भए दुइ नैना ॥
वारहि पार बनावरि साधा। जासहुँ हेरै लाग विष बाधा ॥
उन बानन्ह अस को जो न मारा। बेधि रहा सगरौ संसारा ॥
गगन नखत जो जाहि न गने। वै सब बान वोही के हने ॥
धरती बान बेधि सब राखी। साखी ठाढ़ देहिं सब साखी ॥
रोंव-रोंव मानुस तन ठाढ़े। सूतहिं सूत बेध अस गाढ़े ॥
बरुनि बान अस ओ पहँ बेधे रन बन ढाँख।
सौजहि तन सब रोवाँ पंखिहि तन सब पाँख ॥"

पद्मिनीका रूप-वर्णन सुनकर राजा रत्नसेनका मूर्छित हो जाना, पद्मिनीके सतीत्वका महत्व दिखानेके लिए कुंभलनेरगढ़के राजा देवपाल (*जो कि रूप गुण, प्रतिष्ठा और ऐश्वर्य आदि किसीमें भी रत्नसेनसे बढ़कर नहीं है।*) का दूती भेजकर पद्मिनीको बहकानेका विफल प्रयत्न करनेका वर्णन, (जिसमें कि पद्मावतीके सतीत्व पर कोई प्रकाश नहीं पड़ता) विशेष महत्व नहीं रखते।

इसी प्रकार संयोगके भी प्रसंगमें ऐसे ही दोष आ गए हैं—
"मकु पिउ दिस्टि समानेउ सालू। हुलसा पीठि कढ़ावौं सालू ॥
कुच-तूँबी अब पीठि गड़ोवौं। गहै जो हूकि, गाढ़ रस धोवौं ॥"
जब बादलने अपनी नवागता-वधूकी ओरसे दृष्टि फेर ली है, तब उसकी स्त्री सोचती है, "क्या मेरे कटाक्ष तो पतिके हृदयको बेधकर पीठ की ओर बाहर तो नहीं निकल आए? यदि ऐसा ही है तो तूँबी लगाकर उसे मैं खींच लूँ और जब वह पीड़ासे चौंककर मुझे पकड़े तो गहरे रससे उसे धो दूँ।" वास्तवमें ऐसे वर्णन साहित्यके अन्दर महत्वहीन ही नहीं दोषपूर्ण समझे जाते हैं*।

इस्लाम धर्म पर जायसीकी पूर्ण आस्था थी। इसलिए इन्होंने मस-

---

* देखिए आचार्य शुक्ल कृत त्रिवेणी पृ० ४३।

नवियोंकी प्रेम पद्धतिको अपनाया है, किन्तु रचनाको सर्वग्राही बनानेके उद्देश्यसे इन्हें हिन्दू लोक-व्यवहारके भाव भी ग्रहण करने पड़े हैं। इस प्रश्न पर यदि कविके सम्प्रदायगत विचारों पर थोड़ा विचार कर लिया जाय तो ठीक होगा—

जायसीके जीवन वृत्त पर विद्वानोंने कोई विशेष प्रकाश नहीं डाला है। किन्तु इनका जायसमें रहना तो प्रसिद्ध ही है।* ये सैयद मुहीउद्दीन-के शिष्य थे, जैसा कि इनके इस पदसे जान पड़ता है कि "गुरु मेंहदी खेवक मैं सेवा। चलै उताइल जेहि कर खेवा॥" (पद्मावती पृ० ८) गणनासे चिश्तिया निजामियाकी शिष्य-परम्परामें ये ग्यारहवें शिष्य ठहरते हैं। जायसी सूफी सिद्धान्तोंसे भलीभाँति परिचित थे, क्योंकि ये अपने समयके सूफी संतोंमें विशेष आदरके पात्र थे। इसके अतिरिक्त इन्होंने हिन्दू-धर्मके लोक-प्रसिद्ध वृत्तान्तोंकी भी अच्छी जानकारी प्राप्त की थी। यही कारण था, कि जनताकी धार्मिक मनोवृत्तिको सन्तुष्ट करनेमें ये विशेष सफल हुए। बादशाह शेरशाहका इन्होंने आश्रय ग्रहण किया था। "शेरशाह दिल्ली सुलतानू। चारो खण्ड तपै जस भानू।" इसीका परिचायक है। 'पद्मावती'के आधार पर कि 'एक आँख कवि मुहम्मद गुनी, कहा जाता है कि इन्हें एकही आँख थी। कुछ समय तक ये गाजी-पुर और भोजपुर भी रहे और अन्तमें अमेठी राज्यमें जाकर रहने लगे। इनकी कब्र अमेठी राज्यमें ही है।

इनके समयमें हिन्दू जनताके अन्तर्गत राम और कृष्णकी उपासना अधिक लोकप्रिय थी। इन्होंने उसे अपने काव्यकी सामग्री न बनाकर प्रचलित सूफी सिद्धान्तोंको ही अत्यन्त मनोरञ्जक और सरल बनाकर जनताकी रुचि अपनी ओर आकृष्ट की। वास्तवमें हिन्दू वृत्तान्तोंके

*'जायस नगर धरम स्थानू। तहाँ आइ कवि कीन्ह बखानू॥"—'पद्मावत' पृ० १०।

माध्यमसे सूफी सिद्धान्तोंका प्रचार इन्होंने हिन्दू जनतामें करना चाहा। अब तककी लिखी गयी (सूफी कवियों द्वारा) प्रेम कथाएँ कल्पना-प्रसूत थीं, किन्तु जायसीने कल्पनाके साथ ही ऐतिहासिक आधार भी ग्रहण कर उसे प्राणवन्त कर दिया है। भाषा बोल-चालकी अवधी ग्रहण करनेसे भी कविको बड़ी सफलता मिल सकी है।

ऊपर हम लिख आए हैं कि भारतमें सूफी संतोंने सूफी सिद्धान्तका किस प्रकार प्रचार किया और वेदान्त तथा सूफीमतके मेलसे "सामान्य भक्तिमार्ग"का किस प्रकार निर्माण किया गया। कबीर, नानक और दादू आदि सन्त इसी साधना-मार्ग पर चले। इसके अतिरिक्त भक्ति (राम और कृष्णकी भक्ति) का मार्ग भी हिन्दू जनताके बीच चला आ रहा था। किन्तु जायसी कबीरसे अधिक प्रभावित हुए। क्योंकि हठयोगकी समस्त प्रवृत्तियाँ इन्होंने कबीरसे ही ग्रहण की हैं। यह 'अखरावट' (जो जायसीकी दूसरी रचना है) में स्पष्ट है कि—"ना—नारद तब रोइ पुकारा। एक जुलाहै सौं मैं हारा॥"

जायसी बड़े गम्भीर और शास्त्रज्ञ थे, क्योंकि ज्ञान निरूपणमें ये बड़े मननशील और संयत हैं। ये मसनवीकी शैलीमें प्रेम कहानी कहते हुए भी अपनी गम्भीरता पर आँच नहीं आने देते। वेदान्तको मानते हुए भी इन्होंने सूफी मतको इस चातुर्य्यसे जनताके बीच रखा कि किसीको ज्ञात न होने पावे कि कवि अपने सूफीमतसे प्रभावित करना चाहता है।

सामान्य जनताने मुसलमानोंके एकेश्वरवाद और अद्वैतवादमें कोई विशेष अन्तर न समझा। मध्य-युगमें यह एकेश्वरवाद भी हिन्दू-धर्ममें पाया जाता है। गोरखपंथी योगियोंमें योगका प्रचार था ही और इधर शैव-सम्प्रदायके लोग भी योगमें विश्वास करते थे; अधिक क्या कहा जाय उस समयका सारा वातावरण ही योगमय हो चुका था, अपने इस अति उन्नत कालमें आडम्बरके दोषसे योग भी दोषग्रस्त हो उठा। इस योगके विरुद्ध आगे चलचकर सूर और तुलसी आदि कवियोंने आवाज

उठाई। तुलसीदासने लिखा—"गोरख जगायो जोग भगति भगायो लोग" और मानसके ज्ञान-दीपक प्रसंगमें योगपर भक्तिकी विजय दिखायी। इसी प्रकार सूरने भी भ्रमरगीतीय रचनाके द्वारा योगको भक्तिसे महत्वहीन घोषित किया। ऊपर लिखा जा चुका है कि सन्त कबीरने योगको आश्रय दिया। शरीरके अन्तर्गत इड़ा नाड़ीको यमुना, पिंगलाको गंगा तथा सुषुम्नाको सरस्वती आदि कहा—"यहि पार गंगा ओहि पार जमुना, बिचवाँ मड़ैया हमारी छवाइ दैहो।" इनका कहना था कि इसी शरीरमें त्रिवेणी है। सिरमें आकाशकी स्थिति। इन सन्तोंकी अटपटी बातोंमें जनता बड़े कौतूहलसे फँस जाती थी। वास्तवमें इस समय हिन्दू धार्मिक-भावनाके अन्तर्गत सहिष्णुता एवं सम्मिश्रणकी भावना बड़ी प्रबल थी। तुलसीदास आदि सन्त स्वयं शैव-वैष्णव-संबंधी समस्याओंमें सामंजस्य स्थापित करना चाहते थे और आगे चलकर किया भी। राम और कृष्ण एक ही हैं, इसका भी प्रचार हो रहा था। महात्मा कबीर अपने मतमें भक्ति और योग दोनोंको ग्रहण कर रहे थे। इधर हिन्दू-धर्ममें रहस्यवादी प्रणयमूला भक्ति भी विद्यमान थी। ग्यारह आसक्तियोंमें कान्तासक्ति भी एक थी, इसी भावसे गोपियाँ भगवान् श्रीकृष्णकी भक्ति करती थीं।

वास्तवमें इस्लाम धर्ममें अद्वैतवाद नहीं ग्रहण किया गया था। किन्तु सूफी सन्तोंने एकेश्वरवादका समर्थन किया था। योग—प्राणायाम आदि भारतीय सूफी-सन्तोंमें प्रचलित थे। शेख बुरहानका एक प्रसिद्ध योगी होना और दाराशिकोहका 'रिसाला हकनामा' आदि इसके प्रमाण हैं। इस समयके सूफियोंमें धार्मिक सहिष्णुता तथा सामञ्जस्यकी भावना प्रबल दिखाई पड़ती है—क्योंकि एक मूर्तिपूजकको देखकर (जब वह मूर्तिपूजा कर रहा था) निजामुद्दीन औलिया (जो एक सुप्रसिद्ध सूफी धर्मका प्रचारक था) का कहना—"हर कौम रास्ते राहे, दीने व किबलः गाहे" अर्थात् "प्रत्येक जातिका अपना मार्ग, अपना धर्म, और अपना

मंदिर होता है।" इस बातका प्रमाण है। जायसीने भी 'अखरावट' में लिखा है—"विधिनाके मारग हैं तेते। सरग नखत तन रोवाँ जेते।"*

वास्तवमें इस बातका ध्यान रखना आवश्यक है कि मुसलमानोंने भारतमें आकर देखा कि हिन्दू-धर्म जिस पुष्ट दर्शन पर आधारित है, उसकी नींव बहुत ही दृढ़ है, अतः हमारा धर्म इस धर्मकी समत्तकतामें टिक नहीं सकता। हमारे धर्म और दर्शनकी महानताका प्रश्न ही व्यर्थ है जबकि हिन्दू-धर्म और दर्शनकी समानतामें वह आ भी नहीं सकता, तो अधिक हो ही कैसे सकता है। ऐसी परिस्थितिमें इस्लाम धर्मको उपेक्षाकी दृष्टिसे देखनेवाले हिन्दुओंको अपनी ओर आकृष्ट करनेके लिए सूफियोंने दूसरे धर्मोंकी ओर दिखावटी सहिष्णुताका प्रदर्शन कर इस्लाम-की विशेषताओं पर प्रकाश डालनेकी प्रवृत्तिको ग्रहण किया। यह कार्य बड़ी सावधानीका था। यदि हिन्दुओंके समक्ष सब प्रकारसे दूसरे दीनकी बातें ही विशुद्ध ढंगसे रखी जातीं, तो सूफियोंको भय था कि हिन्दू जनता न तो उनके सम्पर्कमें ही आवेगी और न उनकी बातें ही सुनेगी। अतः सूफियोंने अपने धार्मिक प्रवचन आदिमें हिन्दू-धर्ममें प्रचलित विशेषणोंका मुसलमानोंके लिए प्रयुक्त करना और कुरानको पुरान कहना आदि प्रभावोत्पादक प्रणालीको ग्रहण किया। रहस्यवादी प्रणयमूला-भक्ति तो सूफी-धर्मका मेरुदण्ड ही है। जिस प्रकार हिन्दू-धर्ममें गुरुका सम्मान अत्यधिक है, उसी प्रकारकी भावना सूफियोंमें भी पायी जाती है।

ऊपर जो थोड़ी-सी धार्मिक चर्चा की गयी है उससे सूफियोंके दृष्टिकोण

---

* किन्तु सूफी-सन्तोंका यह सामंजस्यवादी दृष्टिकोण और सहिष्णु-भावना मात्र ऊपरी थी, वास्तविक नहीं। सूफी धर्मकी विशेषता और श्रेष्ठताको प्रमाणित करनेका माध्यम उदार-भावनाको ही इन सूफी-सन्तोंने बनाया था। यही उनका सामंजस्यवादी और सहिष्णु-भावनाका रहस्य था—लेखक।

पर थोड़ा प्रकाश पड़ता है। क्योंकि जायसी आदि सूफी सन्त इस वातावरण और भावनासे बहुत प्रभावित जान पड़ते हैं। आगे हम इसी पर विचार करेंगे।

हिन्दी प्रेमाख्यानक-काव्यकी धाराके विषयमें अभी तक तीन प्रकारके विचार मिलते हैं—

१—"ये मुसलमान कवि हिन्दू मुसलिम ऐक्य चाहते थे।" यह मत आचार्य श्रीरामचन्द्र शुक्लजीका है।"*

२—"ये कवि सूफी धर्मका प्रचार चाहते थे और इन्होंने लौकिक आख्यानोंके माध्यमसे अलौकिक सत्ता तथा रहस्यवादी प्रेमकी व्यंजना इन आख्यानोंमें की है।" "इन्होंने मुसलमान होकर हिन्दुओंकी कहानियाँ हिन्दुओंकी ही बोलीमें पूरी सहृदयतासे कहकर उनके जीवनकी मर्मस्पर्शिनी अवस्थाओंके साथ अपनी उदारताका पूर्ण सामञ्जस्य दिखा दिया। जायसीके लिए जैसा तीर्थ व्रत था, वैसा ही नमाज और रोजा। वे प्रत्येक धर्मके लिए सहिष्णु थे। इन कवियोंने कभी किसी मतके खण्डनकी चेष्टा नहीं की।"‡

और तीसरा मत डा० कमलकुलश्रेष्ठका है, वे लिखते हैं—"प्रस्तुत लेखकके दृष्टिकोणसे परिस्थिति अपना एक दूसरा इन प्रेमाख्यानोंके द्वारा इस्लाम प्रचारकी पृष्ठभूमि तैयार करनेका पहलू भी रखती है।† हिन्दी-प्रेमाख्यानक काव्यमें हिन्दू-मुसलिम ऐक्य ढूँढनेवाले विद्वानोंके तर्क निम्नलिखित हो सकते हैं :—

१—इन्होंने हिन्दू कहानी बड़ी सहानुभूतिके साथ कही है। २—

---

*जायसी ग्रन्थावली (१६३५) भूमिका पृ० ३।

‡ हिन्दी साहित्यका आलोचनात्मक इतिहास—डा० रामकुमार वर्मा एम० ए०, पी एच० डी० (१६३८) पृ० ३०४-५ तथा पृ० ३१३।

† "हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य" पृ० १५७ ८।

इन्होंने हिन्दू-धर्मकी आलोचना नहीं की है। ३—जिन जिन घरोंमें इनकी पोथी मिली है, वे परिवार हिन्दू-मुसलिम द्वेषसे परे पाए गए।

इन तर्कोंके निराकरणमें डा० श्रीकमलकुल श्रेष्ठने निम्नांकित विचार प्रकट किए हैं :—

१—"कहानीको सहानुभूतिपूर्वक कहने मात्रसे यह नहीं कहा जा सकता कि इन्हें हिन्दू-धर्मसे सहानुभूति थी। सम्भव है यह सहानुभूति किसी अन्य लक्ष्यको लेकर दिखलायी गयी हो।......

२—"इन्होंने मूर्तिपूजा आदिका खण्डन तीव्र शब्दोंमें किया है।

"वास्तवमें ये कवि उन सूफियोंके शिष्य होते थे जो इस्लामके प्रचारक थे........ इन कवियोंकी दृढ़ आस्था इस्लाम पर थी। जायसीने (जिन्होंने बड़ी सहानुभूतिके साथ कहानी कही है) लिखा है—

'विधिना के मारग हैं तेते। सरग नखत तन रोवाँ जेते॥
तेहिमहँ पंथ कहौं भल गाई। जेहि दूनौ जग छाज बड़ाई॥
सो बड़ पंथ मुहम्मद केरा। है सुन्दर कबिलास बसेरा॥
लिखि पुरान बिधि पठवा साँचा। भा परवान दुहूँ जग बाँचा॥"

"अर्थात्—कुरान दोनों जगतमें प्रामाणिक ग्रन्थ है। जायसी और भी कहते हैं—"वह मारग जो पावै सो पहुँचै भव पार। जो भूला होइ अनतहि तेहि लूटा बटमार॥"

"अर्थात् जो व्यक्ति इस्लामका अवलम्ब ग्रहण करता है, वह तो संसारके पार उतर जाता है और जो लोग दूसरे धर्मको मानते हैं, वे भूलते हैं और माया द्वारा लुट जाते हैं।" अतः यह कैसे कहा जा सकता है कि जायसी सामंजस्यवादी थे।

"जायसी नमाजके सम्बन्धमें कहते हैं—

"ना नमाज है दीनक थूनी। पढ़ै नमाज सोई बड़ गूनी॥

"इसी प्रकार इन सूफी कवियोंने कुरान और मुहम्मद पर बड़ी आस्था दिखाई है।"

डाक्टर साहब और भी लिखते हैं—

'इन्द्रावती' में नूरमुहम्मद अपनी नायिका इन्द्रावतीसे कहलाते हैं—

"निसिदिन सुमिरु मुहम्मद नाऊँ। जासों मिलै सरग महँ ठाऊँ॥

*　　　*　　　*

"साहस देत परान हमारा। अहै रसूल निबाहन हारा॥"

—"इन्द्रावती"

मूर्ति-पूजाके विरोधमें नूरमुहम्मद लिखते हैं—

"का पाहन के पूजे लहई। पूजो ताहि जो करता अहई॥
पाहन सुने न तेरी बातें। सुमिरत जग करता दिन रातें॥"

—'इन्द्रावती'

इसी प्रकार जायसीका दृष्टिकोण—

"दीपक लेसि जगत कहँ दीन्हा। भा निरमल जग मारग चीन्हा॥
जौ न होत अस पुरुष उजियारा। सूझि न परत पंथ उजियारा॥

बिना मुहम्मद साहबके नाम-स्मरणके विधि-जाप भी व्यर्थ है—

"जो भर जनम करै विधि जापा। बिनु वोहि नाम होहिं सब लापा॥"

कुरानकी महानता तो अधिक है ही—

"जो पुरान विधि पठवा सोई पढ़त गरंथ।
औ जो भूले आवत सोई लागे पंथ॥"

जायसी मूर्ति-पूजा का खण्डन करते हैं—

"पाहन चढ़ि जो चहै भा पारा। सो ऐसे बूड़े मझधारा॥
पाहन सेवा कहाँ पसीजा। जनम न ओद होइ जो भींजा॥"
बाउर सोइ जो पाहन पूजा। सकत को भार लेइ सिर दूजा॥"

"इन कवियोंने मुहम्मद साहब और कुरान आदि पर तो बड़ी श्रद्धा दिखाई है; किन्तु जब राम और कृष्णकी याद आती है तो उन्हें ये लैला-मजनूकी कोटिमें रखते हैं। हिन्दू-धर्मसे सहानुभूति रखनेवाला व्यक्ति हिन्दुओंकी अगाध श्रद्धाके पात्र राम और कृष्णको इस स्तर पर नहीं ले

जा सकता। ये कवि कुरानको पुरान कहते हैं, जिसका अर्थ हो सकता है कि—यह सबसे प्राचीन ग्रन्थ होनेसे आदरका पात्र है और दूसरा यह कि हिन्दुओंके हृदयमें कुरानके लिए भी वैसी ही श्रद्धा हो, जैसी श्रद्धा पुराणोंके प्रति है। अपने काव्यमें ये कवि इस्लाम-धर्मकी बातें बड़ी सावधानीसे कह डालते हैं—

"मुहम्मद सोइ निहचिंत पथ, जेहि संग मुरसिद पीर।
जेहि के नाव औ खेवक बेगि लाग सो तीर॥"—(जायसी)

उपर्युक्त विवरणसे स्पष्ट है कि वास्तवमें इन्हीं कहानियोंके माध्यमसे इन कवियोंने इस्लामका तथा और भी कुछ इधर-उधरका उपदेश दिया है। इन कहानियोंमें हिन्दुओंके प्रति जो कुछ भी श्रद्धा दिखलाई पड़ती है, वह मात्र इसलिए कि उनका कहीं भेद न खुल जाय। अपने धर्मकी लपेटमें लेनेके लिए इन कवियोंने हिन्दू जनतासे धार्मिक एवं सांस्कृतिक भावनामें सामजस्य रख उनकी सहानुभूति प्राप्त कर लेनेका प्रयत्न किया है। इन कवियोंने सूफी धर्मके प्रचारमें तात्विक-दृष्टिसे सोचा—तर्कों एवं वाद-विवादके बलपर इस्लाम हिन्दू-धर्मके सामने नहीं टिक सकता। यही कारण था कि इन्हें सामंजस्य एवं सहिष्णुताका आधार ग्रहण करना पड़ा। अपनी-अपनी रचनाओंके आरम्भमें इन कवियोंने इस्लामका प्रचार करनेवालोंके प्रति बड़ी श्रद्धा दिखाई है। इनके विचारोंसे प्रकट है कि हिन्दू-धर्म न तो इस्लामके समकक्ष है और न कोई महत्वपूर्ण धर्म ही है। वास्तवमें इन कवियोंकी रचनाओंमें नैतिक एवं एकाध धार्मिक उपदेश मिलते हैं, जिसके आधार पर इन्हें सूफी-प्रेममार्गी कह भक्तियुगके निर्गुण-काव्यकी दो शाखाओंमें विभक्त करना और इनकी एक दूसरी शाखामें गणना करना महत्वहीन है।

डाक्टर श्रीकमलकुल श्रेष्ठके विचारोंमें एक नवीन सन्देश इन सूफी कवियोंके सम्बन्धमें प्राप्त होता है; जिसके कारण अब यह कहनेका साहस

नहीं किया जा सकता कि ये सूफी कवि हिन्दुओंके धर्मसे सहानुभूति रखते थे।

उपर्युक्त विवेचनसे जायसी आदि प्रेमाख्यानक-काव्य-रचयिता कवियों-की दार्शनिक भावनाओं पर विचार किया गया। किन्तु अपनी रचनाओंमें इन्होंने हिन्दू-धर्मको श्रद्धाकी दृष्टिसे देखा हो या न देखा हो, चाहे जिस किसी भी मत पर बल दिया हो, उसके प्रकाशनमें कहाँ तक सफलता प्राप्त कर सके, अब यह देखना है; क्योंकि साहित्यिक-दृष्टिकोण किसी धर्म विशेष पर नहीं आधारित है, वह एक स्वतंत्र विचार-पद्धति है।

पद्मावतका आध्यात्मिक पक्ष—कवि जायसीकी ईश्वर-संबंधी मान्यता इस्लामी एकेश्वरवादके आधारपर है, जिसमें वेदान्ती अद्वैतवादका भी प्रभाव है। इसके अनुसार वे कहते हैं :—

'सुमिरों आदि एक करतारू। जेहि जिउ दीन्ह कीन्ह संसारू॥'

अर्थात्—ईश्वर एक है, जो सृष्टिकर्त्ता और जीवनदाता है। यह ईश्वर अलख है, अरूप है और अवर्णनीय है—'अलख अरूप अबरन सो कर्ता। वह सबसों सब ओहि सो बर्ता॥" ईश्वर प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूपसे सर्वत्र व्याप्त है उसे धर्मात्मा पहचान लेते हैं, पापी नहीं—"परगट गुपुत सो सरब बिआपी। धरमी चीन्ह न चीन्है पापी॥"

ईश्वर कालकी सब सीमाओंसे परे है, समग्र विश्वका सारा खेल उसीका रचा हुआ है, संसार जिसकी सत्तासे सुरक्षित है, उसकी लीलाएँ अपार हैं, वे कही नहीं जा सकतीं। सृष्टिके पूर्व न नामका कोई अस्तित्व था, न स्थान का, न शब्दका; उस समय न पाप या न पुण्य, उस समय एकमात्र आत्मलीन मुहम्मद साहबकी ही सत्ता थी। वह अलख-शक्ति एकाकी थी उसके न तो कोई गुण थे और न उपाधि। सूर्य-चन्द, दिन-रात आदि कुछ भी नहीं थे। वह परमसत्ता स्वर, व्यंजन, शब्द और रूप आदिसे अतीत है। ऐसी दशामें इनकी सहायताके बिना कोई भी इस अवर्णनीय कथाको वाणीका रूप कैसे दे सकता है?

'हुता जो सुन्न-म-सुन्न, नाँव ठाँव ना सुर सबद।
तहाँ पाप नहिं पुन्न, मुहमद आपहु आपु महँ॥
आप अलख पहिले हुत जहाँ। नाँव न ठाँव न मूरति तहाँ॥
पूर पुरान पाप नहिं पुन्नू। गुपुततें गुपुत सुन्नतें सुन्नू॥
अलख अकेल सबद नहिं भाँती। सूरज चाँद दिवस नहिं राती॥
आखर सुर नहिं बोल अकारा। अकथ कथा का कहौं विचारा॥"

उस सर्वव्यापी ईश्वरके जीव नहीं, परन्तु फिर भी वह रहता है, बिना हाथके ही सृष्टिका वह रचयिता है, वह बिना कानके सुनता और वाणी-रहित होनेपर भी वह बोलता है। हृदय न रहते हुए भी वह सत्-असत् का विवेक रखता है, बिना नेत्रके ही वह सब कुछ देख लेता है, यह सब कुछ होनेपर भी मूर्खोंसे वह दूर और दृष्टिवालोंके अधिक निकट है:—

"जीउ नाहिं पै जियै गुसाईं। कर नाहीं पै करै सबाईं॥
जीभ नाहिं पै सब किछु बोला। तन नाहीं सब ठाहर डोला॥
स्रवन नाहिं पै सब किछु सुना। हिया नाहिं पै सब किछु गुना॥
नयन नाहिं पै सब किछु देखा। कौन भाँति अस जाइ बिसेखा॥
दीठिवन्त कहँ नियरे, अन्ध मूरखहिं दूर।"

आदि कर्त्ताने जिसकी रचना की, उसकी तुलना किसीसे नहीं की जा सकती, उसकी शक्ति अनन्त है, उसने क्षणमात्रमें ही सारी सृष्टिकी रचना कर डाली!:—

'निमिख न लाग करत ओहि सबै कीन्ह पल एक।'

सबसे बड़ी विचित्रता इस बातकी है कि:—

'कीन्हेसि दरब गरब जेहि होई। कीन्हेसि लोभ अघाइ न कोई॥
कीन्हेसि जियन सदा सब चहा। कीन्हेसि मीचु न कोई रहा॥
कीन्हेसि सुख औ कोटि अनन्दू। कीन्हेसि दुख चिन्ता औ दन्दू॥
कीन्हेसि कोइ भिखारी कोइ धनी। कीन्हेसि संपति बिपति पुनि घनी॥

अर्थात् सभी अच्छाइयों-बुराइयोंका वही आदि स्रोत है। उसने अन्न

पैदा किया जो गर्वका कारण है, उसने तृष्णाकी सृष्टि की, जो कभी भी शान्त नहीं होना जानती। उसने जीवन बनाया, जिसकी इच्छा सभी रखते हैं। उसने मृत्युकी सृष्टि की, जिसे कोई भी न रोक सका। उसने सुख-वैभव तथा करोड़ों आनन्दोंकी रचना की, उसने दुःख, चिन्ता और सन्देहको भी उत्पन्न किया। उसके साधन अपरम्पार हैं वह समग्र सृष्टिका एकमात्र स्वामी है, वह सदैव सबको देता है, किन्तु उसका भंडार कभी भी रिक्त नहीं होता। वह छोटे-से-छोटे और बड़े-से-बड़े सभी प्राणियोंका पोषण करता है, वह शत्रु या मित्रकी भावनासे रहित है। :—

"छत्रपति रहै जेहिक संसारू। सबै देत नित घट न भँडारू॥
जा वह जगत हरित औ चाँटा। सब कहँ भुगुति राति-दिन बाँटा॥"

उपर्युक्त विवरणसे स्पष्ट है कि जायसीकी ईश्वर-संबंधी मान्यता भारतीय अद्वैतवादके अधिक निकट है।

पद्मावतमें वर्णित पद्मावतीको कविने इसी ईश्वरका प्रतीक माना है। पद्मावतीके जन्म-संबंधमें कवि कहता है कि दस माह पूर्ण होनेपर वह शुभ घड़ी आई, जब पद्मावती कन्याने अवतार लिया। उसका रूप इतना सुन्दर था कि जान पड़ता था सूर्य-किरणोंके तत्वसे उसकी रचना हुई है। ज्यों-ज्यों वह बड़ी होती गयी, सूर्य-किरणोंकी आभा मन्द होने लगी। रात्रिमें भी दिन-सरीखा प्रकाश फैल गया; कैलाशके समान सारा विश्व उसकी ज्योतिसे जगमगा उठा। उसे देखकर समस्त देवता और मनुष्य श्रद्धासे भूमिपर अपना शीश झुकाते हैं। उसकी आशामें योगी, यती और संन्यासी सभी तप करते हैं।

पद्मावतीकी काली भौंहें उस धनुषकी भाँति तनी हैं, जिसे कभी कृष्णने धारण किया था और कभी रामचन्द्रने रावण-वधके लिए उठाया था। पवन-झकोरे आते हैं, लहरें उठती हैं, स्वर्गसे टकराती हैं और धरती पर लौट आती हैं; उसके नयन-सागर चंचल होतेही समस्त सृष्टिको प्रकम्पित कर देते हैं; जान पड़ता है, क्षणमात्रमें सब सृष्टि उलट जायगी।

उसकी बरौनियोंके वाण सारे संसारको वेधनेमें समर्थ हैं। सूर्य, चन्द्र, तारागण हीरे और रत्न-मणि-माणिक मोती आदि सभीने तो उसकी दन्तपंक्तिसे आभा प्राप्त की है। सारे वेदोंमें वर्णित सम्पूर्ण ज्ञान उसकी जिह्वापर मौजूद है। देवतागण उसके चरणोंको हाथों-हाथ लिए रहते हैं, उसके चरणोंमें अपना मस्तक नवाते रहते हैं। पद्मावतीकी अलौकिक मूर्तिसे सब देवता भी प्रभावित हैं। गुरु का प्रतीक हीरामन तोता भी रत्नसेनसे पद्मावतीका जो संदेश कहता है उसमें पद्मावतीने अपने वासका संकेत किया है, जो सात स्वर्गोंके ऊपर है।

रत्नसेनसे कवि कहलाता है—प्रत्यक्ष हो या अप्रत्यक्ष प्रत्येक वस्तुपर पद्मावतीका नाम अंकित है, जिधर भी मैं देखता हूँ, वही दिखाई पड़ती है तथा ऐसा कौन है, जिसके पास मैं जाऊँ ?

इस प्रकार हम देखते हैं कि जायसीने ईश्वरके आदर्श-सौन्दर्यपर अपनी समग्र वृत्तियोंको केन्द्रित किया है। पद्मावती इसी आदर्श-सौन्दर्यकी प्रतीक और प्रतिमा है।

हीरामन तोता गुरुका प्रतीक है जिसके बिना चरम प्राप्तव्य तक नहीं पहुँचा जा सकता। जायसीका कथन है कि सद्गुरु-कृपासे ही शिष्यको ईश्वरका दर्शन होता है। नाम-जपसे भक्तके हृदयमें ईश्वरकी प्रतिमा स्पष्ट और स्थिर हो जाती है। पद्मावतीसे मिलन होनेपर रत्नसेनने उसे बताया—मुझे सुआ मिला तथा उसने मुझसे अपनी कथा कही। उसपर मुझे पूर्ण विश्वास था। तुम्हारे अलौकिक रूप-लावण्यकी बात मैंने सुनी। तुम्हारा नाम ले-लेकर मैंने तुम्हारे चित्रकी एक कल्पना की। नेत्र-मार्गसे तुम्हारी वह अलौकिक रूप-लावण्यता मेरे हृदय-पटलपर प्रविष्ट कर अंकित हो गयी। तुम्हारी चर्चा सुनकर मैं सरूप-स्वरूप हो गया तथा तुमने रूप-सौन्दर्यकी मूर्ति बनकर मेरी कल्पनामें निवास किया। मैं काष्ठ-मूर्तिमय हो गया तथा मेरा मन जड़ हो गया। मैं जो कुछ भी कहता हूँ वह सब तुम्हारी ही प्रेरणासे है।

'पद्मावत' में वर्णित जिन-जिन विघ्न-विपत्तियोंका प्रसंग आया है, वे सब साधकके पथकी कठिनाइयोंके प्रतीक हैं इन कठिनाइयोंको पार करनेके लिए वैराग्य, तपस्या तथा योगका ही सहारा लेना पड़ेगा। पद्मावतीके कथनका कि अगर रत्नसेन मृग-चर्मपर बैठकर योगाभ्यास पूर्ण कर ले तो उसे आनन्दकी प्राप्ति होगी और मैं भी उसे ही जयमाला पहनाऊँगी। आगे चलकर देवाधिदेव शिवजी योगके रहस्योंका उसे ज्ञान कराते हैं—'तुम्हारे शरीरकी भाँति यह सिंहलगढ़ भी बाँका है। पुरुष वास्तवमें उसकी छाया है। इसे आत्मज्ञानसे ही पहचाना जा सकता है। इस गढ़में नौ द्वार हैं—(शरीरके नौ बाहरी मार्ग) और यहाँ पाँच कोतवाल पहरा देते हैं, यहाँ कोतवालसे तात्पर्य पाँच ज्ञानेन्द्रियोंसे है। गढ़में एक दसवाँ गुप्त द्वार (ब्रह्मरन्ध्र) भी है। इसकी चढ़ाई विकट है, टेढ़ी-मेढ़ी है, जो इसका रहस्य जानते हैं, वही इसपर चढ़ सकते हैं। जो दृष्टि (कुण्डलिनी) को ऊपर करता है, वही इसे देख सकता है, जो वहाँ जाना चाहता है, उसे श्वास तथा मन संयत (प्राणायाम तथा ध्यान) करना होगा। रत्नसेनने इसी विधिका सहारा लिया। आगे चलकर कवि प्रेम-तत्वका महत्व दिखाते हुए जब रत्नसेनकी परीक्षा शिव-पार्वती द्वारा करा लेता है और उसके निष्कपट एवं अनन्य प्रेम-भावकी सचाईका पता लग जाता है, तब उसे पद्मावती प्राप्त होती है।

अतः स्पष्ट है कि मात्र कथा कह देनेका ही विचार जायसीका नहीं था, बल्कि *पद्मावतमें उनकी एक आध्यात्मिक अभिव्यंजनाकी भी चेष्टा* दृष्टिगत होती है। हाँ, यह बात कही जा सकती है कि जिस रूपकके द्वारा आध्यात्मिक व्यंजना उन्होंने की है उसका सर्वत्र निर्वाह नहीं हुआ है। पद्मावतका सारी कथाका घटनापक्ष अध्यात्मवादसे पूरा-पूरा नहीं मिल पाता। ऐसा होते हुए भी ग्रन्थमें जो विरह-वर्णनका पक्ष है उसमें भी अलौकिकताका दर्शन होता है, चाहे वह रत्नसेनका विरह है या नागमतीका; सबमें इस विरहका वही महत्व है, जो आत्मा-परमात्मा-मिलनके

लिए आवश्यक तत्व है। इस विरहमें एक व्यथा होते हुए भी मनकी शुद्धिकी भावना भी है क्योंकि यदि विरहको यह व्यथा, प्रेमकी यह पीर, विरहकी यह जलन न होती, जिसे पद्मावतमें कविने दिखाया है, तो आत्मा कभी भी इतनी शुद्ध न हो पाती जो परमात्मा से मिलनके लिए आवश्यक है।

प्रेम-तत्वका जो वर्णन जायसीने इसमें किया है, रत्नसेनका पद्मावतीके लिए और नागमतीका रत्नसेनके लिए, वह एक बार पद्मावतीको ईश्वरका प्रतीक मानता है और दूसरी बार रत्नसेनको भी ईश्वरका प्रतीक माना है क्योंकि ये दोनों स्थलोंके प्रेम और विरह-वर्णन साधारण प्रेम और विरह-वर्णनसे भिन्न हैं। हाँ, यह बात पुस्तकमें दिए गए रूपकके अनुकूल नहीं बैठ पाती।

साहित्यमें कवि और काव्यका स्थान—जायसीने 'पद्मावत' की रचनामें हिन्दू-संस्कृतिके अन्तर्गत अनेक धार्मिक एवं दार्शनिक विवरण उपस्थित करनेका प्रयास किया है, किन्तु ये विवरण अनेक प्रकारसे अपूर्ण हैं। रचनामें शृङ्गार-वर्णनके अन्तर्गत संयोग तथा वियोग-वर्णन उत्कृष्ट हैं। अलंकारोंके वर्णनमें उपमा, रूपक और उत्प्रेक्षा आदिका प्रयोग यथास्थान उचित ढंगसे किया गया है। पात्रोंका चरित्र-चित्रण हिन्दू-जीवनके आदर्शोंसे भरा है। इनकी रचना सब मिलाकर काव्य-कलाका एक उत्कृष्ट नमूना उपस्थित करती है, भाषा और भावोंका जहाँ तक प्रश्न है, उसमें कविको यथेष्ट सफलता प्राप्त हुई है। कविके कलात्मक कौशल-का विवरण ऊपर प्रस्तुत किया जा चुका है, उसे देखते हुए हम कह सकते हैं कि यह रचना हिन्दी-साहित्यकी एक गणनीय वस्तु है और वही स्थान हिन्दीके क्षेत्रमें कविका भी है।

भाषा और उसपर अधिकार—प्रायः प्रेम-काव्यकी सभी रचनाएँ अवधी भाषामें हुई हैं। विद्वानोंका मत है कि अवधी भाषाके प्रथम कवि खुसरो थे। इन्होंने ब्रजभाषाके साथ सबसे पहले अवधीमें भी काव्य-रचना

की, यद्यपि उनका दृष्टिकोण पहेलियों तक ही सीमित था। कवि खुसरोके समयसे ही हिन्दी-साहित्यमें काव्यकी दो ही प्रमुख भाषाएँ थीं, पहली अवधी और दूसरी ब्रजभाषा। इन दोनों भाषाओंके आदर्श अलग-अलग थे। अवधीमें रचना करनेवाले कवियोंने दोहे और चौपाई छन्दोंको अपनाया और ब्रजभाषामें सवैया, पद और कवित्त आदि छन्दों को।

इन प्रेमाख्यानक-काव्योंके कवियोंको अवधी भाषाके प्रयोगमें कितनी सफलता प्राप्त हुई है? यदि विचार किया जाय तो प्रेम-काव्यमें जो अवधी भाषा प्रयुक्त हुई है, वह बहुत सरल और स्वाभाविक है। वह जन-समाजकी बोलीके रूपमें है। संस्कृतकी क्लिष्ट शब्दावलीका प्रयोग इन कवियोंने नहीं किया है।

रस-निरूपण—रसकी दृष्टिसे प्रेमकाव्य शृङ्गार-रस-प्रधान रचनाएँ हैं। शृङ्गार-रसके अन्तर्गत जहाँ सूफीमतकी प्रधानता है, वह वियोग-पक्षके प्रतिपादनमें अधिक सुन्दर रचना है। शृङ्गारके अतिरिक्त दूसरे रसोंका भी प्रयोग कवियोंने कथावस्तुकी मनोरंजकता बढ़ानेके लिए किया है। किन्तु कहीं-कहीं शृङ्गार-रसके साथ-साथ वीभत्स-रसके आ जानेसे शास्त्रीय दृष्टिसे प्रेम-काव्यमें रस-दोष आ जाता है।

विशेषता—हिन्दी-साहित्यमें इन प्रेमाख्यानक-काव्योंके माध्यमसे कथा-साहित्यका बहुत कुछ विकास हुआ। हिन्दू-मुसलमान दोनोंने अपने आदर्श और सूफीमतके सिद्धान्तोंसे प्रेम-काव्यको सजीव किया है। धर्मका जहाँ तक दृष्टिकोण है, हिन्दुओंके वेदान्त और सूफी मतके सिद्धांतोंमें बहुत कुछ समानता है। *आचार्य श्रीरामचन्द्र शुक्लने जायसी-ग्रन्थावलीमें* लिखा है—"हिन्दीमें चरित-काव्य बहुत थोड़े हैं। ब्रजभाषामें तो कोई ऐसा चरित-काव्य नहीं, जिसने जनताके बीच प्रसिद्धि प्राप्त की हो। पुरानी हिन्दीके 'पृथ्वीराजरासो', 'बीसलदेवरासो', 'हम्मीररासो' आदि वीरगाथाओंके पीछे चरित-काव्यकी परम्परा हमें अवधी भाषाहीमें मिलती है। ब्रजभाषामें केवल ब्रजवासीदासके 'ब्रजविलास'का कुछ प्रचार कृष्ण-

भक्तोंमें हुआ; शेष, "रामरसायन" आदि जो दो-एक प्रबन्ध-काव्य लिखे गए, वे जनताको कुछ भी आकर्षित नहीं कर सके। "केशव"की 'रामचन्द्रिका'का काव्य-प्रेमियोंमें आदर रहा, पर उसमें प्रबन्ध-काव्यके वे गुण नहीं हैं, जो होने चाहिए। चरित-काव्यमें अवधी-भाषाको ही सफलता प्राप्त हुई और अवधी भाषाके सर्वश्रेष्ठ रत्न हैं—'रामचरित मानस' और 'पद्मावत'। इस दृष्टिसे हिन्दी-साहित्यमें हम जायसीके उच्च स्थानका अनुमान कर सकते हैं।"

सगुणधारा

३—गोस्वामी तुलसीदास–(राम-काव्य)

१—राम-कथाकी उत्पत्ति—राम-कथाकी उत्पत्तिके संबंधमें दो दृष्टिकोण पाए जाते हैं—१ आध्यात्मिक, २—ऐतिहासिक-साहित्यिक।

(अ)—आध्यात्मिक दृष्टिकोण—यह दृष्टिकोण राम-कथाको कल्प-भेदी मानता है। यह वर्ग राम-कथाका मूल-स्रष्टा शिवको मानता है:—

"रचि महेस निज मानस राखा। पाइ सुसमय सिवा सन भाषा॥"

अर्थात् जब लिपिका आविष्कार नहीं हुआ था, उसके पहले ही शिवने राम-कथाकी सृष्टिकर अपने मानसमें रख छोड़ा था और कालान्तरमें समय पाकर पार्वतीको मौखिक ही सुनाया; क्योंकि उस समय राम-कथा लिपिबद्ध न हुई थी। इन्हीं शिवजीसे लोमश ऋषिने राम-कथा प्राप्त की वह भी मौखिकही (लिपिबद्ध नहीं)

"राम-चरित-सर गुप्त सुहावा। संभुप्रसाद तात मैं पावा॥"

लोमश ऋषिसे काकभुशुंडिजी भी मौखिक (लिपिबद्ध नहीं) ही उसे प्राप्त करते हैं—

"सुनि मोहिं कछुक काल तहँ राखा। रामचरित मानस तब भाखा॥"

जिस समय काक भुशुण्डिजी गरुड़से यह राम-कथा कह रहे थे, उस समय तक राम-कथा सुने भुशुण्डिको भी सत्ताईस कल्प बीत चुके थे—

"इहाँ बसत मोहिं सुनु खगईसा। बीते कल्प सात अरु बीसा॥"

गरुड़को भुशुण्डिजी भी लिपिबद्ध कथा नहीं सुनाते बल्कि मौखिक ही—

"पीपर तरु तर ध्यान सो धरई। जाप जग्य पाकरितर करई॥
आपु छाँहकर मानस पूजा। तजि हरि-भजन काज नहि दूजा॥

बरतर कइ हरि कथा-प्रसंगा। आवहिं सुनहिं अनेक बिहंगा॥"

इस प्रकार परम्परागत राम-कथा मौखिक ही अनंत-अनादिकालसे चली आती इस दृष्टिकोणसे मानी जाती है।

(ब)—ऐतिहासिक-साहित्यिक दृष्टिकोण—इस वर्गके लोग वाल्मीकिके पितामह च्यवन ऋषिको परम्परागत मौखिक आती हुई, राम-कथाको सर्व-प्रथम जब लिपिका आविष्कार हुआ था, तब लिपिबद्ध करनेवाला मानते हैं।* इसके पहले उपलब्ध समग्र विश्व-साहित्यमें प्राचीनतम ऋग्वेदमें राम-कथाके पात्रोंका नामोल्लेख मिलता है†। राम-कथाकी वैदिकता प्रमाणित करते हुए मानस-तत्वान्वेषी सुप्रसिद्ध रामायणी पं० श्रीरामकुमारदासजी महाराजने दो सौ ग्यारह पृष्ठोंका एक ग्रन्थ लिखा है, जिसका नाम है—'वेदोंमें राम-कथा।

२—राम-कथाका पल्लवन—लिपिबद्ध-साहित्यमें महत्वपूर्ण ढंगसे राम-कथा का वर्णन करनेवाली प्रतिनिधि रचना वाल्मीकि रामायण ही है। समग्र विश्व साहित्यमें राम-कथाको कवियों और जनतामें जितना सम्मान प्राप्त हुआ, उतना और किसी भी आख्यानको नहीं मिल सका। कालान्तरमें राम-कथाका वर्णन हमें 'महारामायण', 'संवृत रामायण', 'अगस्त्यरामायण', 'लोमश रामायण', 'मञ्जुल रामायण', 'सौपद्यरामायण', 'रामायण महामाला', 'सौहार्द रामायण', 'रामायण मणिरत्न', 'सौर्य रामायण', 'चान्द्ररामायण', 'मनुरामायण', 'स्वायम्भुव रामायण', 'सुब्रह्म रामायण', 'सुवर्चस रामायण', 'देवरामायण', 'श्रवण रामायण', 'दुरन्त रामायण', 'रामायण चम्पू', 'महाभारत', 'हरिवंशपुराण', 'विष्णु पुराण', 'वायुपुराण', 'भागवतपुराण', 'कूर्मपुराण', 'अग्निपुराण', 'नारदपुराण', 'ब्रह्मपुराण', 'गरुड़पुराण', 'स्कन्दपुराण', 'पद्मपुराण',

* इस सम्बन्धमें विस्तृत विवेचन देखनेके लिए हमारी पुस्तक 'गोस्वामी-तुलसीदास और राम-कथा' देखिए।—लेखक

† देखिए हमारी पुस्तक—'गोस्वामी तुलसीदास और राम-कथा'—लेखक

'ब्रह्मवैवर्तपुराण', 'ब्रह्माण्डपुराण', 'नृसिंहपुराण', 'विष्णु धर्मोत्तरपुराण', 'वह्निपुराण', 'शिवपुराण', 'श्रीमद्देवीभागवत् पुराण', 'महाभागवत (देवी) पुराण', 'बृहद्धर्म पुराण', 'कालिका पुराण', 'सौर पुराण', 'श्रीरामपूर्वतापनीयोपनिषद', 'श्रीराम उत्तर तापनीयोपनिषद', 'योग-वाशिष्ठ रामायण', 'अद्भुत रामायण', 'आनन्द रामायण', संस्कृत साहित्यकी अन्य रचनाओं—'रघुवंश', 'रावणवध अथवा सेतु-बंध', 'भट्टिकाव्य अथवा रावण-वध', 'जानकी-हरण', अभिनन्दकृत 'राम-चरित', 'रामायण-मंजरी तथा दशावतारचरित', 'उदार राघव', 'जानकी-परिणय', 'रामलिंगामृत और राम-रहस्य', 'प्रतिमा नाटक', 'अभिषेक नाटक', 'महावीर चरित', 'उत्तर-राम-चरित', 'कुंदमाला', 'अनर्घ राघव', 'बाल रामायण', 'महा नाटक अथवा हनुमन्नाटक', 'आश्चर्य-चूड़ामणि', 'प्रसन्न राघव' तथा प्राकृत, तामिल, तेलगू, मलयालम कन्नड़, काश्मीरी, बँगला, उड़िया, मराठी, गुजराती, असमी, फारसी, अरबी, उर्दू, पाली भाषा, जैन-साहित्य और हिन्दी आदिके विशाल साहित्यमें प्राप्त होता है। राम-कथा का आगे चलकर व्यापक रूपसे इस प्रकार प्रसार हुआ कि वह विदेशमें भी—खोतान, चीन, तिब्बत, इन्दोनेशिया, इन्दोचीन, श्याम, ब्रह्मदेश और रूस आदिमें फैली (देखिए लेखक की 'गोस्वामी तुलसीदास और राम-कथा' नामक ग्रन्थ)।

३—हिन्दी-साहित्यकी राम-कथा—स्वामी रामानन्दजीने उत्तरी भारतमें राम-भक्तिका खूब-प्रचार किया। उनके प्रभावसे भक्त लोग राम-संबंधी रचनाएँ फुटकल पदोंमें भी करने लगे। आगे चलकर रामचरितको प्रबन्धात्मक रूपसे विक्रमकी सत्रहवीं शताब्दीके पूर्वार्द्धमें भाषा-काव्यकी समस्त प्रचलित पद्धतियोंके अनुसार वर्णित करनेवाले भक्त-शिरोमणि महाकवि तुलसीदासजी ही हुए।*

* गोस्वामी तुलसीदासका जन्म संवत् १५५४ श्रावण शुक्ला सप्तमी माना जाता है। इनका प्रारंभिक नाम 'रामबोला' था। जन्म देनेके

गोस्वामी तुलसीदासजीके अतिरिक्त भी बादमें अनेक कवियोंने राम-साहित्यकी रचना की; किन्तु राम-साहित्यपर रचना करनेवाले हिन्दीके किसी कविको उतनी सफलता नहीं प्राप्त हुई, जितनी तुलसीदासजीको। तुलसीदासने राम-कथाको लेकर मानव-जीवनकी जितनी व्यापक समग्र समीक्षा की, उतनी इनके पश्चात् होनेवाले कवियोंके द्वारा फिर सम्भव न हो सकी। भक्तिके साथ इन्होंने मानव-जीवनमें ऐसे आदर्शोंकी स्थापना की, जो समयके प्रवाहमें भी सुरक्षित रहेगा। आचार्य श्रीरामचन्द्रशुक्लजीने ठीक ही कहा है 'अपने दृष्टि-विस्तारके कारण ही तुलसीदासजी उत्तरी भारतकी समग्र जनताके हृदय-मन्दिरमें पूर्ण प्रेम-प्रतिष्ठाके साथ विराज रहे हैं। भारतीय जनताका प्रतिनिधि कवि यदि किसीको कह सकते हैं, तो इन्हीं महानुभाव को। और कवि जीवनका कोई एक पक्ष लेकर चले हैं—जैसे वीरकालके कवि उत्साह को, भक्ति-कालके दूसरे कवि प्रेम और ज्ञान को, अलंकारके कवि दाम्पत्य-प्रणय या शृंगार को। पर इनकी वाणीकी पहुँच, मनुष्यके सारे भावों और व्यवहारों तक है। एक ओर तो वह व्यक्तिगत साधनाके मार्गमें विरागपूर्ण शुद्ध भगवद्भक्तिका उपदेश करती है, दूसरी ओर लोकपक्षमें आकर पारिवारिक और सामाजिक कर्तव्योंका

पश्चात् इनकी माताका देहान्त हो गया। इनका पालन एक दासीने किया। इनके पिताका नाम आत्माराम दुबे था और माताका नाम हुलसी। इनका बाल्यकाल बड़ा संकट-ग्रस्त था, किन्तु इन्होंने काशीमें रहकर खूब विद्याध्ययन किया और १५ वर्षकी कठिन मेहनतके पश्चात् ये प्रकाण्ड पंडित हो गए। विद्वान होकर जब ये घर—राजापुर लौटे, तब इनका विवाह हुआ। ये अपनी स्त्री पर बड़े अनुरक्त थे। बादमें उसीके द्वारा इन्हें वैराग्य हुआ। विरक्त होकर इन्होंने सारे भारतका भ्रमण किया और रामभक्तिका प्रचार भी। संवत् १६८० श्रावण शुक्ला तीज शनिको इनका देहान्त हो गया।

सौन्दर्य दिखाकर मुग्ध करती है। व्यक्तिगत साधनाके साथ ही-साथ लोक-धर्मकी अत्यन्त उज्वल छटा उसमें वर्तमान है।'*

तुलसीदासजीके अतिरिक्त राम-चरितपर हिन्दी-साहित्यमें रचना करनेवाले कवियोंके नाम इस प्रकार हैं।† केशवदास, स्वामी अग्रदास, नाभादास, सेनापति, हृदयराम, प्राणचन्द चौहान, बालदास, लालदास, बालभक्ति, रामप्रियाशरण, जानकीरसिकशरण, प्रियादास कलानिधि, महाराज विश्वनाथ सिंह, प्रेमसखी, कुशल मिश्र, रामचरणदास, मधुसूदनदास, कृपानिवास, गंगाप्रसाद, व्यास उदैनियाँ, सर्वसुखशरण, भगवानदास खत्री, गंगाराम, रामगोपाल, परमेश्वरीदास, पहलवानदास, गणेश, ललकदास, रामगुलाम द्विवेदी, जानकीचरण, शिवानन्द, दुर्गेश, जीवाराम, बनादास, मोहन, रत्नहरि, रामनाथ, जनकलाड़िलीशरण, जनकराजकिशोरीशरण, गंगाप्रसाददास, हरबख्श सिंह, लक्ष्मण, रघुवरशरण, गिरधारीदास तथा इनके अतिरिक्त बीसवीं शताब्दीमें रामचरित उपाध्याय, बलदेवप्रसाद मिश्र, 'ज्योतिषी', अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' और मैथिलीशरण गुप्त आदि हैं। इन सभी कवियोंकी रचनाओंमें निम्नलिखित ग्रन्थ महत्वपूर्ण हैं :—

१—'रामचरित-मानस', 'दोहावली', 'कवितावली', 'गीतावली', एवं 'विनय-पत्रिका', जिनके रचयिता गोस्वामी तुलसीदास हैं।

२—'रामचन्द्रिका' जिसके रचयिता केशवदास हैं।‡

---

* आचार्य शुक्ल प्रणीत—'हि० सा० का इतिहास' छठाँ संस्करण पृ० १३८ देखिये। † देखिये डा० श्रीरामकुमार वर्माका 'हिन्दी-साहित्यका आलोचनात्मक इतिहास', द्वितीय संस्करण।

‡ आचार्य केशवदासने यद्यपि रामचरितपर भी रचना की है और वे भक्तिकालके कवि भी हैं, किन्तु ये साहित्यमें रीति-ग्रन्थोंके प्रणेता होनेसे रीतिकालके अधिक निकट हैं; अतः इनकी समीक्षा इस ग्रन्थमें नहीं की जा रही है।

३—'साकेत' जिसके रचयिता मैथिलीशरण गुप्त हैं। †

अतः तुलसीदासकी रचनाओं—'रामचरित-मानस', 'दोहावली', 'कवितावली', 'गीतावली' और 'विनय-पत्रिका' पर ही हम अपना अध्ययन उपस्थित करना चाहते हैं।

विद्वानोंकी सम्मतियों और खोजोंके आधारपर महात्मा तुलसीदासके द्वारा रचे गये १२ ग्रन्थ प्रामाणिक हैं जिनमें 'दोहावली', 'कवितावली', 'गीतावली', 'रामचरित-मानस' और 'विनय-पत्रिका' ये पाँच बड़े ग्रन्थ हैं तथा 'रामलला नहछू', 'पार्वती-मंगल', 'जानकी-मंगल', 'बरवै रामायण', 'वैराग्य-संदीपनी', 'कृष्णगीतावली' और 'रामाज्ञा प्रश्नावली' ये सात छोटे ग्रन्थ हैं।

४—तुलसीकी राम-कथाका संगठन—राम-कथा जो व्यापकरूपमें पायी जाती है, वह अत्यन्त साधारण-सी लगती है, और संक्षेपमें इस प्रकार है:—

अयोध्यापति महाराज दशरथके तीन रानियाँ थीं, किन्तु किसीभी रानीसे कोई भी सन्तान न थी। वृद्धावस्थामें कौशल्या, सुमित्रा और कैकेयी आदि रानियोंसे राम, भरत लक्ष्मण और शत्रुघ्न नामक चार पुत्र हुए। राम सबसे बड़े थे, रामका विवाह महात्मा जनककी पुत्री सीतासे होता है। कुछ समयके पश्चात् महाराज दशरथ अयोध्याके राज्य-पर रामका राज्याभिषेक करना चाहते हैं, किन्तु कैकेयी द्वारा विघ्न पड़ जाता है, राम वन चले जाते हैं, उनके साथ सीता और लक्ष्मण भी वनको प्रस्थान करते हैं, रामके स्थानपर कैकेयी भरतका अभिषेक कराना चाहती है; किन्तु भरत इसे स्वीकार नहीं करते। अन्तमें रामके मनानेपर वे मान जाते हैं। राक्षसोंका राजा रावण सीताको हर लेता है। सीताकी खोज करते हुए राम वानरोंके राजा सुग्रीवके मित्र बन जाते हैं

† गुप्तजी आधुनिकयुगके कवि हैं। अतः इनकी कृतियोंकी भी चर्चा यहाँ न की जा सकेगी।

श्रौर सुग्रीवकी सहायतासे लंकापर चढाई कर देते हैं। राक्षसोंका संहार कर राम सीताको पुनः प्राप्त कर भाई लक्ष्मणके साथ अयोध्या लौट आते हैं। अयोध्याके राज्यपर उनका अभिषेक होता है और वे राज करने लगते हैं।

किन्तु इस कथाको लेकर विशेष-विशेष दृष्टिकोणोंसे विशेष-विशेष भाव ग्रहण किये गये। हिन्दू राम-कथामें राम विष्णुके महत्वपूर्ण अवतार हैं, अतः उसमें भक्ति-भावनाकी छाप है। बौद्ध-साहित्यमें राम-कथाके अन्तर्गत राम बोधिसत्वके रूपमें देखे जाते हैं, अतः उनके चरित्रमें सत्य-शीलकी प्रतिष्ठा कर उन्हें बुद्धकी कोटिमें पहुँचानेकी चेष्टा है। जैन-राम-कथाके अन्तर्गत रामका व्यक्तित्व एक ऐसे महनीय पुरुषके रूपमें वर्णित है, जो इस सम्प्रदायके अन्तिम लक्ष्य—(जैनधर्ममें दीक्षित हो) मुक्तिका अधिकारी होता है। हिन्दू-राम-कथा यत्र-तत्र कर्मकाण्ड और वर्णाश्रम-धर्मके कारण आचार व्यवहारकी विशेष प्रणाली द्वारा रामके जीवनकी विभिन्न घटनाओंसे दार्शनिक, धार्मिक, नैतिक एवं मर्यादित तत्वोंकी अभिव्यक्ति करती हुई रामके स्वरूपके विकासको प्रतिबिम्बित कर रही है।

बौद्ध और जैन राम-कथाओंमें श्रमण-परम्पराका प्रभाव लक्षित होता है। इसके सिवाय धार्मिक मत-भेदके कारण राम-कथासे भिन्न गौण पात्रों और प्रासंगिक घटनाओंके संयोजनमें हिन्दू-राम-कथासे बौद्ध जैन-राम-कथाओंमें अन्तर आ गया है। हिन्दू-राम-कथामें कल्पित अंशोंमें जहाँ ऋषि, मुनि, बन्दर; ऋक्ष तथा राक्षस आदिके कार्य अपने निजी ढंगके दिखलाये गये हैं, वहाँ बौद्ध-जैन राम-कथाओंमें इस प्रकारके कोई भेद-भाव नहीं हैं। यहाँ तो सभी (राम-कथा के) पात्रोंको साधारण मानव कोटिमें ही प्रदर्शित किया गया है। इन तीनों परम्पराओंके कारण राम-कथाकी साधारण विवरण-संबन्धी बातोंमें भी कुछ-न-कुछ अन्तर है। हिन्दू राम-कथामें राम अयोध्यापति महाराज दशरथके पुत्र हैं और वे वनवासके समय दक्षिण दिशामें दण्डक वनकी ओर जाते हैं, किन्तु

बौद्ध राम-कथाका प्राचीन रूप रामके पिताको वाराणसीका राजा मानकर चलता है, उसमें राम घर छोड़कर हिमालयकी ओर जाते हैं। दक्षिण-की यात्रामें, सीताहरणके कारण रामको अनेक युद्ध भी करने पड़ते हैं, किन्तु उस प्राचीन कथामें इन बातोंका उल्लेख नहीं मिलता। बौद्ध राम-कथाके पिछले रूपोंमें और जैन राम-कथामें इन बातोंका अपने ढंगसे समावेश हुआ है। वाराणसीका वर्णन महाराज दशरथकी राज-धानीके रूपमें बौद्ध और जैन दोनों परम्पराएँ करती हैं। बौद्ध राम-कथाकी कुछ ऐसी भी परम्पराएँ प्राप्त होती हैं, जिनमें राम-सीता आदि अनेक महत्त्वपूर्ण पात्रोंके नाम भी नहीं आते। प्रायः सभी नाम विचित्रसे लगते हैं, किन्तु इसमें आए हुए पात्रोंके विविध कार्यों एवं घटनाओंके वर्णन ऐसे हैं, जो राम-कथाके ही समान हैं।

देश-विदेशमें उपलब्ध समग्र राम-कथाओंमें गोस्वामी तुलसीदास-कृत 'राम-चरित-मानस'का स्थान सर्वोपरि है। इसे प्रायः सभी विद्वान् मानते आ रहे हैं। इस स्थानपर तुलसीदासकी राम-कथाके संगठनके सम्बन्धमें विचार कर लेना ठीक होगा।

गोस्वामी तुलसीदासने राम-चरित-मानसके प्रारम्भमें ही लिखा है कि—

"नाना पुराण निगमागम संमतं यद्
रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोऽपि।
स्वान्तः सुखाय तुलसी रघुनाथगाथा-
भाषा निबन्धमति मंजुलमातनोति॥"

अर्थात् अनेक पुराण, वेद और (तन्त्र) शास्त्रसे सम्मत तथा जो रामायणमें वर्णित है और कुछ अन्यत्रसे भी उपलब्ध श्रीरघुनाथजीकी कथाको तुलसीदास अपने अन्तःकरणके सुखके लिए अत्यन्त मनोहर भाषा-रचनामें विस्तृत करता है, अतः उक्तिके आधारपर राम-कथाका स्वरूप 'मानस' में इस प्रकार दिखाई पड़ता है :—

शिव द्वारा रची गयी राम-कथा (जिसे रचनेके पश्चात् शिवने अपने मानसमें रख छोड़ा और समय पाकर पुनः शिवा अर्थात् पार्वतीसे कही और परंपरागत वही कथा कालान्तरमें याज्ञवल्क्यने भरद्वाज ऋषिको सुनाई) अपने गुरु द्वारा सुनकर तुलसीदास अपनी स्मृति और अनेक ग्रन्थोंसे सहायता लेकर भाषा-रचनामें उसे प्रस्तुत करनेकी घोषणा करते हैं। प्रारम्भमें उमाके मनमें होनेवाले सन्देहोंका वर्णन है। उमाको रामके सम्बन्धमें यह सन्देह हुआ कि वे परब्रह्म हैं, अथवा नहीं। वे इस बातकी परीक्षा करती हैं, जिससे उन्हें विश्वास तो कुछ-कुछ हुआ, किन्तु सीताका रूप धारण करनेके कारण उन्हें शिव त्याग देते हैं और वे अपने पिताके घर जाकर मृत्युको प्राप्त हो गयीं। दूसरे जन्ममें राजा हिमालयकी पुत्री—पार्वतीके रूपमें जन्म लेती हैं और पुनः शिवको पतिरूपमें वरण करनेके लिए घोर तप करती हैं। ठीक इसी समय त्रैलोक्य विजयी राक्षस तारक देवताओंको सन्तप्त करता दिखाया गया है। देवगण ब्रह्मासे सहायता चाहते हैं। उन्हें बताया जाता है कि तारक शिवसे उत्पन्न पुत्र द्वारा ही पराजित किया जा सकता है और किसीसे वह नहीं हार सकता। देवगण समाधिस्थ, पवित्र अन्तःकरण शिवके पास उन्हें कामसे क्षुभित करनेके लिए कामदेवको भेजते हैं। वह शिवको क्षुभित करनेकी चेष्टा करता है, जब शिवका ध्यान भंग हुआ, तब वे क्रुद्ध होकर अपनी दृष्टिसे उसे भस्म कर देते हैं तथा कामदेवकी पत्नी रतिको वरदान देकर शिव उसे सन्तुष्ट करते हैं।

इधर पितामह ब्रह्मा सब देवताओंकी ओरसे पार्वतीका पाणिग्रहण करनेके लिए शिवसे प्रार्थना करते हैं। इसे शिव मान लेते हैं और पर्वतराज हिमालयके यहाँ बड़ी धूमधामके साथ पार्वतीका विवाह होता है। कुछ समय व्यतीत होनेपर शिव पार्वतीका राम कथा सम्बन्धी वार्तालाप होता है, जिसमें शिव-राम कथा कहनेके ही प्रसंगमें उनके यथार्थ स्वरूपका भी वर्णन करते हैं। राम परब्रह्म परमेश्वर हैं, वे भक्तोंकी भलाईके

लिए समय-समयपर अवतार लिया करते हैं। उनके अवतारके अनेक कारणोंमें एक कारण नारदका शाप है, दूसरा कारण मनु और शतरूपा-को पुत्ररूपमें पैदा होनेका दिया गया वरदान है, तीसरा कारण राजा भानुप्रतापके पतनपर परिवार सहित राक्षस हो जाने और स्वयं भानुप्रताप-का त्रैलोक्य-विजयी राक्षसराज रावणके रूपमें पैदा होने और घोर तप द्वारा वानर और मनुष्यको छोड़ अन्यसे अवध्यताका वरदान ब्रह्मा द्वारा प्राप्त होनेका है, जिसे राम मारते हैं।

राक्षसराज रावण मन्दोदरीसे विवाह कर लंकामें बस जाता है, वहाँ वह अत्यन्त दुर्गम दुर्ग बना देवताओंको अपने झण्डेके नीचे कर लेनेका निश्चय करता है, जिससे यज्ञादि कर्म बन्द करा देता है। देवता दुरात्मा रावणके भयसे भाग पहाड़ोंकी गुफाओंमें छिप अपना प्राण बचाते हैं। सारे संसारके मनुष्य रावणकी दुष्टतासे अत्यन्त त्रस्त हो उठते हैं, क्योंकि वहाँ तहाँ, गाँव-गाँवको वह फूँककर ब्राह्मणों और गायोंको अग्निमें झोंक देता है। दिन-प्रतिदिन रावणके बढ़ते हुए अत्याचारोंसे पृथ्वी अत्यन्त दुःखी हो जाती है और अत्यन्त दीनताके साथ वह देवताओंके पास जाती है। देवताओंके साथ शिव और ब्रह्मा विष्णुसे बड़ी विनम्रतापूर्वक प्रार्थना करते हैं। विष्णु भगवान् राजा दशरथके यहाँ रावण-वध करनेकी प्रतिज्ञा कर अवतार लेनेका वचन देते हैं। उधर अयोध्याधिपति महाराज दशरथ पुत्रेष्टि-यज्ञ करते हैं और समय पाकर बड़ी रानी कौशल्यासे रामका अव-तार उनके यहाँ होता है, उनके अंशके तीनों भाई भरत-लक्ष्मण और शत्रुघ्न भी कैकेयी और सुमित्राके गर्भसे पैदा होते हैं। रामकी बाललीला-का वर्णन और विश्वामित्रका अयोध्यागमन, रामका विवाह, उनके राज्या-भिषेकका प्रसंग, राजा दशरथके वचनसे ही राज्याभिषेकमें विघ्न पड़ना, नगर-निवासियोंका विरह-विषाद, रामका वन-गमन, केवटका प्रेम, गङ्गा पार कर प्रयागमें निवास, वाल्मीकि आश्रमपर सीता लक्ष्मण सहित रामका स्वागत, चित्रकूटमें निवास, फिर सुमन्तका राम-लक्ष्मण-सीताको

पहुँचाकर लौटना, राजा दशरथका मरण, भरतका ननिहालसे अयोध्यामें आना, राजा दशरथकी अंत्येष्टि क्रिया करके नगर-निवासियोंको साथ लेकर भरतका रामको लौटानेके लिए चित्रकूट जाना, रामके समझानेपर उनकी पादुका लेकर राज्य सँभालनेके लिए नगर-वासियोंके साथ भरतका अयोध्या लौटना, नन्दिग्राममें बसकर भरतका शासन-भार सँभालना, इन्द्र-पुत्र जयन्तकी कथा और राम-अत्रिऋषिके मिलापका वर्णन, विराधका वध, शरभंग ऋषिके शरीर-त्यागकी कथा, सुतीक्ष्णके प्रेमका वर्णन करते हुए अगस्त्य ऋषिके साथ रामके सत्संगका वर्णन, दण्डकारण्य जाकर रामने उसे जिस प्रकार शाप-मुक्त किया और गृद्धराज जटायुकी रामसे मित्रताका वर्णन, रामके पंचवटीके निवासका वर्णन, वहाँ ऋषियोंको निर्भय करते हुए लक्ष्मणको ज्ञान-वैराग्यका अनुपम उपदेश दिया जाना और शूर्पणखाके चेहरेकी विकृतिकी कथा और खर एवं दूषण राक्षसोंके साथ चौदह सहस्र राक्षसोंके वधकी कथाका वर्णन और रावणको इन बातोंके समाचार पानेकी कथाका वर्णन मानसमें तुलसीदास करते हैं। इसके आगे रावण और मारीचकी बात-चीत, माया-सीताका हरण, रामके विरहका वर्णन, रामके द्वारा जटायुकी अंत्येष्टि क्रिया करनेका वर्णन, कबन्धका वधकर शबरीकी परगतिका वर्णन, रामका वियोग-वर्णन और उनके पंपासरतीरपर जानेकी कथाका वर्णन, नारद-राम-सवाद, मारुतनन्दन हनुमानके मिलनेका प्रसंग, सुग्रीवकी मित्रता, वालि-वधका प्रसंग, सुग्रीवके राज्याभिषेकका वर्णन, राम-लक्ष्मणके प्रवर्षण पर्वतपर निवास करनेकी कथा, वर्षा, शरद ऋतुका वर्णन, रामका सुग्रीवपर रोष और सुग्रीवके भयभीत होनेकी कथा, जानकीकी खोजमें सुग्रीव द्वारा वानरोंके दिशा-विदिशामें भेजे जानेका वर्णन, स्वयंप्रभाके विवरमें वानरोंका प्रवेश, संपाती गृद्धका वानरोंसे मिलन आदिकी कथाका वर्णन, संपातीके मुखसे सीताका पता पाकर भयानक जीव-जन्तुओंसे संकुलित अपार सागरका हनुमान द्वारा शीघ्रतासे पारकर लंकामें प्रवेश, जानकीको ढूढ़ने और उन्हें धैर्य

देनेकी कथा, हनुमान द्वारा अशोक वनको उजाड़ने, लंकाको जलाकर भस्म करने और पुनः समुद्र लाँघकर सब साथी वानरोंके साथ हनुमानका रामके समीप लौटनेका वर्णन, जिस प्रकार सेनाके साथ राम समुद्रके किनारे पहुँचे, रामसे आकर विभीषण मिला और समुद्रके बाँधनेकी बातचीतका वर्णन, सेतुबन्ध, राम-लक्ष्मणका वानरी सेनाके साथ समुद्र पार करना, अंगदका दूत-कर्म, वानर-राक्षसोंका युद्ध, कुम्भकर्ण, मेघनादादिके बल, पुरुषार्थ और संहारकी कथा, राक्षसगणोंके मरणका वर्णन, राम और रावणके अप्रतिम युद्धका वर्णन, रावणके वधकी कथा, मन्दोदरीके शोकका वर्णन, विभीषण-राज्याभिषेककी कथा, राम और सीताके मिलनकी कथा, देवताओं द्वारा राम और सीताकी की गयी स्तुतिका वर्णन, पुष्पक विमान द्वारा प्रमुख वानरों, विभीषण और सीता-लक्ष्मणके साथ वनवासकी अवधि बिताकर रामका अयोध्याके लिए प्रस्थानका वर्णन, रामके राज्याभिषेककी कथा और रामकी राजनीतिका वर्णन गोस्वामी तुलसीदासने अपने 'मानस' में किया है। इस कथाके पश्चात् कवि रामकथाके मर्मको समझानेके लिए काकभुशुण्डि और गरुड़का एक और संवाद वर्णित करता है। उमासे जब शिव कहते हैं कि हे प्रिये, मैंने तुम्हें रामकी वह सारी कथा सुना दी, जिसे भुशुण्डिने पक्षिराज गरुड़को सुनाया था, तब उमा शिवसे पूछती हैं कि कौवेने रामसे भक्तिका महान् वर किस प्रकार पाया और अपवित्र कौवेका शरीर उसे कैसे मिल गया, क्योंकि वह तो बड़ा ही ज्ञानी था। इसपर शिव पार्वतीसे बोले—हे प्रिये! तुम्हारे पूर्व जन्ममें जब तुम्हारा 'सती' नाम था, तब तुम्हारी मृत्युसे मुझे बड़ा दुःख हुआ और तुम्हारे वियोगसे दुःखी हो मैं घूमता रहा। इस सिलसिलेमें मैं सुमेर पर्वतकी उत्तर दिशामें और दूर चला गया, वहाँ मैं बहुत ही सुन्दर नील पर्वतपर पहुँचा। उस पर्वतके स्वर्णमय शिखर हैं, जिनमेंसे चार सुन्दर शिखर मुझे बहुत ही अच्छे लगे। उन शिखरोंमें एक-एकपर बरगद, पीपल, पाकर तथा आमका एक-एक विशाल वृक्ष

है। पर्वतके ऊपर एक सुन्दर तालाब शोभित है, जिसकी मणियोंकी सीढ़ियाँ देखकर मन मुग्ध हो जाता है उस तालाबका जल मधुर, शीतल और अत्यन्त स्वच्छ है, उसमें रंग-बिरंगे कमल पाए जाते हैं, उस तालाब में हंसगण रहा करते हैं, उस सुन्दर पर्वतपर काकभुशुण्डि रहता है, जिसका नाश महा-प्रलय (कल्पके अन्त) में भी नहीं होता। माया-रचित गुण-दोष, काम आदि अविवेक जो समग्र संसारमें व्याप्त हैं, उसके निकट नहीं फटकते। वहाँ रहकर काकभुशुण्डि पीपल-वृक्षके नीचे ध्यान धरता है, पाकरके नीचे जप-यज्ञ, आमके नीचे मानसिक पूजाकर बरगदके नीचे भगवान् रामकी कथा कहा करता है, जिसे सुननेके लिए अनेक पक्षी आया करते हैं। जब आनन्द देनेवाले उस स्थानपर मैं गया, तो मुझे बड़ा ही आनन्द आया और हंस पक्षीका रूप धारण कर कुछ समय तक मैं वहाँ रामकी कथा सुनता रहा। कुछ समयके पश्चात् मैं कैलाश लौट आया। इसी प्रसंगमें गरुड़को, जिन्हें रामके ईश्वरत्वमें सन्देह था, और सर्वत्र अपना सन्देह मिटानेके लिए दौड़ चुके थे, शिवने काक-भुशुण्डिके पास राम-कथा सुननेके लिए भेजा। राम-कथा सुन चुकनेके पश्चात् गरुड़ पूछते हैं कि प्रभो! आपको कौवेका शरीर कैसे प्राप्त हो गया? काकभुशुण्डि इसपर अपने अनेक जन्मोंकी कथा सुनाते हैं और अपने ऊपर लोमश ऋषिके क्रोध द्वारा शाप और वरदानकी भी कथा सुनाते हैं। इसके पश्चात् पुनः काकभुशुण्डि-गरुड़-संवादमें आत्मा, माया, ज्ञान और भक्ति-सम्बन्धी अनेक महत्वपूर्ण विषयोंकी सुन्दर विवेचना करते हुए कवि राम कथाका विस्तार अपनी रचनामें समाप्त करता है।

गोस्वामी तुलसीदासकी रचनामें राम-चरितके माध्यमसे दार्शनिक, धार्मिक और सम्पूर्ण भारतीय सांस्कृतिक अभिव्यंजनाकी महान चेष्टा की गयी है।

राम-कथाकी अनेक रूपात्मक सामग्री काव्य-शास्त्रके सम्पूर्ण कलात्मक विशेषताओंसे समन्वित होकर संग्रथित होती है। तुलसीदास द्वारा रची

गयी रामायणमें आदि-काव्य (वाल्मीकि रामायण) की अपेक्षा राम-कथा-संबंधी जो अनेक कथाएँ दी गयी हैं, वे राम-कथाके महत्त्वको और भी बढ़ानेमें सहायक होती हैं। परब्रह्म परमेश्वर रामके अवतार ग्रहण करनेके लिए जो व्याख्या की गयी है, उसमें तीन कथाएँ मुख्य हैं, जो आदि-काव्यमें नहीं पाई जातीं। १—देवर्षि नारदकी कथा; जिसमें दिखाया गया है कि वह भगवान् श्रीहरिको शाप देते हैं और उनके शापके सहन करनेके उद्देश्यसे रामका अवतार होता है। २—राजा भानुप्रतापकी कथा; जिसमें वह अपने कर्तव्यके अनुसार घोर राक्षस होकर महाशक्तिशाली रावण होता है, जिसके उद्धारके लिए रामको अवतार लेना पड़ता है। ३—आदि पूर्वज महाराजा मनु और उनकी पत्नी शतरूपाके घोर तपसे प्रसन्न हो उनके पुत्रके रूपमें रामके अवतरित होने-की कथा है। इसके अतिरिक्त काकभुशुण्डिकी कथाके समावेशका उद्देश्य सारी राम-कथाकी दार्शनिक व्याख्या एवं गुप्त रहस्यों और तत्वोंके उद्-घाटनके लिए है। काव्यके प्रबन्धात्मक स्वरूप-संगठनमें और भावाभि-व्यंजनाके विभिन्न काव्यात्मक साधनोंके कौशलपूर्ण उत्कृष्ट प्रयोगोंमें कविको बड़ी सफलता मिली है। कहीं-कहीं कथानायकों (छोटी-छोटी कथाओंके नायकों) का नाम प्रसंगानुसार लेकर कवि सूत्रात्मक ढंगसे उनकी भी कथाओंको रामचरितमें सम्मिलित कर देता है, जैसे शिवि, दधीचि, बलि, हरिश्चन्द्र, परशुराम, नहुष, गालव, सगर, ययाति, रन्तिदेव, शबरी और अजामिल आदिकी अन्तर्कथाएँ ऐसी ही सामग्री हैं।

५—'रामचरित-मानस'के आधार-ग्रन्थ—अत्यन्त प्राचीन कालसे भारतमें जिस राम-कथाकी उत्पत्ति हुई और देशविदेशमें जिसका पल्लवन हुआ उस राम-कथा सम्बन्धी समग्र रचनाओंमें सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ तुलसीदासकी कृति 'राम-चरित-मानस' की रचना किन-किन ग्रन्थोंके आधारपर हुई, इसपर थोड़ा विचार कर लेना यहाँ आवश्यक प्रतीत होता है। 'मानस'-का प्रधान आधार 'अध्यात्म-रामायण' है, क्योंकि इस ग्रन्थमें आध्यात्मिक

विचारों एवं कथानकके दृष्टिकोणसे इसका प्रभाव अधिक है। किन्तु 'मानस'की कथाएँ जो विभिन्न रचनाओंसे ग्रहण की गयी हैं, उनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है:—

'शिवने अपने मानसमें राम-कथाकी रचना कर रख छोड़ा और समय पाकर पार्वतीको सुनाया, यह कथा 'महारामायण', 'रामायणमहामाला'के समान है। शीलनिधि राजाके यहाँ स्वयंवरकी कथा, 'रामायण चम्पू'के समान, नारदमोह-वर्णन 'शिवमहापुराण' के सृष्टि-खण्ड (अध्याय ३-४) के समान, रावण-कुम्भकर्ण-अवतार 'भागवतमहापुराण', 'शिवमहापुराण' और 'आनन्द-रामायण'के समान उल्लिखित है। प्रतापभानु-अरिमर्दन और धर्मरुचिके रावण-कुम्भकर्ण और विभीषण होनेकी कथा 'अगस्त्य-रामायण' और 'मंजुल रामायण' के अनुसार वर्णित है। मनु-शतरूपाकी तपस्या, पूर्णब्रह्मसे पुत्र रूपमें अवतरित होनेका वरदान 'सवृत-रामायण'के अनुसार, पुत्रेष्टि यज्ञ, देवताओंकी विष्णुसे अवतारकी प्रार्थना, पायस प्राप्तकर रानियोंमें वितरण, देवताओंका वानर आदि योनियोंमें जन्म, रामका अपनी माताको विराट रूप दिखाना तथा उनकी बाललीलाओंका कुछ वर्णन, विश्वामित्र-आगमन, राम लक्ष्मणकी यज्ञ रक्षाके लिए याचना-वर्णन, 'आध्यात्म-रामायण'के अनुसार गोस्वामीजीने किया है। अहिल्योद्धार-वर्णन 'नृसिंह पुराण'' 'स्कन्द पुराण', 'पद्म पुराण', 'आनन्द रामायण' और 'रघुवंश'के अनुसार; गिरिजा-पूजन, सीता-रामके पारस्परिक आकर्षणका वर्णन, राम-विवाह 'जानकी हरण' और 'स्वायम्भुव रामायण'के अनुसार; परशुराम प्रकरण 'महावीर-चरित', 'बालरामायण', 'प्रसन्नराघव' और 'महानाटक'के अनुसार वर्णित है। राम राज्याभिषेककी तैयारी, वशिष्ठ-राम-वार्तालाप, राज्याभिषेकमें विघ्न और राम-वन-गमन 'आध्यात्म-रामायण'के अनुसार; कैकेयीका दोष सरस्वतीके ऊपर होनेका वर्णन 'आनन्द-रामायण'के अनुसार; राम-वन-गमनके प्रसंगमें केवटसंवाद 'चान्द्र-रामायण', 'आध्यात्म रामायण' और 'आनन्द-रामायण'के अनु-

सार; रामके चरण-धोनेका वर्णन 'सूर-सागर'के अनुसार; प्रयाग-माहात्म्य, भरद्वाज-पहुनाई 'सुब्रह्म रामायण' और 'आध्यात्म रामायण'के अनुसार; ग्राम-वधूटी-स्नेह-कथन और उनका पश्चात्ताप-वर्णन 'सौपद्य-रामायण' के अनुसार; वाल्मीकि-मिलन और चित्रकूट-निवास-वर्णन, 'रामायण मणि-रत्न' और 'आध्यात्म-रामायण'के अनुसार; सुमंत्रके अयोध्या लौटने, उनका विलाप, दशरथ-मरण 'आध्यात्म-रामायण'के; भरत-शपथ, भरत-विलाप, रामको लौटानेकी तत्परता, निषाद-रोष, निषाद-भरत संवाद और लक्ष्मण-रोष आदि कथाएँ 'दुरन्त रामायण'के अनुसार हैं। भरत-चित्रकूट-यात्रा 'आध्यात्म-रामायणके, जनक-चित्रकूट-आगमन 'श्रवण-रामायणके, पादुका लेकर भरतके नन्दिग्राममें रहनेका वर्णन, आध्यात्म-रामायण'के अनुसार; जयन्तकी कथा 'देवरामायण'के अनुसार; अत्रि-राम-मिलन, अनुसूइया और सीता-संवाद, नारी-धर्म-निरूपण 'रामायण मणिरत्न'के अनुसार; विराध-वध, शरभंगका शरीर-त्याग, सुतीक्ष्णका प्रेम, राम-अगस्त्य-मिलन आध्यात्म-रामायण'के अनुसार; दण्डकारण्य पवित्र करते हुए पंचवटी-आगमन और निवासकी कथा 'वाल्मीकि-रामायण'के अनुसार और गृद्धराज जटायुकी मित्रता, लक्ष्मणको उपदेश, शूर्पणखाको दण्ड, खर-दूषण-वध, शूर्पणखाका रावणके पास आगमन, रामका मर्म समझने और रावण-मारीचसंवाद, सीता-अग्नि-प्रवेश, मायामयी सीताकी रचना, रावण द्वारा सीता-हरण और मारीच-वध 'आध्यात्म रामायणके अनुसार है। सीता विलाप, जटायु-सहायता, उसकी मुक्तिका वर्णन, कबन्ध-वध, शबरीसे रामकी भेंट, नवधा-भक्ति-वर्णन 'मंजुल रामायण'के अनुसार; शबरीकी मुक्ति और पम्पासर गमनकी कथा 'आध्यात्म-रामायण'के अनुसार है। राम-नारद-संवाद 'सौ पद्य रामायण'के अनुसार; राम हनुमान-मिलन, सुग्रीव-मैत्री, बालि-वध सुग्रीव-राज्याभिषेक राम-लक्ष्मणका प्रवर्षण-निवास, सुग्रीव द्वारा वानरोंका सीताकी खोजके लिए भेजा जाना, विवर-प्रवेश और सम्पाति-मिलन 'आध्यात्म-रामायण'के

अनुसार; समुद्रतीरपर अंगद-विलाप, वानरोंका सभाषण 'दुरन्त-रामायण'के अनुसार; समुद्र सतरण, लंका प्रवेश, सीताको धैर्य प्रदान, वन-उजाड़ना, लंका विध्वंस और वहाँसे वापस लौटकर सीताका सन्देश रामसे कथन 'आध्यात्म रामायण' के अनुसार, सेना-सहित जिस प्रकार राम समुद्रके किनारे आए, सेतु बन्ध, विभीषण मिलन, उनका अभिषेक 'आध्यात्म-रामायण'के अनुसार; मंदोदरीका समझाना 'सुवर्चस रामायण'के अनुसार; अंगदका दूत-कार्य 'वाल्मीकि रामायण' के अनुसार; राक्षस वानर-संग्राम, कुम्भकर्ण वध, मेघनाद लक्ष्मण युद्ध, लक्ष्मणको शक्ति लगने, हनुमान द्वारा संजीवनी लाने; उपचार और उनके स्वस्थ होनेकी कथा आध्यात्म-रामायण' और 'सुवर्चस-रामायण'के अनुसार; मेघनाद-वध, रावण-यज्ञ-विध्वंस, राम रावण-युद्ध, रावणके नाभि प्रदेशमें अमृत, रावण-वध, विभीषण-राज्याभिषेक, सीता अग्नि परीक्षा 'आध्यात्म रामायण' के अनुसार; वेद, शिव, इन्द्र और ब्रह्मा द्वारा रामकी स्तुति 'रामायण मणिरत्न' के अनुसार; पुष्पकारूढ रामका लक्ष्मण-सीता सहित प्रमुख वानरोंके साथ अयोध्यागमन, राज्याभिषेक, अनेक प्रकारकी नृप नीतिका वर्णन 'आध्यात्म रामायण'के अनुसार; काकभुशुण्डि और गरुडकी कथा, भुशुण्डि-चरित 'भुशुण्डि रामायण' और 'सत्योपाख्यान'के अनुसार, शिवके मरालवेशमें नीलगिरिपर राम कथा-श्रवण 'रामायण महामाला'के अनुसार वर्णित है।

६—तुलसीके राम-कथाकी विशेषता—राम कथाके उद्‌गम, पल्लवन और 'मानस' में उसके संघटन आदिसे स्पष्ट है कि राम-कथा 'मानसकार' के मस्तिष्ककी कल्पनाप्रसूत कथा-वस्तु नहीं है, बल्कि वह अत्यन्त प्राचीनकालसे व्यापकरूपमें चली आती हुई परम्परागत है। ऐसी स्थितिमें प्रश्न हो सकता है कि तब 'मानस' की इसमें विशेषता ही क्या है? इसके उत्तरमें कहा जायगा—काव्यात्मक साधनोंके कौशलपूर्ण उत्कृष्ट प्रयोगोंके कारण कविको जो सफलता प्राप्त हुई है, वह अद्वितीय है। रामकथा कहनेवाली समग्र रचनाओंमें 'मानस' की रचना प्रत्येक दृष्टिसे

सर्वोपरि है। यह उसके प्रणेताकी दृष्टिविस्तारकी क्षमता, सारग्राहिणी प्रवृत्ति, काव्य सृजनकी कुशलता और युगकी परिस्थितियोंकी अनुभूतियों-की विशेषता है। विद्वानोंके कथनानुसार जन्मसे ही उस निराश्रित व्यक्ति ('मानसकार') को अरक्षा, अभाव, असहिष्णुता, कटुता और पीड़ाका, सामाजिक पतनके विघटन, विशृङ्खलता, स्वार्थपरायणता, मर्यादाहीनता, धर्मान्धता और पाखण्ड आदि तत्वोंका अनुभव हुआ। उस समयकी समग्र सामाजिक कुरीतियों, धार्मिक पाखण्डों, राजनीतिक अनाचारों और सांस्कृतिक विषमताओंके विरुद्ध जन-जीवनका पथ आलोकित करने, उसके संचालन और नियमनके निमित्त 'मानस' द्वारा आलोक, शक्ति, सहिष्णुता और अभिलाषाका दान करनेवाला; धर्म, न्याय, नीति, मानवता, मर्यादा, सुशासन, सुव्यवस्था, और स्वाधीनता आदि लोकहितकारी तत्वोंसे ओत-प्रोत व्यक्तित्व, जीवन-दर्शनकी महनीय चेतनाओंका सुन्दर कलात्मक ढंगसे संवहन करता हुआ दिखाई पड़ता है। राम और रावणका संघर्ष पुण्यका पापके साथ, सत्यका असत्यके साथ, न्यायका अन्यायके साथ था। युगकी पुकार सुननेवाले महात्मा तुलसीदासने समस्त उत्पीड़नों और अव्यवस्थाओंके प्रतीक रावणको समूल नष्ट करनेवाले न्याय और मर्यादाकी स्थापना करनेवाले पूर्ण-मानव श्रीरामचन्द्र जैसा नायक पाकर 'निर्बलके बल राम' की कल्पनाको साकाररूप प्रदान किया। यद्यपि तुलसीके पहले ही 'राम—नाम'का गुणगान सहस्रों वर्षोंसे ऋषि-मुनि करते आ रहे हैं, किन्तु राम-भक्तिकी जो प्रबल धारा अपने 'मानस'के द्वारा तुलसीदासने प्रस्फुटित की, उसमें अवगाहनकर भारतीय जनताने जितनी उत्फुल्लता, शक्ति, सहिष्णुता और नवोन्मेषशालिनी भाव-प्रवणतामूलक प्रेरणा पायी, उतनी कभी भी राम-चरित-संबंधी किसी अन्य रचनामें किसीको न मिली थी। कथा पुरानी कहते हुए भी दृष्टिकोण बदलकर, घोर नैतिक पतनके मध्य पिसी जाती जनताको, अपनी ज्ञानोक्तियों, उपदेशों और जीवनके अनुभवोंके संबंधमें तात्विक वचनोंके सहारे, समुन्नत लक्ष्यकी

ओर ले जानेवाले प्रशस्त पन्थको आलोकित करते हुए जीवन-दर्शनकी महनीय चेतानाओंका सूक्ष्मातिसूक्ष्म विश्लेषण कर तुलसीने राम-कथामें ताज़गी ला पतनोन्मुख समाजका उद्धार किया और जनताकी पराजित भावनाओंको बल और प्रेरणा दी। तुलसीदास विशाल हृदय थे, उन्होंने 'मानस' में जो छायाचित्र खींचा है, उसमें मानवमात्रके लिए शक्ति है, रोचकता है, आकर्षण और सचाई है।

७—तुलसीदास और उनका युग—प्रायः सभी विद्वान् मानते हैं कि तुलसीदासका युग भारतीय सांस्कृतिक और राजनीतिक पराभवका युग था। यद्यपि सम्राट् अकबर जिसके शासन-कालमें 'मानस'कारका आविर्भाव हुआ था, बड़ा आदर्श शासक था, किन्तु सारा देश उसका गुलाम था; जिसके फलस्वरूप जनता हृदयसे उसका लोहा मानती थी, उसके हृदयमें ऐसा संस्कार पैदा किया जाने लगा कि उसका अपनी स्वाधीनता, संस्कृति और सामाजिक व्यवस्थाकी रक्षाकी ओर ध्यान नहीं जा पा रहा था, जिससे उसके सारे जीवनादर्शोंका लोप होता जा रहा था और अपना आत्मविश्वास खोकर भारतीय जनता परमुखापेक्षी बनती जा रही थी और धीरे-धीरे अपने पतनोन्मुख सामाजिक सांस्कृतिक और आध्यात्मिक जीवनको स्वाभाविक माननेमें भूल करने लगी थी, उसका जातीय स्वाभिमान मिट चला था, जनताके हृदयमें न तो अपने देशके गौरवशाली अतीतके प्रति श्रद्धा रह गयी थी, और न वर्तमान् विषमता, परतन्त्रता एवं पतनको मिटाकर नए सुन्दर और गौरवपूर्ण भविष्य-निर्माणकी भावना ही स्वस्थ थी। इसी युगके दौरानमें उत्तरी भारतमें ज्ञानमार्गी और भक्तिमार्गी दोनों प्रवृत्तियोंकी धार्मिक भावनाएँ प्रबल रूपसे जनताके बीच चल रही थीं। ज्ञानमार्गी प्रवृत्तिके लोग समाजको कोरे ज्ञानोपदेशसे भगवान्की ओर अभिमुख करना चाहते थे; किन्तु भक्तिमार्गी प्रवृत्तिके लोग ज्ञानातीत परात्पर ब्रह्मको मनुष्यकी भाँति दुःख-सुख भोगनेवाले, मानवीय क्रिया-कलापोंमें देखने-दिखानेकी चेष्टा करते थे।

इन भक्तिमार्गी-प्रवृत्तियोंमें दो धाराएँ अर्थात् कृष्ण-काव्य और राम-काव्य हिन्दी-साहित्यमें प्रवाहित हुईं; किन्तु कृष्ण-काव्यके अन्तर्गत् भगवान्का जो रूप प्रस्तुत किया गया, वह महाभारतके उस कृष्णका रूप न था, जिसके द्वारा अर्जुनका रथ हाँककर दुष्टोंके संहारमें अर्जुनका उत्साह बढ़ाया गया था। अतः भगवान् कृष्णकी महाभारतके महासमरकी अलौकिक शक्ति-संपन्न छवि न दिखाई पड़ी, जिसे समाजको देखना आवश्यक था, समाजने कृष्ण-काव्यके अन्तर्गत भगवान्के उस बाल-लीला और कैशोर्यके लोक-रंजनकारी चरित्रको हृदयंगम् किया, जिससे उसे आनन्दका अनुभव तो हुआ, किन्तु 'धर्म-स्थापनार्थ' उसे उतनी सजीवता न प्राप्त हुई जो राम-काव्यके द्वारा हुई।

राम-काव्यमें रामकी बाललीलाके साथ-ही-साथ रामके वीरोचित, उदात्त, अन्याय-विरोधी 'धर्मसंस्थापनार्थी' रूपको प्रस्तुत किया गया, जिसमें जनताने रामके उस रूपका दर्शन किया, जिसमें अन्यायके विरुद्ध न्यायकी, पाशविकताके विरुद्ध देवत्वकी, अधर्मके विरुद्ध धर्मकी, पराधीनताके विरुद्ध स्वतन्त्रताकी, पतनके विरुद्ध उत्कर्षकी और पराजयके विरुद्ध जयकी क्षमता थी, या यों कह सकते हैं कि राम-भक्तिके अन्तर्गत् गोस्वामी तुलसीदासने अपने समाजका प्रत्येक दृष्टियोंसे अध्ययनकर परम्परासे आती हुई राम-भक्ति-रसायनमें ऐसे तत्वोंका मिश्रण किया, जो समाजके हृदयमें मृतप्राय आत्मगौरव और आत्मविश्वास आदि भावनाओंको जाग्रतकर प्राणवन्त करनेमें सक्षम था। इस प्रकार 'मानस'को रामकथाके मूलमें अत्याचारों अथवा आसुरी प्रवृत्तियोंके उपशमनमें संघर्ष करने और उसपर विजय प्राप्त करनेकी प्रवृत्ति भी है। इस प्रकार तुलसीदासकी राम-कथामें काव्यकी विशेषता, उसकी अमरता, उसका एक क्रान्तिकारी नवीन रूप देखा जा सकता है। रामके प्राचीनकालसे आते हुए चरितमें 'मानस'में जो विशेषताएँ प्रतिष्ठित की गयीं, उनमें मर्यादाका संरक्षण सबसे महत्वपूर्ण है, जिसके अन्तर्गत सूत्रात्मक ढंगसे समाजको सुन्दर,

स्वस्थ और पुष्ट करनेवाले सभी तत्व सन्निहित हैं।

मैंने तुलसीदासके विशाल हृदयका ऊपर उल्लेख किया है, जिसके अनुसार उनकी भावधारा व्यक्तिगत अथवा एकान्तमूलक नहीं थी, बल्कि वह समष्टिगत थी, उसमें सारे समाजका रुदन था, सारे समाजकी कामना थी, उनकी वाणीमें सारे समाजकी ध्वनि थी, उनके व्यक्तित्वमें सारे राष्ट्रका व्यक्तित्व था, उनकी विद्रोहात्मक भावनाओंमें सारे समाजकी विद्रोहात्मक भावना थी। इसलिए अपने युगमें सभी पाषण्ड फैलानेवाले सम्प्रदायोंको जो भ्रममें डालनेवाले थे, सामाजिक एकताको भंग करनेवाले थे और सामाजिक नैतिकताको दुर्बल बनानेवाले थे, उन सबोंका कड़ा विरोधकर सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक जीवनको विघटित होनेसे बचानेका प्रयत्न किया गया। तुलसीदासके समन्वयकारी दृष्टिकोणने जनता को याद दिलाया कि जब बंदर-भालू मिलकर त्रिलोक विजयी रावणके स्वर्ण विनिर्मित राज्यप्रासादको फूँककर राख बना सकते हैं, तो क्या करोड़ोंकी संख्यामें भारतीय जनता राज-समाजके कुशासनको नहीं समाप्त कर सकती? 'राम-चरित-मानस'में रावण वधके पश्चात् राम-राज्यकी जो झाँकी तुलसीदास उपस्थित करते हैं, वह कितना आशाप्रद और कितना प्रेमपूर्ण है:—

"राम राज बैठे त्रैलोका। हरषित भये गये सब सोका॥
बयर न कर काहू सन कोई। राम-प्रताप विषमता खोई॥
दैहिक दैविक भौतिक तापा। राम राज काहू नहिं व्यापा॥
सब नर करहिं परस्पर प्रीती। चलहिं स्वधर्म निरत श्रुति रीती॥
राम राज कर सुख संपदा। बरनि न सकइ फनीस सारदा॥
फूलहि फरहिं सदा तरु कानन। रहहि एक सँग गज पंचानन॥
खगमृग सहज बयरु बिसराई। सबन्हि परस्पर प्रीति बढ़ाई॥

\+ \+

सीतल सुरभि पवन बह मन्दा। गुंजत अलि लै चलि मकरंदा॥

लता विटप माँगे मधु चवहीं। मनभावतो धेनु पय स्रवहीं॥
ससि सम्पन्न सदा रह धरनी। त्रेता भइ कृतजुग कै करनी॥

बिधु महि पूर मयूखन्हि, रबि तप जेतनेहि काज।
माँगे बारिद देहिं जल, रामचन्द्र के राज॥"

भक्त और विरक्त महात्मा, जिसे सम्राट् अकबरके दरबारमें मनसब-दारी मिल रही थी और जिसने साफ इन्कार कर दिया था :—

"हम चाकर रघुवीर के, पटौ लिखौ दरबार।
अब तुलसी का होहिंगे, नर के मनसबदार॥"

उसे परलोक-प्राप्तिके अतिरिक्त अत्यन्त आकर्षक, सुख-सम्पदापूर्ण राम-राज्यसे क्या काम? इसका मतलब यह था कि वे जनताको समझाकर कहते हैं—दुराचारी राज-समाजके विरुद्ध जनताके संगठित होकर विद्रोह करनेसे नए सुशासनका जो रूप होगा, वह यही है। सुख-सम्पदा और सुव्यवस्थाके पश्चात् ही अध्यात्म और परलोककी बात सूझती है। अतः मानना होगा कि 'मानस'की रचनाकर कविने बहुत बड़ी क्रांति और उसमें परम्परासे आती हुई राम-कथामें नवीन तत्वोंका समावेश किया, जिससे पिछली राम-कथाओंसे 'मानस'में विशेषता आ गयी है।

गोस्वामी तुलसीदासके 'मानस'की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उसका रचयिता अपने समयका सबसे बड़ा भाषाविज्ञ, सबसे बड़ा सन्त, सबसे बड़ा दार्शनिक, सबसे बड़ा विद्वान्, सबसे बड़ा मानव-प्रेमी तथा सबसे बड़ा समाज-सेवी था। ये समस्त विशेषताएँ और कविकी संवेदन-शीलता सहानुभूतिपूर्ण भावुकता, विशाल हृदय और कवित्व उसकी रचनाके सर्वप्रियताके, लोक-प्रियताके और भव्य-विकासके कारण हैं। मानवताकी कहानी कहनेमें 'मानस'के अन्तर्गत कविने ज्ञान-वैराग और भक्ति-संबंधी तत्वोंको इस प्रकार लाकर रख दिया है कि वे कथानकके आवश्यक अंग बन गये हैं। वे कोरे उपदेश न होकर अत्यन्त प्रभाव-

शाली, मार्मिक, सरल एवं सरस होकर हमारे मानसपर अपनी स्थायी छाप छोड़ देते हैं। ज्ञानकी उपदेशात्मक बातें बहुत प्राचीनकालसे कही जाती रही हैं, किन्तु उनका प्रभाव जनतापर उतना न रहा, जितना कि मानव-जीवनके विभिन्न व्यापारोंके मध्य इन तत्वोंको मिलाकर कहनेसे 'मानस'के द्वारा मानसपर पड़ा। 'मानस'की व्यापकता राम-कथाकी ही भाँति दिगन्तव्यापी इन्हीं कारणोंसे हुई। तुलसी-साहित्य भारतीय जनता तक ही सीमित नहीं रहा, बल्कि दिनों-दिन विदेशी जनतामें भी लोकप्रिय होता जा रहा है। बड़े-बड़े अंग्रेज विद्वानोंने इसका विशद् अध्ययन किया, समालोचनात्मक पुस्तकें लिखीं, खोज किया और अनुवाद किए। धीरे-धीरे इसका प्रभाव और प्रसार फ्रांस, जर्मनी, रूस आदि प्रदेशोंमें भी होता जा रहा है। इस प्रकार आशा पाई जा रही है कि सारे संसारको कालान्तरमें मानवताकी इस अमर कहानी राम-कथाके साथ-साथ तुलसीका 'मानस' मानव-जातिका पथ आलोकित करता हुआ उसे एक महान् संदेश और प्रेरणा देगा, क्योंकि इसमें धार्मिकता, आध्यात्मिकता, सामाजिकता, मानव-प्रेम और मानव-जातिके भविष्य-निर्माणके जो तत्व मौजूद हैं, वे देशव्यापी न होकर विश्वव्यापी होकर रहेंगे। कविने हृदय-सरयकी सुष्टिव्यापिनी भावना द्वारा जो उपदेश दिया है, वह समग्र विश्वके छोरको स्पर्श किए बिना नहीं रह सकता।

८—'मानस'की रचनाके बाह्य-उपकरण 'मानस'का रचना-काल सर्वसम्मतिसे सं०, १६३१ माना जाता है। स्वयं कविके शब्दोंमें ही:—

"संवत सोरह सौ इकतीसा। करौं कथा हरिपद धरि सीसा॥"

'मानस'की छन्द-संख्या—'मानस' में राम-कथाका सांगोपांग वर्णन है। अन्य रामायणोंकी भाँति यह ग्रन्थ भी सात काण्डोंमें विभक्त है। किसी-किसी प्रतिमें क्षेपक कथाएँ भी मिलती हैं, जिसके कारण छन्द-संख्या निर्धारणमें कठिनता होती है। प्रामाणिक प्रतियोंके आधारपर पंडित श्रीरामनरेश त्रिपाठीजीके अनुसार चौपाइयोंकी संख्या ४६४७

और छन्द संख्या ६१६७ है ।* श्रीरामदास गौड़ने 'रामचरित-मानस'की भूमिकामें 'सत-पंच चौपाई मनोहर जानि जो नर उर धरैं' के अनुसार 'अंकानां वामतो गतिः' रीतिके आधारपर सतका अर्थ १००, पंचका ५ लेकर ५,१०० छन्द माना है ।† इससे मिलती-जुलती छन्द-संख्या श्रीचरणदासने भी 'मानस-मयंक' में लिखा है—"एकावन सत सिद्ध है, चौपाई तहँ चारु । छन्द सोरठा दोहरा, दस रित दस हजारु ।" अर्थात् चौपाइयोंकी संख्या ५,१०० है तथा छन्द सोरठा और दोहा सब मिलकर दस कम दस हजार हैं अर्थात् सम्पूर्ण छन्द-संख्या ६६६० है ।

मानसके छन्द—जिन छन्दोंमें 'मानस' की रचना हुई है, उनकी संख्या १८ है । प्रधान रूपसे चौपाई और दोहा छन्दमें ही 'मानस' की रचना हुई है । इनके अतिरिक्त वर्णिक वृत्तियोंमें स्रग्धरा, रथोद्धता, अनुष्टुप, मालिनी, वंशस्थ, तोटक, भुजंगप्रयात, वसन्ततिलका, नगस्वरूपिणी, इन्द्रवज्रा और शार्दूलविक्रीड़ित आदिका प्रयोग हुआ है ।

'मानस'का चरित्र-चित्रण—'मानस' की कला अपनी स्वाभाविक गतिसे चलती हुई समाजके आदर्शकी अपेक्षा रखती है । पात्रोंके चरित्र-चित्रणमें हम देखते हैं कि 'मानस' का प्रत्येक पात्र अपनी श्रेणीके लोगोंके लिए आदर्श है मानसकार, लोकको शिक्षा देते हुए जिस हृदयग्राही चरित-चित्रणकी अभिव्यंजना करता है, वह अद्वितीय है । 'मानस' के कुछ पात्रोंकी विशेषताओंपर प्रकाश डालना अप्रासंगिक न होगा ।

१—शिव—इनके चरित्र-चित्रणके अन्तर्गत कविने 'वैष्णवानां शिवः' के सिद्धान्तानुसार भक्तिकी प्रतिष्ठा की है, अर्थात् राम-भक्तोंके प्रतिनिधिके रूपमें शिव हमारे सामने आते हैं :—

---

* देखिए—'तुलसीदास और उनकी कविता'—श्रीरामनरेश त्रिपाठीजीकृत पृ० १२१ (हिन्दी-मन्दिर, प्रयाग) ।

† देखिए 'रामचरित-मानस' की भूमिका पृ० ६४-६५ (हिन्दी-पुस्तक एजेंसी कलकत्ता सं० १६८२) ।

"जिऐ मीन बरु बारि बिहीना। मनि बिनु फनिक जिऐ दुख दीना॥
कहउँ सुभाउ न छल मन माहीं। जीवनु मोर राम बिनु नाहीं॥
समुझि देखु जियँ प्रिया प्रबीना। जीवनु राम दरस आधीना॥"
"अजस होउ जग सुजस नसाऊ। नरक परौं बरु सुरपुर जाऊ॥
सब दुख दुसह सहावहु मोहीं। लोचन ओट रामु जनि होहीं॥"
"नृपहिं प्रानप्रिय तुम्ह रघुबीरा। सील सनेह न छाँड़िय भीरा॥
सुकृत सुजस परलोक नसाऊ। तुम्हहि जान बन कहिहि न काऊ।"
"राज सुनाइ दीन्ह बनबासू। सुनि मन भयउ न हरषु हँरासू॥
सो सुत बिछुरत गए न प्राना। को पापी जग मोहि समाना॥
भयउ बिकल बरनत इतिहासा। राम-रहित धिग जीवन आसा॥
सो तनु राखि करब मैं काहा। जेहि न प्रेम-पनु मोर निबाहा॥
हा रघुनन्दन प्रान पिरीते। तुम्ह बिनु जिअत बहुत दिन बीते।
हा जानकी लखन हा रघुबर। हा पितु हित चित चातक जलधर॥
राम राम कहि राम कहि, राम राम कहि राम।
तनु परिहरि रघुबर बिरहँ, राउ गयउ सुरधाम॥"

इसके अतिरिक्त जिस समय विश्वामित्र अयोध्या जाकर दशरथजीसे अपनी यज्ञ-रक्षाके लिए राम लक्ष्मणकी याचना करते हैं, उस समयका वर्णन कितना मार्मिक है :—

"सुनि राजा अति अप्रिय बानी। हृदय कंप मुख-दुति कुम्हलानी॥
चौथेंपन पायउँ सुत चारी। बिप्र बचन नहिं कहेउ बिचारी॥
माँगहु भूमि धेनु धन कोसा। सर्बस देउँ आजु सहरोसा॥
देह प्रान तें प्रिय कछु नाहीं। सोउ मुनि देउँ निमिष एक माहीं॥
सब सुत मोहि प्रिय प्रान की नाईं। राम देत नहिं बनइ गोसाईं॥
"मेरे प्रान नाथ सुत दोऊ। तुम्ह मुनि पिता आन नहिं कोऊ॥"

४—जनक—इनके भी चरित्र-चित्रणमें कविने सत्य-प्रतिज्ञाकी स्थापना की है। धनुष-यज्ञमें उपस्थित राजाओंके मध्य जब जनकजीकी

"एहि तन सतिहि भैंट मोहिं नाहीं। सिव संकल्प कीन्ह मन माहीं॥
अस बिचारि संकर मतिधीरा। चले भवन सुमिरत रघुबीरा॥
चलत गगन भइ गिरा सुहाई। जय महेश भलि भगति दृढाई॥
अस पन तुम्ह बिनु करइ को आना। राम-भगत समरथ भगवाना॥"
तथा—"सिव सम को रघुपति ब्रतधारी। बिनु अघ तजी सती असि नारी॥
पनु करि रघुपति भगति देखाई। को सिव सम रामहिं प्रिय भाई॥"

२—पार्वती—इनके चरित्र-चित्रणमें कविने राम-कथाके प्रति श्रद्धा दिखाते हुए पातिव्रत-धर्मकी स्थापना की है। अतः पार्वती हमारे समक्ष पतिव्रता स्त्रियोंकी प्रतिनिधि होकर आती हैं:—

"जगदातमा महेश पुरारी। जगत जनक सबके हितकारी।
पिता मन्दमति निन्दत तेही। दच्छ सुक्र संभव यह देही॥
तजिहउँ तुरत देह तेहि हेतू। उर धरि चन्द्रमौलि बृषकेतू॥"
तथा—"सतीं मरत हरिसन बरु माँगा। जनम जनम सिवपद अनुरागा॥"
और भी—"उर धरि उमा प्रानपति चरना। जाइ बिपिन लागीं तपु करना॥
अति सुकुमार न तनु तप जोगू। पति-पद सुमिरि तजेउ सबु भोगू॥
नित नव चरन उपज अनुरागा। बिसरी देह तपहिं मनु लागा॥"
इसी प्रकार—"जनम कोटि लगि रगर हमारी। बरउँ संभु नत रहउँ कुँआरी॥

३—दशरथ—इनके चरित्र-चित्रणमें कविने सत्य-प्रतिज्ञा और पुत्र-प्रेमकी प्रतिष्ठा की है। महाराज दशरथ सत्य-पालन और पुत्र-प्रेमका जो उज्ज्वल आदर्श हमारे सम्मुख उपस्थित करते हैं, वह अद्वितीय है:—

सत्यप्रेम—"रघुकुल रीति सदा चलि आई। प्रान जाहु बरु बचनु न जाई।
नहिं असत्य सम पातक पुंजा। गिरि सम होहिं कि कोटिक गुंजा॥
सत्यमूल सब सुकृत सुहाए। बेद पुरान बिदित मनु गाए॥
"नृपहिं बचन प्रिय नहिं प्रिय प्राना। करहु तात पितु बचन प्रवाना॥"
पुत्रप्रेम—"राम चले बन प्रान न जाहीं। केहि सुख लागि रहत तन माहीं॥
एहि तें कवन ब्यथा बलवाना। जो दुखु पाइ तजहिं तनु प्राना॥"

"जिऐ मीन बरु बारि बिहीना । मनि बिनु फनिक जिऐ दुख दीना ॥
कहउँ सुभाउ न छल मन माहीं । जीवनु मोर राम बिनु नाहीं ॥
समुझि देखु जियँ प्रिया प्रबीना । जीवनु राम दरस आधीना ॥"
"अजस होउ जग सुजस नसाऊ । नरक परौं बरु सुरपुर जाऊ ॥
सब दुख दुसह सहावहु मोहीं । लोचन ओट रामु जनि होहीं ॥"
"नृपहिं प्रानप्रिय तुम्ह रघुबीरा । सील सनेह न छाँड़िय भीरा ॥
सुकृत सुजस परलोक नसाऊ । तुम्हहिं जान बन कहिहि न काऊ ।"
"राज सुनाइ दीन्ह बनबासू । सुनि मन भयउ न हरषु हँरासू ॥
सो सुत बिछुरत गए न प्राना । को पापी ज्ग मोहिं समाना ॥
भयउ बिकल बरनत इतिहासा । राम-रहित धिग जीवन आसा ॥
सो तनु राखि करब मैं काहा । जेहि न प्रेम-पनु मोर निबाहा ॥
हा रघुनन्दन प्रान पिरीते । तुम्ह बिनु जिअत बहुत दिन बीते ।
हा जानकी लखन हा रघुबर । हा पितु हित चित चातक जलधर ॥
राम राम कहि राम कहि, राम राम कहि राम ।
तनु परिहरि रघुबर बिरहँ, राउ गएउ सुरधाम ॥"

इसके अतिरिक्त जिस समय विश्वामित्र अयोध्या जाकर दशरथजीसे अपनी यज्ञ-रक्षाके लिए राम-लक्ष्मणकी याचना करते हैं, उस समयका वर्णन कितना मार्मिक है :—

"सुनि राजा अति अप्रिय बानी । हृदय कंप मुख-दुति कुम्हलानी ॥
चौथेपन पायउँ सुत चारी । बिप्र बचन नहिं कहेउ बिचारी ॥
माँगहु भूमि धेनु धन कोसा । सर्वस देउँ आजु सहरोसा ॥
देह प्रान तें प्रिय कछु नाहीं । सोउ मुनि देउँ निमिष एक माहीं ॥
सब सुत मोहिं प्रिय प्रान की नाईं । राम देत नहिं बनइ गोसाईं ॥
"मेरे प्रान नाथ सुत दोऊ । तुम्ह मुनि पिता आन नहिं कोऊ ॥"

४—जनक—इनके भी चरित्र-चित्रणमें कविने सत्य-प्रतिज्ञाकी स्थापना की है । धनुष-यज्ञमें उपस्थित राजाओंके मध्य जब जनकजीकी

ओरसे घोषणा की गयी कि :—

"सोइ पुरारि कोदण्ड कठोरा। राज समाज आजु जोइ तोरा॥
त्रिभुवन जय समेत बैदेही। बिनहिं बिचारि बरइ हठि तेही॥"

और जब "देश-देशके भूपति नाना" जिसमें मनुष्य शरीरधारी देव, दनुज सभी सम्मिलित थे और प्रण सुनकर आये थे; जिसमेंसे एक भी ऐसा वीर न निकला कि :—

"कहहु काहि यहु लाभु न भावा। काहु न संकर-चाप चढ़ावा॥
रहउ चढ़ाउब तोरब भाई। तिल भरि भूमि न सके छुड़ाई॥
अतः "अब जनि कोउ माखै भट मानी। बीर-बिहीन मही मैं जानी॥"

तब भी अपनी प्रतिज्ञापर दृढ़तापूर्वक स्थिर रहते हुए जनकजी कहते हैं :—

"तजहु आस निज निज गृह जाहू। लिखा न बिधि बैदेहि बिबाहू॥
सुकृतु जाइ जौं पनु परिहरऊँ। कुअँरि कुँआरि रहउ का करऊँ॥"

बल्कि अपने बलपर आरूढ़ रहनेके कारण जानकीके अविवाहित रह जानेके भयसे जनकको पश्चात्ताप भी हो रहा है। यदि वे अपनी सत्य-प्रतिज्ञापर आरूढ़ रहनेके प्रणपर दृढ़ न रहते तो उन्हें पश्चात्ताप करनेका कोई कारण ही न था। इसलिए अत्यन्त दुःखित होकर वे पूरे राज-समाजमें अपना क्षोभ प्रकट कर रहे हैं :—

"जौं जनतेउँ बिनु भट भुबि भाई। तौ पनु करि होतेउँ न हँसाई॥"

महाराज जनककी सत्य-प्रतिज्ञा और राजाओंकी शक्तिहीनता देखकर सब दुखी हो जाते हैं :—

"जनक बचन सुनि सब नर-नारी। देखि जानकिहि भए दुखारी॥"

इसके अतिरिक्त जब रामके सौन्दर्यपर जनकपुरके सब नर-नारी मनमें विचार करते हैं, कि 'बरु साँवरो जानकी जोगू' तथा जानकी भी जिसपर धनुष तोड़े जानेके पूर्व ही अनुरक्त हैं, वे अपने समस्त सुकृत और भवानीकी आराधनाका जो फल माँगती हैं, उनमें भी जनककी

सत्य-प्रतिज्ञाका ध्यान रखती हैं; वे कहती हैं कि धनुषकी गुरुता कम करो—हे देवताओ ! 'करहु चाप गुरुता अति थोरी ।' एक बार वे बड़े प्रेमसे रामकी ओर देखकर पुलकित तो होती हैं, किन्तु पिताके प्रणका ध्यान होते ही क्षुभित हो जाती हैं। उन्हें विश्वास है कि पिताजी कभी भी अपना प्रण नहीं छोड़ सकते :—

"नीकें निरखि नयन भरि सोभा । पितु पनु सुमिरि बहुरि मन छोभा ॥
अहह तात दारुनि हठ ठानी । समुझत नहिं कछु लाभ न हानी ॥
सचिव सभय सिख देइ न कोई । बुध समाज बड़ अनुचित होई ॥
कहँ धनु कुलिसहु चाहि कठोरा । कहँ स्यामल मृदुगात किसोरा ॥
बिधि केहि भाँति धरौं उर धीरा । सिरस सुमन कन बेधिय हीरा ॥
सकल सभा कै मति भै भोरी । अब मोहि संभु चाप गति तोरी ॥
निज जड़ता लोगन्ह पर डारी । होहि हरुअ रघुपतिहि निहारी ॥"

जनककी सत्य-प्रतिज्ञा मात्र जानकी ही तक विदित नहीं है, बल्कि उनके सम्पर्कमें रहनेवाले पुरके लोगों तक और भुवन-विख्यात् भी है। पुर-लोग; जो रामको जानकीके योग्य सर्वश्रेष्ठ वर समझते हैं, वे भी विश्वास रखते हैं, कि जनक अपना प्रण नहीं छोड़ सकते; अतः राम जब धनुषके समीप जा रहे हैं, तब :—

'चलत राम सब पुर नर-नारी । पुलक पूरि तन भए सुखारी ॥
बंदि पितर सुर सुकृत सँभारे । जौं कछु पुन्य प्रभाउ हमारे ॥
तौ सिव-धनु मृनाल की नाईं । तोरेहु रामु गनेस गोसाईं ॥'

और धनुष टूटनेपर 'जनक लहेउ सुखु सोच बिहाई । पैरत थकें थाह जनु पाई ॥'

तथा—"जनक कीन्ह कौसिकहि प्रनामा । प्रभु प्रसाद धनु भंजेउ रामा ॥
मोहि कृतकृत्य कीन्ह दुहुँ भाईं । अब जो उचित सो कहिय गोसाईं ॥"

महात्मा जनककी सत्यवादिता पर विश्वास रखनेवाले महामुनि विश्वामित्रजीने कहा —

"कह मुनि सुनु नरनाथ प्रबीना । रहा बिबाहु चाप आधीना ॥
टूटत ही धनु भयउ बियाहू । सुर नर नाग बिदित सब काहू ॥"

५—कौशल्या—इनके चरित्र-चित्रणमें आदर्श माता और कर्तव्य-पालनकी व्यंजना की गई है। धर्म सङ्कटमें पड़ी हुई कौशल्याजीकी मनःस्थितिका चित्रण इस प्रकार है :—

"राखि न सकइ न कहि सक काहू । दुहूँ भाँति उर दारुन दाहू ॥"
"धरम सनेह उभय मति घेरी । भइ गति साँप छुछुन्दरि केरी ॥
राखउँ सुतहि करउँ अनुरोधू । धरमु जाइ अरु बन्धु-बिरोधू ॥
कहउँ जान बन तौ बड़ि हानी । संकट सोच बिबस भइ रानी ॥
बहुरि समुझि तिय धरमु सयानी । राम भरत, दोउ सुत सम जानी ॥
सरल सुभाउ राम महतारी । बोली बचन धीर धरि भारी ॥
तात जाउँ बलि कीन्हेहु नीका । पितु आयसु सब धरम क टीका ॥"

राज देन कहि दीन्ह बनु, मोहि न सो दुख लेसु ।
तुम्ह बिनु भरतहि भूपतिहिं, प्रजहिं प्रचंड कलेसु ॥
जौं केवल पितु आयसु ताता । तौ जनि जाहु जानि बड़ि माता ॥
जौ पितु मातु कहेउ बन जाना । तौ कानन सत अवध समाना ॥

दशरथ-मरणके समय किस धैर्य और साहससे कौशल्याजी काम करती हैं :—

"उर धरि धीर राम महतारी । बोली बचन समय अनुसारी ॥
नाथ समुझि मन करिअ बिचारू । राम बियोग पयोधि अपारू ॥
करनधार तुम्ह अवध जहाजू । चढ़ेउ सकल प्रिय पथिक समाजू ॥
धीरज धरिय त पाइअ पारू । नाहिंत बूड़िहि सब परिवारू ॥
जौं जियँ धरिअ बिनय पिय मोरी । राम लखनु सिय मिलहिं बहोरी ॥"

रामके वन चले जाने और दशरथ-मरणके पश्चात् भरतके ननिहालसे लौटने पर जिस भरतके कारण रामको लक्ष्मण और सीताके साथ वन

जाना पड़ा, उन्हींको पाकर कौशल्याजी रामके लौट आने जैसे सुखका अनुभव कर रही हैं :—

"सरल सुभाय माय हियँ लाए। अति हित मनहुँ राम फिरि आए॥"

कौशल्याजी पुनः एक आदर्श गृहिणीकी भाँति धैर्यपूर्वक भरतको सांत्वना प्रदान करती हैं :—

"माता भरतु गोद बैठारे। आँसु पोछि मृदु बचन उचारे॥"
अजहुँ बच्छ बलि धीरज धरहू। कुसमउ समुझि सोक परिहरहू॥
जनि मानहु हिय हानि गलानी। काल करम गति अघटित जानी॥
काहुहि दोसु देहु जनि ताता। भा मोहि सब बिधि बाम बिधाता॥"

अन्तमें भरतको समझाते हुए उनकी सफाई स्वयं देकर वे कहती हैं:—

"राम प्रानहु तें प्रान तुम्हारे। तुम्ह रघुपतिहि प्रानहु तें प्यारे॥
बिधु बिष चवै स्रवै हिमु आगी। होइ बारिचर बारि बिरागी॥
भएँ ग्यान बरु मिटै न मोहू। तुम्ह रामहि प्रतिकूल न होहू॥
मत तुम्हार यहु जो जग कहहीं। सो सपनेहुँ सुख सुगति न लहहीं॥"

६—सुमित्रा—इनके चरित्र-चित्रणसे धर्म प्रेमकी व्यंजना हुई है :—

"जौ पै सीय राम बनु जाहीं। अवध तुम्हार काज कछु नाहीं॥"

लक्ष्मणको समझाते हुए वे कहती हैं :—

"भूरिभाग भाजनु भयहु मोहि समेत बलि जाउँ।
जौं तुम्हरे मन छाँड़ि छलु कीन्ह राम पद ठाउँ॥
"पुत्रवती जुबती जग सोई। रघुपति भगतु जासु सुत होई॥"
"सकल सुकृत कर बड़ फल एहू। राम सीय पद सहज सनेहू॥"
'राग रोष इरषा मद मोहू। जनि सपनेहुँ इन्हके बस होहू॥'

७—सीता—इनके चरित्र-चित्रणसे कविने पातिव्रत-धर्मकी व्यंजना की है :—

"प्राननाथ करुना यतन सुन्दर सुखद सुजान।
तुम्ह बिनु रघुकुल-कुमुद बिधु सुरपुर नरक समान॥

मातु पिता भगिनी प्रिय भाई। प्रिय परिवारु सुहृद समुदाई॥
सासु ससुर गुर सजन सहाई। सुत सुन्दर सुसील सुखदाई॥
जहँ लगि नाथ नेह अरु नाते। पिय बिनु तियहिं तरनिहुँ तें ताते॥
तनु धनु धामु धरनि पुर राजू। पति बिहीन सबु सोक समाजू॥
भोग रोग सम भूषन भारू। जम जातना सरिस संसारू॥
प्राननाथ तुम्ह बिनु जग माहीं। मोकहुँ सुखद कतहुँ कछु नाहीं॥
जिय बिनु देह नदी बिनु बारी। तैसिय नाथ पुरुष बिनु नारी॥
"सिय मन राम चरन अनुरागा। घरु न सुगम बन बिषम न लागा॥"
"प्रभु करुनामय परम बिबेकी। तनु तजि रहति छाँह किमि छेंकी॥
"प्रभा जाइ कहँ भानु बिहाई। कहँ चन्द्रिका चन्दु तजि जाई॥"
"पितु बैभव बिलास मैं दीठा। नृपमनि मुकुट मिलत पदपीठा॥
सुख निधान अस पितु-गृह मोरे। पिय-बिहीन मन भाव न भोरे॥"

\+ . \+ \+

"बिनु रघुपति पद-पदुम परागा। मोहि केउ सपनेहुँ सुखद न लागा॥
अगम पंथ बनभूमि पहारा। करि केहरि सर सरित अपारा॥
कोल किरात कुरंग बिहंगा। मोहिं सब सुखद प्रानपति संगा॥"
"मैं सुकुमारि नाथ बन जोगू। तुम्हहिं उचित तप मोकहँ भोगू॥"
"बन दुख नाथ कहे बहुतेरे। भय बिषाद परिताप घनेरे॥
प्रभु बियोग लवलेस समाना। सब मिलि होहिं न कृपानिधाना॥"

८—राम—भगवान् रामके मर्यादापूर्ण जीवन और उनके द्वारा लोकशिक्षणके आदर्शका जो उदाहरण 'मानस'में मिलता है, वह हिन्दी-साहित्य ही नहीं, विश्व-साहित्यमें बेजोड़ है। उनके चरित्रका यथातथ्य वर्णन करनेवाले तुलसीदासजीने अपनी कलाका पूर्ण परिचय दे दिया है। क्योंकि "होते न जो तुलसी से महाकवि तो फिर राम से राम न होते" इनके चरित-चित्रणमें, गुरु-प्रेम, माता-पिता-प्रेम, भ्रातृ-प्रेम, सत्य-प्रतिज्ञा-प्रेम, स्त्री-प्रेम, प्रजा-प्रेम और सेवक-प्रेमकी व्यंजना की गयी है।

गुरु-प्रेम—"सादर अरघ देइ घर आने। सोरह भाँति पूजि सनमाने॥"
"सेवक सदन स्वामि आगमनू। मंगलमूल अमंगल दमनू॥"
सील सिन्धु सुनि गुर आगमनू। सिय समीप राखे रिपुदवनू॥
चले सबेग रामु तेहि काला। धीर धरमधुर दीनदयाला॥"
"गुर बशिष्ठ कुलपूज्य हमारे। इन्हकी कृपा दनुज रन मारे॥"

माता-पिता-प्रेम—

"सुनु जननी सोइ सुत बड़भागी। जो पितु मातु बचन अनुरागी॥
तनय मातु पितु तोषनिहारा। दुर्लभ जननि सकल संसारा॥"
"आपु सरिस कपि अनुज पठावउँ। पिता बचन मैं नगर न आवउँ॥"
"कहेउ सत्य सब सखा सुजाना। पिता दीन्ह मोहिं आयसु आना॥"

भ्रातृ-प्रेम—

"भरत प्रानप्रिय पावहिं राजू। बिधि सब बिधि मोहिं सनमुख आजू॥"
"सुमिरि मातु पितु परिजन भाई। भरत सनेह सील सेवकाई॥
कृपासिन्धु प्रभु होहिं दुखारी। धीरज धरहिं कुसमय बिचारी॥"
"जोगवहिं प्रभु सिय लखनहिं कैसे। पलक बिलोचन गोलक जैसे॥"
"जौं जनतेउँ बन बन्धु बिछोहू। पिता बचन मनतेउँ नहिं ओहू॥"
जइहौं अवध कवन मुँह लाई। नारि हेतु प्रिय भाइ गँवाई॥
सुत बित नारि भवन परिवारा। होहिं जाहिं जग बारहिं बारा॥
अस बिचारि जियँ जागहु ताता। मिलइ न जगत सहोदर भ्राता॥"

भ्रातृ-प्रेमसे भगवान् राम इतने आगे हैं कि पिताका वचन मानना जिनके लिए परम कर्त्तव्य था, वे उसे भी छोड़नेके लिए तैयार थे।

"जथा पंख बिनु खग अति दीना। मनि बिनु फनि करिबर कर हीना॥
अस मम जिवन बन्धु बिनु तोहीं। जौ जड़ दैव जिआवै मोहीं॥"

भक्त-विभीषणकी प्रार्थना करनेपर :—

"अब जन गृह पुनीत प्रभु कीजै। मज्जन करिय समर स्रम छीजै॥
सुनत बचन मृदु दीनदयाला। सजल भए द्वौ नयन बिसाला॥

तोर कोप एह मोर सब सत्य बचन सुनु भ्रात ।
भरत दसा सुमिरत मोहि निमिष कल्प सम जात ॥
तापस बेष गात कृस जपत निरंतर मोहिं ।
देखौं बेगि सो जतन करु सखा निहोरउँ तोहि ॥
बीते अवधि जाउँ जौं जिअत न पावउँ बीर ।
सुमिरत अनुज प्रीति प्रभु पुनि-पुनि पुलक शरीर ॥

पत्नी-प्रेम—"वर्षा गत निर्मल रितु आई । सुधि न तात सीता कै पाई ॥
"एक बार कैसेहुँ सुधि जानों । कालहु जीति निमिष महँ आनौं ॥
कतहुँ रहउ जौं जीवति होई । तात जतन करि आनउँ सोई ।।"
"तत्व प्रेम कर मम अरु तोरा । जानत प्रिया एक मन मोरा ॥
सो मन रहत सदा तोहि पाहीं । जानु प्रीतिरसु एतनेहि माहीं ।।"

प्रजाप्रेम-"जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी । सो नृप अवसि नरक अधिकारी॥"

सत्य प्रतिज्ञा-प्रेम—"सुनु सुग्रीव मैं मारिहउँ बालिहि एकहि बान ।
ब्रह्म रुद्र सरनागत गए न उबरिहि प्रान ।।"

ऐसा प्रण कर चुकने पर जब सुग्रीवने कहा—
"बालि परम हित जासु प्रसादा । मिलेहु राम तुम्ह समन बिषादा ॥"

अर्थात्—'बालि मेरा हितकारी है, जिसकी कृपासे शोकका नाश करनेवाले आप मुझे मिले ।' भाव यह कि आप अब बालिका वध न करें; ऐसी कृपा करें :—

"अब प्रभु कृपा करहु एहि भाँती । सब तजि भजन करौं दिन राती ।।"
इस पर—"सुनि बिराग संजुत कपि बानी । बोले बिहँसि रामु धनु पानी ॥
जो कछु कहेहु सत्य सब सोई । सखा बचन मम मृषा न होई ।।"

सेवक प्रेम—जो अपराध भगत कर करई । राम रोष पावक सो जरई ॥
लोकहुँ बेद बिदित इतिहासा । यह महिमा जानहिं दुरबासा ।।"
"राम सदा सेवक रुचि राखी । बेद पुरान साधु सुर साखी ।।"
"मम भुजबल आश्रित तेहि जानी । मारा चहसि अधम अभिमानी।।"

"सुनु सुरेस कपि भालु हमारे। परे समर निसिचरन्ह जे मारे॥
मम हित लागि तजे इन्ह प्राना। सकल जिआउ सुरेस सुजाना॥"
"ये सब सखा सुनहु मुनि मेरे। भए समर सागर कहँ बेरे॥
ममहित लागि जन्म इन्ह हारे। भरतहु तें मोहि अधिक पियारे॥"

वानर जो रामके सेवक हैं, उन्हें उनके समक्ष नीचे आसनपर रहना चाहिए था, किन्तु वे अपनेसे ऊँचे आसनोंपर (असम्यतापूर्वक व्यवहार होनेपर) रहनेसे बुरा नहीं मानते और यह सोचकर प्रेम करते हैं कि इनका मन तो हमारे कार्यमें ही लगा है :—

"प्रभु तरु तर कपि डार पर ते किए आपु समान।
तुलसी कहूँ न राम से साहिब सील - निधान॥

६—भरत—इनके चरित्र-चित्रणमें आदर्श मातृ-भक्ति, आदर्श मर्यादा-पालन और आदर्श-भक्ति-भावनाकी व्यंजना की गयी है। 'मानस' में भरत-चरित्रके वर्णनमें कविकी विशाल हृदयताकी जो व्यंजना परिलक्षित होती है, वह हिन्दी-साहित्यमें बेजोड़ है। भरतके हृदयकी विविध भावनाओंका कविने बड़ा ही हृदयग्राही वर्णन किया है। भरतके महान् चरितपर सभी मुग्ध हैं :—

धर्म-प्रेम—"समुझब कहब करब तुम्ह जोई। धरम सारु जग होइहि सोई॥"
"पुलक गात हियँ सिय रघुबीरू। जीह नाम जप लोचन नीरू॥
अगम सनेह भरत रघुवर को। जहँ न जाइ मनु बिधि हरिहर को॥
"रामचरन पंकज मन जासू। लुबुध मधुप इव तजइ न पासू॥"
"नव बिधु बिमल तात जस तोरा। रघुवर किंकर कुमुद चकोरा॥"
"अरथ न धरम न काम-रुचि गति न चहौं निरबान।
जनम जनम रति रामपद, यह बरदान न आन॥"
"सीताराम चरन रति मोरें। अनुदित बढ़उ अनुग्रह तोरें॥"

भरतजीने उत्तरोत्तर बढ़ते हुए राम-प्रेमकी अपने हृदयमें जाँच भी कर ली। हनुमानजीको, संजीवनी लेकर आते समय जब भरतने बिना

नोकके बाणसे मार कर गिरा दिया और वे मूर्च्छित हो गए, तब उनकी मूर्च्छा दूर करनेके लिए वे कहते हैं :—

भ्रातृ-प्रेम—"जो मोरे मन बच अरु काया । प्रीति राम पद कमल अमाया॥
तौ कपि होउ बिगत स्रम सूला । जौं मोपर रघुपति अनुकूला ॥
सुनत बचन उठ बैठ कपीसा । कहि जय जयति कोसलाधीसा ॥"
"बीतें अवधि रहहिं जो प्राना । अधम कवन जग मोहिं समाना ॥"
"जो न होत जग जनम भरत को । सकल धरमधुर धरनि धरत को ॥"
"सखा बचन सुनि बिटप निहारी । उमगे भरत बिलोचन बारी ॥
करत प्रनाम चले दोउ भाई । कहत प्रीति सारद सकुचाई ॥
हरषहिं निरखि राम पद अंका । मानहु पारस पायउ रंका ॥
रज सिर धरि अरु नयनन्हि लावहिं । रघुबर मिलन सरिस सुख पावहिं
देखि भरत गति अकथ अतीवा । प्रेम मगन मृग खग जड़ जीवा ॥"
"निरखि सिद्ध साधक अनुरागे । सहज सनेहु सराहन लागे ॥
होत न भूतल भाउ भरत को । अचर सचर चर अचर करत को ॥"
"जड़ चेतन मग जीव घनेरे । जिन्ह चितये प्रभु जिन्ह प्रभु हेरे ॥
ते सब भए परमपद जोगू । भरत दरस मेटेउ भव रोगू ॥"
तुम्ह तौ भरत मोर मत एहू । धरें देह जनु राम सनेहू ॥"

मर्यादा—"भरतहिं होइ न राजमद बिधि हरिहर पद पाइ ।
कबहुँ कि काँजी सीकरनि छीरसिन्धु बिनसाइ ॥

१०—लक्ष्मण—इनके चरित्र-चित्रणमें वीरता, भ्रातृ-प्रेम और भक्तिकी व्यंजना की गयी है । कविने इनके सम्बन्धमें बालकाण्डमें ही सूत्रात्मक ढंगसे कह दिया है :—

"रघुपति कीरति बिमल पताका । दण्ड समान भयउ जस जाका ॥"

यहाँ पर थोड़ी-सी चौपाइयाँ इनकी वीरता आदिपर दी जा रही हैं—

वीरता—"सुनहु भानुकुल पंकज भानू । कहउँ सुभाउ न कछु अभिमानू ॥
जौं तुम्हारि अनुसासन पावौं । कंदुक इव ब्रह्मांड उठावौं ॥

काँचे घट जिमि डारौं फोरी। सकउँ मेरु मूलक जिमि तोरी॥
तव प्रताप महिमा भगवाना। का बापुरो पिनाक पुराना॥
"कमल नाल जिमि चाप चढ़ावउँ। जोजन सत प्रमान लै धावौं॥
तोरौं छत्रक दण्ड जिमि तव प्रताप बलनाथ।
जो न करौं प्रभु पद सपथ कर न धरौं धनु माथ॥"
"आजु राम सेवक जस लेऊँ। भरतहिं समर सिखावन देऊँ॥
राम निरादर कर फल पाई। सोवहु समर सेज दोउ भाई॥
आइ बना भल सकल समाजू। प्रगट करउँ रिस पाछिल आजू॥
जिमि करि निकर दलइ मृगराजू। लेइ लपेटि लवा जिमि बाजू॥
तैसेहि भरतहिं सेन समेता। सानुज निदरि निपातउँ खेता॥
जौं सहाय कर संकर आई। तौ मारउँ रन राम दोहाई॥"
"धनुष चढ़ाइ कहा तब जारि करौं पुर छार।"
"जौं तेहि, आजु बधे बिनु आवउँ। तौ रघुपति सेवक न कहावउँ॥
जौं सत संकर करहिं सहाई। तदपि हतौं रघुबीर दोहाई॥"
भ्रातृ-प्रेम—"गुरु पितु मातु न जानउँ काहू। कहउँ सुभाव नाथ पतिआहू॥"
भक्ति-भावना—"सखा परम परमारथ एहू। मन क्रम बचन राम पद नेहू॥"
"मोहि समुझाइ कहहु सोइ देवा। सब तजि करौं चरन रज सेवा॥
कहहु ज्ञान विराग अरु माया। कहहु सो भगति करहु जेहि दाया॥
ईश्वर जीव भेद प्रभु सकल कहौ समुझाइ।
जातें होइ चरन रति सोक मोह भ्रम जाइ॥"

११—हनुमान—इनके चरित्र-चित्रणमें स्वामि-भक्ति, भक्ति-भावना और वीरताकी व्यंजना हुई है :—

स्वामिभक्ति—"राम काजु करि फिरि मैं आवौं। सीता कइ सुधि प्रभुहिं सुनावौं॥
"सुनु कपि तोहि समान उपकारी। नहिं कोउ सुर-नर मुनि तनु धारी॥
प्रतिउपकार करौं का तोरा। सनमुख होइ न सकत मन मोरा॥
सुनु सुत तोहि उरिन मैं नाहीं। देखेउँ करि विचारि मन माहीं॥"

"तब सुग्रीव चरन गहि नाना। भाँति बिनय कीन्हें हनुमाना।।
दिन दस करि रघुपति पद सेवा। पुनि तव चरन देखिहउँ देवा॥
पुन्य पुंज तुम्ह पवनकुमारा। सेवहु जाइ कृपा आगारा।।"

भक्ति-भावना'—"कह हनुमन्त सुनहु प्रभु ससि तुम्हार प्रिय दास।
तव मूरति बिधु उर बसति सोइ स्यामता अभास॥"

"कह हनुमन्त बिपति प्रभु सोई। जब तव सुमिरन भजन न होई।।"

"नाथ भगति अति सुखदायिनी। देहु कृपा करि अनपायिनी।।"

वीरता—"सिंहनाद करि बारहि बारा। लीलहिं नाँघउँ जलनिधि खारा।।
सहित सहाय रावनहि मारी। आनौं इहाँ त्रिकूट उपारी।।"
"कनक भूधराकार सरीरा। समर भयंकर अति बल बीरा।।"
"राम चरन सरसिज उर राखी। चला प्रभंजन सुत बल भाखी।।"

१२—रावण—इसके चरित्र-चित्रणमें वीरोल्लास-गर्वोक्ति और दृढ़ता-की व्यंजना मिलती है।

वीरोल्लास—गर्वोक्तिः—

"जौं आवइ मर्कट कटकाई। जिअहि बिचारे निसिचर खाई।।
कंपहिं लोकप जाकी त्रासा। तासु नारि सभीत बड़ि हासा।।"
"बिहँसि दसानन पूछी बाता। कहसि न सुक आपनि कुसलाता।।
पुनि कहु खबरि बिभीषन केरी। जाहि मृत्यु आई अति नेरी।।
करत राज लंका सठ त्यागी। होइहि जव कर कीट अभागी।।
पुनि कहु भालु कीस कटकाई। कठिन काल प्रेरित चलि आई।।
जिनके जीवन कर रखवारा। भयउ मृदुल चित सिंधु बिचारा।।
कहु तपसिन्ह कै बात बहोरी। जिन्हके हृदयँ त्रास अति मोरी।।
की भइ भेंट कि फिरि गए स्रवन सुजस सुनि मोर।
कहसि न रिपु दल तेज बल बहुत चकित चित तोर।।"
"जनि जल्पसि जड़ जंतु कपि सठ बिलोकु मम बाहु।
लोकपाल बल बिपुल ससि ग्रसन हेतु सब राहु।।

पुनि नभ सर मम कर निकर कमलन्हि पर करि बास ।
सोभत भयउ मराल इव संभु सहित कैलास ॥
तुम्हरे कटक माँझ सुनु अंगद । मोसन भिरिहि कवन जोधा बद ॥
तव प्रभु नारि बिरहँ बलहीना । अनुज तासु दुख दुखी मलीना ॥
तुम्ह सुग्रीव कूलद्रुम दोऊ । अनुज हमार भीरु अति सोऊ ॥
जामवन्त मंत्री अति बूढ़ा । सो कि होइ अब समरारूढ़ा ॥
सिल्पि कर्म जानहिं नल-नीला । है कपि एक महा बलसीला ॥
आवा प्रथम नगर जेहि जारा । सुनत बचन कह बालिकुमारा ॥"
दृढ़ता—"सुभट बोलाइ दसानन बोला । रन सन्मुख जाकर मन डोला ॥
सो अबहीं बरु जाउ पराई । संजुग बिमुख भएँ न भलाई ॥
निज भुज बल मैं बयरु बढ़ावा । देइहउँ उतरु जो रिपु चढ़ि आवा॥"

इस प्रकार और भी अनेक पात्र हैं, जिनके चरित्र-चित्रणमें विभिन्न गुणोंके साथ सामाजिक आदर्श मर्यादाका भी ध्यान रखा गया है, ये आदर्श स्वाभाविक और मनोवैज्ञानिक ढंगसे रचनामें अभिव्यंजित हुए हैं। अधिक न कहकर हम यहीं कह देना पर्याप्त समझते हैं कि कला और उपदेशका इस जैसा समन्वय और किसी रचनामें नहीं प्राप्त होता। गोस्वामीजीकी इस रचनामें जो अनुपम काव्य-शक्ति परिलक्षित होती है, उसके कारण समाजके प्रत्येक स्तरके लोगोंमें उसका बड़ा सम्मान है।

रस-निरूपण—'मानस'में सभी रसोंका उद्रेक बड़ी सफलतासे हुआ है। गोस्वामीजीकी इस रचनामें रसोंकी अभिव्यंजना स्वाभाविक ढङ्गसे कथा-प्रवाहके बीच हुई है। नीचे कुछ उदाहरण दिए जा रहे हैं :—

(१) शृङ्गार-रस—(संयोग)—
"प्रभुहि चितै पुनि चितै महि राजत लोचन लोल ।
खेलत मनसिज मीन जुग जनु बिधु मंडल डोल ॥"
(वियोग)—"राम वियोग कहा सुनु सीता । मो कहँ सब भए सकल बिपरीता ॥
ये दित रहे करत तेइ पीरा । उरग स्वास सम त्रिविध समीरा ॥"

"देखियत प्रगट गगन अंगारा। अवनि न आवत एकउ तारा॥
पावकमय ससि स्रवत न आगी। मानहुँ मोहि जानि हतभागी॥"

(२) करुण-रस—

"सो तनु राखि करब मैं काहा। जेहि न प्रेम पन मोर निबाहा॥
हा रघुनन्दन प्रान पिरीते। तुम बिन जियत बहुत दिन बीते॥"

(३) वीर रस—"तोरौं छत्रक दंड जिमि, तव प्रताप बल नाथ।
जौं न करौं प्रभु पद सपथ, कर न धरौं धनु माथ॥"

(४) हास्य-रस

"करहिं कूट नारदहिं सुनाई। नीक दीन्ह हरि सुन्दरताई॥
रीझिहि राजकुँवरि छवि देखी। इनहिं बरिहि हरि जानि बिसेखी॥
मुनिहि मोह मन हाथ पराएँ। हँसहिं संभुगन अति सचु पाएँ॥"

(५) रौद्र रस—

"अति रिस बोले बचन कठोरा। कहु जड़ जनक धनुष केइ तोरा॥
बेगि देखाउ मूढ़ न त आजू। उलटौं महि जहँ लगि तव राजू॥"

(६) भयानक रस—

"मज्जहिं भूत पिसाच बेताला। प्रमथ महा झोटिंग कराला॥"

(७) वीभत्स-रस—

"काक कंक लेइ भुजा उड़ाहीं। एक तें छीनि एक लेइ खाहीं॥"

(८) अद्‌भुत-रस—"देखरावा मातहिं निज, अद्‌भुत रूप अखंड।
रोम रोम प्रति लागे, कोटि कोटि ब्रह्मण्ड॥"

(९) शान्त-रस—"*लसत मञ्जु मुनि मंडली, मध्य सीय रघुचंदु।
ग्यान सभा जनु तनु धरे, भगति सच्चिदानंदु॥*"

गोस्वामीजीने सचारीभावोंकी यथास्थान जो सृष्टि की है, उसका भी कुछ संकेत इस स्थलपर दे देना *प्रसंगानुकूल ही होगा।*

ग्लानि—'एक बार भूपति मन माहीं। भइ गलानि मोरे सुत नाहीं॥'

निर्वेद—'अब प्रभु कृपा करहु एहि भाँती। सब तजि भजन करौं दिनराती॥'

तनु परिहरि रघुबर बिरह, राउ गएउ सुरधाम ॥'

आवेग—'उठे राम सुनि प्रेम अधीरा। कहुँ पट कहुँ निषंग धनु तीरा ॥'

अपस्मार—'अस कहि मुरछि परा महि राऊ। राम लखन सिय आनि देखाऊ॥'

त्रास—'मा निरास उपजी मन त्रासा। जथा चक्रभय रिषि दुरबासा ॥'

जड़ता—'मुनि मग माँझ अचल होइ कैसा। पुलक सरीर पनस फल जैसा॥'

उन्माद—'लछिमन समुझाए बहु भाँती। पूछत चले लता तरु पाँती ॥'

वितर्क—'लंका निसिचर निकर निवासा। इहाँ कहाँ सज्जन कर बासा ॥'

अलंकार - योजना और गुण—गोस्वामीजीकी भाव-विश्लेषण-क्षमता इतनी अधिक मनोवैज्ञानिक है कि उसकी भाव तीव्रता अथवा सौंदर्य-की अभिव्यक्तिके लिए अलंकारोंको हठपूर्वक लानेकी आवश्यकता नहीं रह जाती। आचार्य शुक्लजीका भी कथन है कि "उनकी साहित्य-मर्मज्ञता, भावुकता और गम्भीरताके सम्बन्धमें इतना जान लेना और भी आवश्यक है कि उन्होंने रचना-नैपुण्यका भद्दा प्रदर्शन नहीं किया है और न शब्द आदिके खेलवाड़में वे फँसे हैं। अलंकारोंकी योजना उन्होंने ऐसे ढंगसे की है वे सर्वत्र भावों या तथ्योंकी व्यंजनाको प्रस्फुटित करते हुए पाए जाते हैं, अपनी अलग चमक-दमक दिखाते हुए नहीं।...... गोस्वामीजीकी वाक्य-रचना अत्यन्त प्रौढ़ और सुव्यवस्थित है; एक भी शब्द फालतू नहीं।...हम निःसंकोच कह सकते हैं कि यह एक कवि ही हिन्दीको एक प्रौढ़ साहित्यिक-भाषा सिद्ध करनेके लिए काफी है।"*

तुलसीदासका इस रचनामें भावोंकी अभिव्यंजना इस प्रकार हुई है कि सरल स्वाभाविक एवं विदग्धतापूर्ण वर्णनके अन्तर्गत उनकी प्रतिमा और शैलीके कारण अलंकारोंका स्वतः *यथास्थान वर्णन मिलता है। यही* कारण है कि सभी प्रकारके अलंकारोंका प्रयोग इस रचनामें हुआ है।

रसोंकी अभिव्यक्ति गुणोंके सहारे 'मानस' में अनेक स्थलोंपर हुई

---

* 'हिन्दी-साहित्यका इतिहास' परिवर्द्धित संस्करण पृ० १४५-१४६।

है। शृङ्गार-रसके अन्तर्गत माधुर्य-गुण, वीर और रौद्र-रसके अन्तर्गत ओज-गुण और अद्भुत शान्त एवं अन्य कोमल-रसोंके मध्य प्रसाद-गुण बड़ी निपुणताके साथ प्रयुक्त हैं, यहाँ थोड़ेसे उदाहरण प्रस्तुत किए जा रहे हैं :—

माधुर्य गुण–

"विमल सलिल सरसिज बहु रंगा। जल खग कूजत गुंजत भृङ्गा॥"

"कंकन किंकिनि नूपुर धुनि सुनि। कहत लखन सन राम हृदय गुनि॥
मानहु मदन दुंदुभी दीन्हीं। मनसा विस्व विजय कहँ कीन्हीं॥"

ओज गुण—"रघुवीर बान प्रचंड खंडहिं भटन्ह के उर भुज सिरा॥
जहँ तहँ परहिं उठि लरहिं धरु धरु धरु करहिं भयकर गिरा॥"

"भट कटत तन सत खंड। पुनि उठत करि पाखंड॥
नभ उडत बहु भुज मुंड। बिनु मौलि धावत रुंड॥"

प्रसाद गुण-"राम सनेह मगन सब जाने। कहि प्रिय बचन सकल सनमाने॥
प्रभुहिं जोहारि बहोरि बहोरी। बचन बिनीत कहहिं कर जोरी॥
अब हम नाथ सनाथ सब, भए देखि प्रभु पाय।
भाग हमारे आगमनु, राउर कोसलराय॥"

गुणोंके अनुसार कहीं-कहीं वर्णोंकी समता भी है। इस कार्यमें दो विशेषताएँ हैं। प्रथम तो भाषामें प्रवाह और दूसरी अर्थ में चमत्कार-वर्द्धन। यह कार्य असाधारण प्रतिभा सम्पन्न कविका ही हो सकता है। उदाहरणके लिए नीचे एक प्रसंग प्रस्तुत किया जाता है :—

"जौं पटतरिय तीय सम सीया। जग अस जुबति कहाँ कमनीया॥
गिरा मुखर तनु अरध भवानी। रति अति दुखित अतनु पति जानी॥"

इस प्रवाहके लिए लघु वर्णोंकी आवृत्ति कितनी सरल एवं उपयुक्त है। वाल्मीकि. सौन्दर्यकी तुलनामें कवि सरस्वती, पार्वती एवं कामदेवकी पत्नी रतिकी सुन्दरता निष्प्रभ बतलाना चाहता है। इस चौपाईमें लघु-

की अभिव्यंजनाके लिए कवि लघु वर्णोंका ही सफल प्रयोग करता है। उपर्युक्त तीनोंसे सीताकी सुन्दरता श्रेष्ठ है, अतः सीताके लिए गुरु वर्णोंका ही प्रयोग है। देखिये :—

सीता—तीय सम सीया (दूसरे ही पदमें स्त्रियोंकी हीनता प्रकट करनेके लिए तीय शब्द 'जुवति'के लघु अक्षरोंमें बदल दिया गया है।

गिरा—इनकी हीनता प्रकट करनेके लिए 'मुखर' शब्दसे दोष कहा गया है, जो (मु' ख' र') तीनों लघु अक्षर हैं।

भवानी—इनकी हीनता प्रकट करनेके लिए 'तनु अरध' शब्दसे दोष कहा गया है, जो ('त', 'नु' 'अ', 'र', और 'ध') सभी लघु अक्षर हैं।

इसी प्रकार **रति**—इनकी हीनता 'अति दुखित अतनु पति जानी' शब्दोंसे दोष कहा गया है जो ('अ', 'ति', 'दु', 'ख', 'त', 'अ', 'त', 'नु', 'प' और 'ति',) सभी अक्षर लघु हैं। इस प्रकार शब्द-शिल्पी तुलसीदासकी महनीयता 'मानस'में यत्र-तत्र देखी जा सकती है।

'मानस'की रचना शैली—भाषा पद्यके स्वरूपमें तुलसीदासके समय पाँच शैलियाँ प्रचलित थीं—१—वीर-गाथा कालकी छप्पय-पद्धति, २—विद्यापति और सूरदासकी गीत-पद्धति, ३—गंग आदिकी कवित्त-सवैया-पद्धति, ४—कबीरदासकी नीति-संबंधी बानीकी दोहा-पद्धति, जो अपभ्रंश कालसे ही चली आ रही थी और ५—ईश्वरदासकी दोहे-चौपाईवाली प्रबन्ध-पद्धति। तुलसीदासके पूर्व (जो चारण-कालके वीर-गाथात्मक-ग्रन्थ और प्रेम-काव्य एवं सन्त-काव्यके ग्रन्थ थे, वे मुसलमानी प्रभावसे प्रभावित ग्रन्थ थे) चारण-कालमें काव्यकी भाषा स्थिर नहीं हो पायी थी; अतः उसमें साहित्यिक सौन्दर्यका अभाव था, इसके अतिरिक्त प्रेम-काव्यकी दोहे-चौपाईकी प्रबन्धात्मक रचनामें शैलीका सौन्दर्य था, किन्तु उसमें भावोंके उत्कृष्ट प्रकाशनका अभाव तो था ही। इसी प्रकार सन्त-साहित्यमें भी एक मात्र एकेश्वरवाद और गुरुकी बन्दना मात्र ही प्रमुख होकर सामने आई था, जिसमें धर्म-प्रचारकी भावना प्रबल थी

और साहित्य-निर्माणकी भावना नहींके बराबर थी। इसके अतिरिक्त कृष्ण-काव्यके आदर्शोंका निर्माण हो रहा था, उसमें अभी प्रौढ़ता नहीं आ पाई थी। उपर्युक्त विवरणोंसे स्पष्ट है कि गोस्वामीजीके समयमें हिन्दी-साहित्यमें उत्कृष्टता न आ पायी थी। उसे उत्कृष्ट बनानेका कार्य तो इन्हीं महाकविके द्वारा हुआ। आचार्य शुक्लजीके शब्दोंमें 'तुलसीदासजीके रचना-विधानकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वे अपनी सर्वतोमुखी प्रतिभाके बलसे सबके सौन्दर्यकी पराकाष्ठा अपनी दिव्य वाणीको दिखाकर साहित्यमें प्रथम पदके अधिकारी हुए। हिन्दी-कविताके प्रेमीमात्र जानते हैं कि उनका ब्रज और अवधी दोनों भाषाओंपर समान अधिकार था। ब्रज-भाषाका जो माधुर्य हम सूरसागरमें पाते हैं, वही माधुर्य और भी संस्कृतरूपमें हम गीतावली और कृष्णगीतावलीमें पाते हैं। ठेठ अवधीकी जो मिठास हमें जायसीके 'पद्मावत'में मिलती है, वही जानकी-मंगल, पार्वती-मंगल, बरवै रामायण और रामलला नहछूमें हम पाते हैं। यह सूचित करनेकी आवश्यकता नहीं कि न तो सूरका अवधी पर अधिकार था और न जायसी का ब्रज भाषापर।*

६—धार्मिक दृष्टिकोण—गोस्वामी तुलसीदासने 'मानस'में समाजके आदर्शका विस्तृत विवेचन करते हुए धार्मिक दृष्टिकोणसे उन्होंने अपनी एक विशिष्ट धार्मिक मर्यादाकी स्थापनाके लिए तात्कालीन प्रचलित अनेक मतों एवं पंथोंसे बड़ी उदारतापूर्वक समझौता किया। गोस्वामीजीके समयमें जनता विविध मतोंमें विभक्त हो चुकी थी, जिसमें शैव, शाक्त और पुष्टिमार्गका वैष्णवमतसे बड़ी प्रतिद्वन्दिता थी। गोस्वामीजीने इनसे विरोध करना अच्छा न समझा, बल्कि उदारतापूर्वक उसे अपने ही आदर्शमें मिला लिया। फल यह हुआ कि थोड़ा-थोड़ा बच सब मतों और पंथोंका

* आचार्य शुक्ल प्रणीत 'हिन्दी-साहित्यका इतिहास' परिवर्द्धित संस्करण पृ० १३४ देखिए।

इन्हें मिला, जिससे इनकी शक्ति और भी बढ गयी। पारस्परिक विरोध सर्वदाके लिए नष्ट हो गया। मुस्लिम धर्मकी समकक्षतामें इस संगठनसे बड़ी शक्ति प्राप्त हुई। विभिन्न मतमतान्तरोंमें फँसी जनता राम-भक्तिकी ओर मुड़ी और राम-भक्तिके प्रचारके लिए पृष्ठभूमि बन गयी। शैव, शाक्त और पुष्टिमार्गको जिस प्रकार गोस्वामीजीने अपने आदर्शमें सम्मिलित किया, उसका यहाँ थोड़ा वर्णन करना अनुचित न होगा।

शैवमत—भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके मुँहसे :—

"करिहौं इहाँ संभु थापना। मोरे हृदय परम कलपना।"
"शिवद्रोही मम भगत कहावा। सो नर सपनेहुँ मोहि न पावा।"
"संकर बिमुख भगति चह मोरी। सो नारकी मूढ मति थोरी॥"

"संकर प्रिय मम द्रोही, सिव द्रोही मम दास।
ते नर करहिं कल्प भरि, घोर नरक महँ बास॥"
"औरउ एक गुपुत मत सबहिं कहौं कर जोरि।
संकर भजन बिना नर भगति न पावइ मोरि॥"

शाक्तमत—वैदेही जानकीके मुँहसे :—

"नहिं तव आदि मध्य अवसाना। अमित प्रभाउ बेद नहिं जाना॥
भव भव बिभव पराभव कारनि। बिस्व बिमोहनि स्वबस बिहारिनि॥"

पुष्टिमार्गीमत—

"अब करि कृपा देहु बर एहू। निज पद सरसिज सहज सनेहू।"
"सोइ जानइ जेहि देउ जनाई। जानत तुम्हहिं तुम्हहिं होइ जाई॥
तुम्हरिहिं कृपा तुम्हहिं रघुनन्दन। जानहिं भगत भगत उर चन्दन॥"
"राम-भगति मन उर बस जाके। दुख लवलेस न सपनेहुँ ताके॥"
"चतुर-सिरोमनि तेइ जग माहीं। जे मनि लागि सुजतन कराहीं॥
सो मनि जदपि प्रगट जग अहई। राम कृपा बिनु नहिं कोउ लहई॥"

इस प्रकार भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके व्यक्तित्वमें शैव, शाक्त और पुष्टि-मार्गके आदर्शको समाहित कर तुलसीदासने वैष्णव-धर्मको पुष्ट कर

दिया है। तुलसीदास स्मार्त वैष्णव थे, जिनके सामने ज्ञानका उतना महत्व नहीं था, जितना भक्तिका। ज्ञानकी अपेक्षा गोस्वामीजीने भक्तिको विशेष महत्व तो दिया; किन्तु ज्ञान और भक्तिमें कोई विशेष अन्तर नहीं माना है :—

"ग्यानिहिं भगतिहिं नहिं कछु भेदा। उभय हरहिं भव-संभव खेदा॥

यदि कुछ अन्तर है भी तो :—

'ग्यान बिराग जोग बिज्ञाना। ए सब पुरुष सुनहु हरिजाना॥
पुरुष प्रताप प्रबल सब भाँती। अबला अबल सहज जड़ जाती॥
पुरुष त्याग सक नारिहिं जो बिरक्त मतिधीर।
न तु कामी बिषया बस बिमुख जो पद रघुबीर॥"

"मोह न नारि नारि के रूपा। पन्नगारि यह रीति अनूपा॥
माया भगति सुनहु तुम दोऊ। नारि बर्ग जानइ सब कोऊ॥
पुनि रघुबीरहिं भगति पियारी। माया खलु नर्तकी बिचारी॥
भगतिहिं सानुकूल रघुराया। तातें तेहि डरपति अति माया॥"

इसलिए भक्तिपर मायाका कोई प्रभाव नहीं हो सकता। ज्ञानकी साधना बड़ी कठिन होती है। इस कठिन साधनामें जो सफल होते हैं, वे मुक्ति पा जाते हैं, किन्तु सभी उसे प्राप्त भी नहीं कर सकते, क्योंकि यह साधना बड़ी कष्टसाध्य है—

"ग्यान क पंथ कृपान कै धारा। परत खगेस होइ नहिं बारा॥"

गोस्वामीजीने इस प्रकार भक्ति और ज्ञानका विरोध दूरकर धार्मिक प्रवृत्तियोंमें एकताकी स्थापना कर दी। ज्ञान मान्य तो है, किन्तु भक्तिकी उपेक्षा करके नहीं, ठीक इसी प्रकार भक्तिका विरोध भी ज्ञानसे नहीं। इसका संकेत अरण्यकाण्डमें देखिए :—

'सुनि मुनि तोहि कहौं सहरोसा। भजहिं जे मोहि तजि सकल भरोसा॥
करौं सदा तिन्हकै रखवारी। जिमि बालक राखइ महतारी॥
गह सिसु बच्छ अनल अहि धाई। तहँ राखइ जननी अरगाई॥

प्रौढ़ भए तेहि सुत पर माता। प्रीति करइ नहि पाछिल बाता॥
मोरे प्रौढ़ तनय सम ग्यानी। बालक सुत सम दास अमानी॥
जनहि मोर बल निज बल ताही। दुहुँ कहँ काम क्रोध रिपु आही॥
यह बिचारि पंडित मोहि भजहीं। पाएहु ग्यान भगति नहिं तजहीं॥"

अर्थात् ज्ञान प्राप्त होनेपर भी भक्तिकी उपेक्षा नहीं होनी चाहिए, भगवान् श्रीरामचन्द्रजीने इसका निर्देश किया है :—

"धर्म तें बिरति जोग तें ग्याना। ग्यान मोच्छप्रद बेद बखाना॥
जातें बेगि द्रवौं मैं भाई। सो मम भगति भगत सुखदाई॥
सो सुतंत्र अवलम्ब न आना। तेहि आधीन ग्यान बिग्याना॥
भगति तात अनुपम सुखमूला। मिलै जो संत होहिं अनुकूला॥"

अर्थात् ज्ञान-विज्ञान भी भक्तिके अन्तर्गत है, क्योंकि भक्तिसे ही ज्ञानकी सृष्टि होती है तथा ज्ञान प्राप्त होनेपर भी भक्तिकी स्थिति रहती है; दोनों एक दूसरेपर अवलंबित हैं, दोनोंमें विरोध नहीं है :—

"जे असि भगति जानि परिहरहीं। केवल ग्यान हेतु स्रम करहीं॥
ते जड़ कामधेनु गृह त्यागी। खोजत आक फिरहिं पय लागी॥"

भक्तिके अनेक साधन गोस्वामीजीने गिनाए हैं, जो सभी प्रायः वर्णाश्रमधर्मके दृष्टिकोणसे हैं। देखिए भक्तिके साधनोंका उल्लेख कविके ही शब्दोंमें:—

"भगति कि साधन कहौं बखानी। सुगम पन्थ मोहि पावहिं प्रानी॥
प्रथमहि बिप्र-चरन अति प्रीती। निज निज कर्म निरत श्रुति रीती॥
एहि कर फल पुनि बिषय बिरागा। तब मम धर्म उपज अनुरागा॥
श्रवनादिक नव भक्ति दृढ़ाहीं। मम लीला रति अति मन माहीं॥"
"संतचरन पंकज अति प्रेमा। मन क्रम बचन भजन दृढ़ नेमा॥
गुरु पितु मातु बंधु पति देवा। सब मोहिं कहँ जानै दृढ़ सेवा॥
मम गुन गावत पुलक सरीरा। गदगद गिरा नयन बह नीरा॥
काम आदि मद दंभ न जाकें। तात निरंतर बस मैं ताकें॥

बचन कर्म मन मोरि गति भजनु करहिं निःकाम।
तिन्हके हृदय कमल महुँ करउँ सदा बिश्राम॥

भक्तिकी सर्वोच्च साधना ही तुलसीदासजीके धर्मकी मर्यादा है। इन्होंने अपने धर्मकी जो रूप-रेखा निश्चित की थी, वह अत्यन्त सरल साधनोंके द्वारा ही निर्मित थी, जिसमें दोष आ जानेका भय था। अतः कबीर-पंथियोंकी भाँति उनकी भक्तिके अन्तर्गत बाह्याडम्बर और छल-कपट न आ जाय, इस दोषसे बचते रहनेके लिए ही उन्होंने सन्तोंके लक्षण भी बता दिए :—

"सुनु मुनि संतन के गुन कहऊँ। जिन्हतें मैं उन्हके बस रहऊँ॥
षट बिकार जित अनघ अकामा। अचल अकिंचन सुचि सुख धामा॥
अमित बोध अनीह मित भोगी। सत्य सार कबि कोबिद जोगी॥
सावधान मानद मद हीना। धीर धर्म गति परम प्रबीना॥
गुनागार संसार दुख रहित बिगत संदेह।
तजि मम चरन सरोज प्रिय तिन्ह कहुँ देह न गेह॥
निज गुन स्रवन सुनत सकुचाहीं। पर गुन सुनत अधिक हरषाहीं॥
सम सीतल नहिं त्यागहिं नीती। सरल सुभाउ सबहिं सन प्रीती॥
जप तप ब्रत दम संजम नेमा। गुरु गोविन्द बिप्र-पद प्रेमा॥
श्रद्धा छमा मयत्री दाया। मुदिता मम पद प्रीति अमाया॥
बिरति बिबेक बिनय बिग्याना। बोध जथारथ बेद पुराना॥
दंभ मान मद करहिं न काऊ। भूलि न देहिं कुमारग पाऊ॥
गावहिं सुनहिं सदा मम लीला। हेतु रहित परहित रत सीला॥

इसके अतिरिक्त पाप और धर्मकी पहचानके लिए तुलसीदासजीने निम्न प्रकारसे व्याख्या करदी है :—

'नहिं असत्य सम पातक पुंजा। गिरि सम होहिं कि कोटिक गुंजा॥'
'सत्यमूल सब सुकृत सुहाए। बेद पुरान बिदित मनु गाए॥'
'धर्म कि दया सरिस हरिजाना। अघ कि पिसुनता सम किछु आना॥'

'परहित सरिस धर्म नहिं भाई । पर पीड़ा सम नहिं अधमाई ॥'
परम धर्म श्रुति बिदित अहिंसा । पर-निन्दा सम अघ न गरीसा ॥

१०—'मानस'में भाव-पक्ष और शब्द-शिल्प—'मानस'में भावाभिव्यंजनाका जो समाहार मिलता है वह ग्रन्थके महत्वको बढ़ाता है। तुलसीदासने मानव-हृदयकी सृष्टि-व्यापिनी सूक्ष्मसे सूक्ष्म प्रवृत्तियोंका 'मानस'में जिस कुशलतासे विश्लेषण किया है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। मानवकी विभिन्न परिस्थितियोंमें जितनी मनोदशाएँ संभव हो सकती हैं, अपने स्वाभाविक कवित्व-शक्तिके साथ उनका प्रकाशन कितना सफल है यहाँ उसका थोड़ा-सा विवरण उपस्थित करना आवश्यक है :—

१—"गरजहिं गज घंटा धुनि घोरा । रथ रव हिंस बाजि चहुँ ओरा ॥"
निदरि घनहिं घुर्मरहिं निसाना । निज पराइ कछु सुनिय न काना ॥"

'गज-गरजहिं', 'घण्टा धुनि घोरा', 'रथ रव', 'बाजि हिंस' और 'निदरि घनहिं, घुर्मरहिं निसाना' आदि शब्दोंके द्वारा भावोंके अनुरूप ही शब्दोंके प्रयोग कितने उत्कृष्ट हैं।

२—"राज कुँवर तेहि अवसर आए । मनहुँ मनोहरता तन छाए ॥"
वाले प्रसंगमें 'जिन्हकें रही भावना जैसी । प्रभु मूरति देखी तिन्ह तैसी ॥'
में—"देखहिं रूप महा रनधीरा । मनहुँ बीर रस धरें सरीरा ॥
डरे कुटिल नृप प्रभुहिं निहारी । मनहुँ भयानक मूरति भारी ॥
रहे असुर छल छोनिप बेषा । तिन्ह प्रभु प्रगट काल सम देखा ॥
पुरबासिन्ह देखे दोउ भाई । नर भूषन लोचन सुखदाई ॥
नारि बिलोकहिं हरषि हियँ निज निज रुचि अनुरूप ।
जनु सोहत सिंगार धरि मूरति परम अनूप ॥
बिदुषन्ह प्रभु बिराटमय दीसा । बहु मुख कर पग लोचन सीसा ॥
जनक जाति अवलोकहिं कैसे । सजन सगे प्रिय लागहिं जैसे ॥
सहित बिदेह बिलोकहिं रानी । सिसुसम प्रीति न जाति बखानी ॥
जोगिन्ह परमतत्वमय भासा । सांत सुद्ध सम सहज प्रकासा ॥

हरि-भगतन्ह देखे दोउ भ्राता। इष्टदेव इव सब सुखदाता॥
रामहिं चितव भायँ जेहि सीया। सो सनेहु सुख नहिं कथनीया॥
उर अनुभवति न कहि सक सोऊ। कवन प्रकार कहै कवि कोऊ॥"

उपर्युक्त प्रसंगमें कविने रामके प्रति जिसकी जैसी भावना थी, उसने वैसे ही उनको देखा, किन्तु कितनी बड़ी विशेषता यह है कि योगियों और जानकीकी भावनाओंके लिए जिन शब्दोंका प्रयोग हुआ है वह विशेषताओंसे संयुक्त है। योगी अपनी समस्त इन्द्रियोंको वशमें करके परमतत्वकी अनुभूति करता है; क्योंकि योगियोंके लिए परमतत्व आभासित होता है। वह नेत्रका ही विषय नहीं है कि उसे देखा जाय, किन्तु वह आभासित होनेका ही विषय है। इसीलिए "जोगिन्ह परमतत्वमय भासा।" और रामकी ओर चितैकर जानकी जिस सुख और सनेहका अनुभव करती हैं, वह अकथनीय है, उसे वाणी द्वारा व्यक्त नहीं किया जा सकता; क्योंकि 'प्रभु सोभा सुख जानहिं नयना। कहि किमि सकहिं तिन्हहिं नहि बयना।'

३—'तब रामहिं बिलोकि बैदेही। सभय हृदय बिनवत जेहि तेही॥'

जिस-तिससे विनय करना हृदयकी अस्थिरताका कितना सफल चित्रण है।

४—'दलकि उठेउ सुनि हृदय कठोरू। जनु छुइ गयउ पाक बरतोरू॥'

इस स्थलपर शब्दोंकी ध्वनिसे ही भाव सजीव हो उठा है।

५—"हमहिं देखि मृग निकर पराहीं। मृगी कहहिं तुम्ह कहँ भय नाहीं॥
तुम्ह आनंद करहु मृग जाए। कंचन मृग खोजन ए आए॥"

स्वर्ण-मृगके वधकी उमंगमें आकर श्रीरामचन्द्रजीने जानकीको खो दिया था। उसको स्मरणकर श्रीरामचन्द्रजीके हृदयका क्षोभ कितना करुण और मार्मिक है।

६—"दस सिर ताहि बीस भुजदंडा। रावन नाम बीर बरिबंडा॥
भूप अनुज अरिमर्दन नामा। भयउ सो कुम्भकरन बलधामा॥
सचिव जो रहा धरमरुचि जासू। भयउ बिमात्र बंधु लघु तासू॥"

अथवा ७—"सखा सोच त्यागहु बल मोरे। सब विधि घटब काज मैं तोरे।
कह सुग्रीव सुनहु रघुबीरा। बालि महाबल अति रनधीरा॥
दुंदुभि अस्थि ताल देखराए। बिनु प्रयास रघुनाथ ढहाए॥
देखि अमित बल बाढ़ी प्रीती। बालि बधब इन्ह भै परतीती॥

'रावन नाम बीर बरिबंडा' और बल, महाबल, अमित बल, क्रमसे अपना-अपना अलग महत्त्व रखते हैं, इसी प्रकार लंकामें 'भट', 'सुभट', 'महाभट' और 'दारुण भट' चार प्रकारके योद्धाओंका वर्णन है यथा :—

'रहे तहाँ बहु भट रखवारे', 'फेरि सुभट लकेस रिसाना', 'रहे महा-भट ताके संगा', 'कपि देखा दारुन भट आवा।' आदि हैं।

भावनाओंके अनुरूप शब्दोंका प्रयोग तुलसीदासकी सबसे बड़ी विशेषता है। दो उदाहरण और लीजिए :—

८—"रामचरन सरसिज उर राखी। चला प्रभंजन सुत बल भाखी॥"

जब कपिवर हनुमानने कहा कि मैं संजीवनी अभी लिए आता हूँ, तो उनके लिए 'पवनसुत', 'सुमेरु सूनु' आदि शब्दोंका प्रयोग न कर प्रभंजन (आँधी) सुत कहकर उनकी तीव्रगामिताका वर्णन किया है।

९—"चूड़ामनि उतारि तब दयऊ। हरष समेत पवनसुत लयऊ॥"

जिन स्त्रियोंके पति जीवित रहते हैं उनके लिए 'उतारि' शब्दका प्रयोग नहीं होता, बल्कि 'निकारि' शब्द ही प्रयुक्त हो सकता है; क्योंकि जिस समय वे विधवा होती हैं, उसी समय आभूषण उतारती हैं और फिर कभी उसे धारण नहीं करतीं और पतिके जीवित रहनेपर जो आभूषण निकालती हैं, उसे फिर धारण कर सकती हैं। इस परम्पराके रहते हुए भी गोस्वामीजीको जब जानकी सधवा स्त्री हैं, तब उनके लिए चूणामणि 'उतारि तब दयऊ' नहीं लिखना चाहिए था; किन्तु कारण विशेषसे ही 'उतारि' शब्द प्रयुक्त हुआ है। अयोध्याकांडमें जब वन-गमनके प्रसंगमें श्रीरामचन्द्रजीने कहा :—

"हंस गवनि तुम्ह नहिं बन जोगू। सुनि अपजसु मोहिं देइहि लोगू॥

मानस सलिल सुधा प्रतिपाली। जिअइ कि लवन-पयोधि मराली ॥
नव रसाल बन विहरनसीला। सोह कि कोकिल विपिन करीला ॥
रहहु भवन अस हृदय विचारी। चंद-वदनि दुखु कानन भारी ॥'

इसे सुन जानकीने जो उत्तर दिया उसका कुछ अंश इस प्रकार है:-

"तनु धनु धाम धरनि पुर राजू। पति-विहीन सबु सोक समाजू ॥
भोग रोग सम भूषन भारू। जम जातना सरिस संसारू ॥
प्राननाथ तुम्ह बिनु जग माहीं। मो कहुँ सुखद कतहुँ कछु नाहीं ॥
जिय बिनु देह नदी बिनु बारी। तैसिय नाथ पुरुष बिनु नारी ॥'

अर्थात्—"हे राम ! आपके वियोगमें सम्पूर्ण भोग रोगके समान एवं आभूषण भारके समान हैं।"

तो, जब जानकी रामसे अलग वियोगावस्थामें लंका पड़ी हैं, तब चूड़ामणि उन्हें भार (बोझ)की तरह लग रहा है और उतारा ही चाहती है; निकाला नहीं। इस प्रकार सम्पूर्ण राम-चरित-मानसमें विशेषताएँ भरी पड़ी हैं, चाहे जहाँ इसकी परीक्षा की जा सकती है।

इस प्रकार गोस्वामी तुलसीदासने 'मानस'में अपने अध्ययन और काव्य-ज्ञानसे साहित्यके आदर्शोंको ग्रहण करते हुए भी अपनी मौलिकताकी छाप छोड़ दी है। परम्परासे आती हुई राम-कथाको लेकर रामके चरित्रमें उन्होंने समाजकी आदर्शभूत आवश्यकताओंका समावेश किया है। 'राम-कथा'के जिस अंशको उन्होंने आवश्यक समझा उसे ग्रहण किया और जिसे अनुपयुक्त समझा उसे छोड़ दिया। इसके अतिरिक्त उन्होंने अपनी अनुभूतियोंका भी प्रयोगकर राम-कथाको फिरसे सजीव कर दिया। कविवर श्री 'बेनी'-जीके शब्दोंमें :—

"बेदमत सोधि, सोधि-सोधि कै पुरान सबै,
सन्त औ असन्तन को भेद को बतावतो।
कपटी कुराही कूर कलि के कुचाली जीव,
कौन राम नाम हू की चरचा चलावतो ॥

'बेनी' कवि कहै मानो मानो हो प्रतीत यह,
पाहन हिए मैं कौन प्रेम उपजावतो।
भारी भवसागर उतारतो कवन पार,
जो पै यह रामायन तुलसी न गावतो ॥"

अब यहाँ इस स्थलपर गोस्वामी तुलसीदासकृत राम-कथा-सम्बन्धी अन्य रचनाओंपर भी कुछ विचार किया जायगा। 'राम-कथा'-संबंधी इन रचनाओंपर विचार कर लेनेके पश्चात् हम तुलसीके 'राम-कथा'की दार्शनिक पृष्ठभूमि और माया सम्बन्धी विचार प्रकट करेंगे।

११—कविकी राम-कथा संबंधी अन्य श्रेष्ठ रचनाएँ—(अ) दोहावली—वेणीमाधवदासके अनुसार इसका रचनाकाल संवत् १६४० है, किन्तु कुछ विद्वानोंने इसकी रचना-तिथि १६६५ से १६८० के बीच माना है, जो भी हो, इसकी रचना दोहोंमें है। इसमें ५७३ दोहे हैं। इस ग्रन्थमें अन्य ग्रन्थोंके दोहे भी संग्रहीत हैं, जैसे 'मानस'के ८५ दोहे सतसईके १३१, रामाज्ञाके ३५ और वैराग्य-संदीपनीके २ दोहे हैं, शेष दोहे नए हैं, इसमें २० सोरठे भी हैं। यह ग्रन्थ दोहा और सोरठा छन्दमें लिखा गया है। 'दोहावली'के अन्तर्गत कविने नीति, भक्ति, राम-महिमा, नाम-माहात्य, रामके प्रति चातकके आदर्शका प्रेम तथा आत्म-विषयक उक्तियोंकी हृदयग्राही रचना की है। चातककी अन्योक्तियों द्वारा तुलसीदासजीने अपनी अनन्य भक्तिका आभास दिया है। इसी प्रकार कलिकाल-वर्णनमें तात्कालीन परिस्थियोंपर अच्छा प्रकाश डालनेका प्रयत्न दीखता है। इसमें आए हुए कुछ दोहे ऐसे भी हैं, जो मनोवेगोंका स्वाभाविक चित्रण करते हैं। इसमें घन और चातकका जो अविचल और अनन्य प्रेम है, वह अलौकिक है और अत्यन्त उत्कर्षपर पहुँचा हुआ है। कुछ दोहे नीचे दिए जा रहे हैं :—

'चातक तुलसीके मते, स्वातिहु पियै न पानि।
प्रेम तृषा बाढ़ति भली, घटे घटैगी आनि ॥"

"जीव चराचर जहँ लग, है सबको हित मेह।
तुलसी चातक मन बस्यो, घन सों सहज सनेह ॥"
"नहिं जाँचत नहिं संग्रही, सीस नाइ नहिं लेइ।
ऐसे मानी माँगनेहि, को वारिद बिनु देइ ॥"
"एक भरोसो एक बल, एक आस बिस्वास।
एक राम घनस्याम हित, चातक तुलसीदास ॥"

किन्तु वह चातक कैसा है ?

"उपल बरषि गरजत तरजि, डारत कुलिस कठोर।
चितव कि चातक मेघ तजि, कबहुँ दूसरी ओर ॥"
"बध्यो बधिक पर्यो पुन्य जल, उलटि उठाई चोंच।
तुलसी चातक-प्रेम-पट, मरतहुँ लगी न खोंच ॥"

अर्थात् चातकका प्रिय लोक - मंगलकारी, लोक-संग्रही और लोक-कल्याणकारी है। चातकके प्रियका यही लोक मंगलकारी रूप तुलसीदासके प्रियका भी है, उस रामको तुलसीने सीताके पतिके रूपमें, लक्ष्मणके भाईके रूपमें, दशरथके पुत्र रूपमें, हनुमानके स्वामी रूपमें चित्रित किया है; देखिए वह कितना मार्मिक है।

"कबहुँ नयन मम सीतल ताता। होइहि निरखि स्याम मृदु गाता।"

उसी घनश्यामकी ओर आशा-भरी दृष्टिसे जानकी रामके वियोगमें पड़ी लंकामें जी रही हैं। चातकके द्वारा कविने अपनी अनन्यभक्तिका बड़ा सजीव चित्रण किया है।

(आ) कवितावली—इसका रचनाकाल अधिकांश विद्वानोंने सं० १६६६ के निकट माना है। रचनासे जान पड़ता है कि समय-समयपर लिखे गए कवित्तोंका इसमें संग्रह है। कुल छन्द सं० ३२५ है। सारी रचना सात कांडोंमें 'मानस'की भाँति विभक्त है। २२ छन्द बाल-काण्डमें, २८ छन्द अयोध्याकाण्डमें, १ छन्द अरण्य-काण्डमें, १ छन्द

किष्किन्धा काण्डमें, ३२ छन्द सुन्दर-काण्डमें, ५८ छन्द लंका-काण्डमें और १८३ छन्द उत्तर-काण्डके अन्तर्गत लिखे गए हैं। ग्रन्थ भरमें सबसे अधिक विस्तार उत्तर-काण्डका है, जिसमें कविने विभिन्न विषयों पर स्फुट रचना की है। कवित्त, सवैया, झूलना और छप्पय छन्दोंमें इस ग्रन्थकी रचना हुई है। क्योंकि भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके ऐश्वर्य और शक्तिके चित्रणमें ये ही छन्द उपयुक्त थे। रामचरितकी सम्पूर्ण घटनाओंका विस्तृत वर्णन न कर ऐश्वर्य सम्बन्धी अर्थात् युद्धादिका बड़ा ओजस्वी वर्णन इसमें विशेष रूपसे आया है। 'मानस'की भाँति इसमें नियमित रूपसे कथाका विस्तार काण्डोंमें नहीं हुआ है। अरण्य और किष्किन्धा-काण्डमें एक-एक छन्द देकर मात्र काण्डोंका निर्वहण किया गया है। कुल मिलाकर यही कहा जा सकता है कि कथा-सूत्र सर्वथा छिन्न-भिन्न रूपमें है। आगे चलकर उत्तरकाण्डमें राम-कथासे सम्बन्धित न होकर रचना व्यक्तिगत घटनाओं, तात्कालीन परिस्थितियों और स्फुट भावोंपर ही प्रकाश डालती है। जैसे सीतावट, काशी, कलियुगकी अवस्था, बाहुपीर, रामस्तुति, गोपिका उद्धव-सम्वाद, हनुमान-स्तुति और जानकी-स्तुति आदि स्वतंत्र विषय हैं। इनके पहले भी जो घटनाएँ रामचरित-सम्बन्धी हैं वे अत्यन्त संक्षिप्त हैं। 'मानस'की भाँति वे विस्तारपूर्वक नहीं लिखी गयी हैं। मात्र सात छन्दोंमें रामकी बाल-लीलाका वर्णन है, इसके पश्चात् सीता-स्वयम्वरका वर्णन आता है, जिसमें विश्वामित्र आगमन और अहल्या-उद्धारकी घटनाओंका वर्णन नहीं आने पाया है। इसके अतिरिक्त जो कथाएँ आयी हैं, वे अत्यन्त संक्षिप्त हैं। इसी प्रकार अयोध्याकाण्डमें जिन प्रसंगों एवं पात्रोंसे श्रीरामचन्द्रजीकी श्रेष्ठता और भक्तके आत्मसमर्पणकी भावना दिखाई पड़ती है, उन्हें छोड़कर शेष कथा बहुत अस्त-व्यस्त है। घटनाओंके वर्णनमें प्रबन्धात्मकताका दृष्टिकोण न रखनेसे कविने पारस्परिक संबन्धका निर्वाह नहीं किया है। कैकेयीके वरदानका जिक्र भी न करके कविने राम वन-गमनसे काण्ड प्रारम्भ कर दिया है,

जिसमें आगे चलकर केवल मुनि और ग्राम-वधूके चित्र अत्यन्त मार्मिक और खरे उतरे हैं :—

"रानी मैं जानी अयानी महा पबि पाहनहूँतें कठोर हियो है।
राजहु काज अकाल न जान्यो कह्यो तिय को जिन कान कियो है॥
ऐसी मनोहर मूरति ये बिछुरे कैसे प्रीतम लोग जियो है।
आँखिन में सखि राखिबे जोग, इन्हें किमि कै बनवास दियो है॥"

इसी प्रकार एक और छन्द है जिसमें भगवान् श्रीरामचन्द्रजीकी मर्यादा-पालन और उनकी शालीनतापर प्रकाश डाला गया है :—

"सीस जटा उर बाहु बिसाल बिलोचन लाल तिरीछी-सी भौंहें॥"
तून सरासन बान धरे तुलसी बन मारग में सुठि सोहैं॥
सादर बारहिं बार सुभायँ चितै तुम्ह त्यों हमरो मनु मोहैं।
पूँछति ग्राम-बधू सिय सों, कहौ, साँवरे से सखि रावरे को हैं॥
सुनि सुन्दरि बैन सुधारस साने सयानी हैं जानकी जानी भली।
तिरछे करि नैन दै सैन तिन्हें समुझाइ कछू मुसुकाइ चली॥
तुलसी तेहि औसर सोहैं सबै अवलोकति लोचन लाहु अली।
अनुराग तड़ाग में भानु उदै बिगसीं मनो मंजुल कंजकली॥"

उपर्युक्त छन्दोंमें 'चितै तुम त्यों' तिरछे करि नैन दै सैन तिन्हें समुझाइ कछू मुसुकाइ चली' में कविने एकमें रामचन्द्रजीमें एक पत्नी-व्रतोकी मर्यादाका पालन करनेका कितना सुन्दर संकेत दिया है। क्योंकि गाँवकी स्त्रियोंने 'चितै तुम त्यों' ही कहा और 'चितै हम त्यों' नहीं कहा, पर स्त्रीकी ओर न निहारनेवाली मर्यादाका कितना सुन्दर चित्रण है और दूसरे छन्दमें महारानी जानकीने जिस ढंगसे समझाया कि श्रीरामचन्द्र मेरे पति हैं, वह अत्यन्त मार्मिक होकर जानकीजीकी शालीनतापर अच्छा प्रकाश डाल रहा है।

अरण्य-काण्डमें एक छन्द देकर जिसमें "हेम कुरंगके पीछे रघुनायक धाए" देकर शेष कथाको कविने छोड़ दिया। जानकी-हरण जैसी महत्व-

पूर्ण घटनाका भी संकेत नहीं मिलता। इसी प्रकार किष्किन्धा-काण्डमें भी सुग्रीवमित्रता एवं बालि-वध आदि घटनाओंका वर्णन न आकर केवल हनुमानजीका समुद्रोलंघन संबन्धी एक छन्द दे दिया गया। कथाकी दृष्टिसे इसी प्रकार सुन्दर काण्ड भी महत्वहीन है, किन्तु रसकी दृष्टिसे बहुत ही श्रेष्ठ है। रौद्र और भयानक रसोंका वर्णन तो 'मानस' से भी बढ़कर है। इसका कारण यही है कि इन रसोंके वर्णनमें घनाक्षरी छन्दका उपयुक्त प्रयोग है, जो कि 'मानस' में नहीं अपनाया गया है। लंका-दहनके वर्णनमें क्रोध और भयकी भावना स्थायी रूपसे रहनेके कारण भयानक और रौद्र रसोंके उद्रेकमें सहायक है, देखिये कितना प्रभावकारी भय है :—

'लागि, लागि आगि भागि भागि चले जहाँ तहाँ,
धीय को न माय बाप पूत न सँभारहीं।
छूटे बार-बसन उघारे धूम धुन्ध अन्ध,
कहैं बारे बूढ़े, 'बारि-बारि' बार-बारहीं॥
हय हिहिनात भागे जात, घहरात गज,
भारी भीर ठेलि-पेलि रौंदि-खौंदि डारहीं॥
नाम लै चिलात, बिललात अकुलात अति,
तात, तात! तौंसियत झौंसियत झारहीं॥ १५॥"

"लपट कराल ज्वाल-जाल माल दहूँ दिसि,
धूम अकुलाने, पहिचानै कौन काहिरे।
पानी को ललात बिललात जरे गात जात,
परे पाइमाल जात, भ्रात तूँ निबाहिरे॥
प्रिया! तूँ पराहि, नाथ! नाथ! तूँ पराहि बाप!
बाप! तूँ पराहि पूत! पूत! तूँ पराहि रे॥'
'तुलसी' बिलोकि लोग ब्याकुल बेहाल कहैं,
लेहि दससीस! अब बीस चख चाहि रे॥ १६॥"

कपि हनुमान्‌के अमित पराक्रमसे लंका-निवासी अत्यन्त भयभीत

व्याकुल हो गये हैं: —

> "बीथिका बजार प्रति, अटनि अगार प्रति,
> पँवरि-पगार प्रति बानर बिलोकिए।
> अर्ध ऊर्ध बानर, बिदिसि-दिसि बानर है,
> मानो रह्यो है भरि बानर तिलोकिए॥
> मूँदैं आँखि हिय में, उघारें आँखि आगे ठाढो,
> धाइ जाइ जहाँ, तहाँ और कोउ को किए।
> लेहु, अब लेहु, तब कोउ न सिखायो मानो,
> सोई सतराइ जाइ जाहि जाहि रोकिए॥ १७॥"

एक वीभत्स दृश्यका भी उदाहरण लीजिए :—

> "हाट-बाट हाटक पिघिलि चलो घी-सो घनो,
> कनक-कराही लंक तलफति तायसों।
> नाना पकवान जातुधान बलवान सब,
> पागि-पागि ढेरी कीन्हीं भली-भाँति भायसों॥
> पाहुने कृसानु पवमान सों परोसो,
> हनुमान सनमानि कै जेंवाए चित-चाय सों।
> 'तुलसी' निहारि अरि-नारि दै-दै गारि कहैं,
> बावरे सुरारि बैरु कीन्हीं रामराय सों॥ २४॥"

लंका-काण्डमें, जिसमें कविने अङ्गद-रावण और मन्दोदरी-रावण-सम्वाद विस्तारसे वर्णनकर युद्ध-वर्णन प्रारम्भ कर दिया है, कथा नियमित रूपसे नहीं चल पायी है। रसके विचारसे इसमें भी वीर, रौद्र तथा वीभत्स रसोंका अच्छा वर्णन मिलता है, किन्तु 'मानस' की भाँति राम और हनुमानका युद्ध राक्षसोंके साथ जिस प्रकार हुआ, इसमें वैसा नहीं है। इसमें तो रामका युद्ध सक्षेपमें है और हनुमान्‌का विस्तृत। वीर तथा रौद्र रसके वर्णन हनुमान्‌जीके युद्धमें देखे जा सकते हैं :—

> "जो दससीस महीधर ईसु को बीस भुजा खुलि खेलनहारो।

लोकप, दिग्गज, दानव-देव, सबै सहमे सुनि साहस मारो ॥
बीर बड़ो बिरुदैत बली, अजहूँ जग जागत जासु पँवारो।
सो हनुमान हन्यो मुठिका गिरि गो गिरिराजु ज्यों गाज को मारो ॥"

"साजि कै सनाह गजगाह सउछाह दल,
महाबली धाए बीर जातुधान धीर के।
इहाँ भालु बन्दर बिसाल मेरु-मन्दर-से,
लिए सैल-साल तोरि नीरनिधि तीर के ॥
तुलसी तमकि-ताकि भिरे भारी युद्ध क्रुद्ध,
सेनप सराहे निज-निज भट भीर के।
रुंडन के झुण्ड झूमि झूमि झुकने से नाचैं,
समर सुमार सूर मारैं रघुबीर के ॥"

'मानस' की भाँति राम-कथा उत्तर-काण्ड तक नहीं जा पायी है। लंका-काण्डमें ही वह समाप्त हो जाती है।

उत्तर-काण्ड इस ग्रन्थका वृहत् अंश है। इसमें कविने नीति, भक्ति तथा आत्म-चरित्रका विशेष वर्णन किया है। इस प्रकरणमें कविने अपनी कितनी ही बातें व्यक्तिगत लिखी हैं। जिससे इसके द्वारा कविके जीवनके सम्बन्धमें अच्छा प्रकाश पड़ता है। इस काण्डमें शान्त-रसके वर्णन अधिक मिलते हैं। इसके साथ ही तत्कालीन परिस्थितियोंका चित्रण, पौराणिक कथाएँ, भ्रमरगीत, कलिसे विवाद और देवताओंकी स्तुतिके विवरण भी मिलते हैं। उत्तर-काण्ड राम कथासे सम्बन्धित न होकर स्वतन्त्र है। समग्र कवितावलीमें भयानक-रसका जितना सुन्दर वर्णन विस्तारके साथ मिलता है, वह हिन्दी-साहित्यमें बेजोड़ है।

(इ) गीतावली—इसका रचनाकाल कुछ लोग सं० १६२८ मानते हैं* और कुछ लोग सं १६४३ मानते हैं।† यह कृति ग्रन्थके रूपमें

---

* श्रीवेणीमाधवदासका मत। † डाक्टर श्रीरामकुमार वर्माका मत।

सम्यक् न लिखी जाकर स्फुट पदोंमें ही रची गयी है। इसमें कोई मंगलाचरण नहीं है। श्रीरामचन्द्रजीके जन्मोत्सवसे ही इसकी रचना प्रारम्भ होती है। 'मानस'की भाँति भगवान् रामके जन्मके कारणोंका न तो उल्लेख है और न उसकी सब कथाएँ ही वर्णित हैं। यह ग्रन्थ भी सात काण्डोंमें विभक्त है। इसमें कुल मिलाकर ३२८ पद ही रचे गये हैं। बाल-काण्डमें १०८, अयोध्या-काण्डमें ८६, अरण्य-काण्डमें १७२, किष्किंधा-काण्डमें २, सुन्दर काण्डमें ५१, लंका-काण्डमें २३ और उत्तर-काण्डमें ३८ पद हैं। 'मानस'की भाँति सभी काण्डोंकी कथाका पूर्ण-निर्वाह नहीं किया गया है। क्योंकि अयोध्या-काण्डमें प्रथम पदमें ही वशिष्ठसे रामराज्याभिषेकके निमित्त दशरथजीकी विनय है, दूसरेमें रामवनवास और माता कौशिल्या द्वारा रामसे वन न जानेकी प्रार्थना है, कैकेयीकी वरदानवाली सभी विदग्धतापूर्ण कथाओंका वर्णन नहीं आने दिया गया है। 'मानस'की भाँति इस ग्रन्थमें कविको चरित्र-चित्रणमें सफलता नहीं प्राप्त हुई है। इसका भी कारण यही है कि इसमें भी घटनाओंका वर्णन विशृङ्खलित है। यदि 'गीतावली' स्फुटरूपमें न लिखी गयी होती, तो चरित्र-चित्रणमें कविको अवश्य सफलता प्राप्त होती।

राम-कथाकी रचना पदोंमें करनेकी प्रेरणा तुलसीदासको सूरसागरसे मिली; क्योंकि 'गीतावली'के अनेक पद भी सूर-सागरके कुछ पदोंसे मिलते हैं। कहीं-कहीं तो इनमें इतनी समानता है कि 'तुलसी' और 'सूर' तथा 'राम' और 'श्याम' का ही अन्तर होता है और शेष पद ज्यों-के-त्यों रहते हैं। इसके अतिरिक्त 'गीतावली'में बाल-वर्णन सूरसागरके ही समान विस्तारके साथ मिलता है, जब कि कविने अन्य ग्रन्थों—कवितावली', 'मानस'—आदिमें बहुत संक्षिप्त रूपसे इस प्रसंगको वर्णित किया है। जिस प्रकार सूरसागरमें यशोदा श्रीकृष्णके वियोगमें अनेक कल्पनाएँ करती हैं, अनेक पूर्व स्मृतियोंको जगाती हैं, उसी प्रकार तुलसीदासने भी रामके वियोगमें 'गीतावलीके अन्तर्गत माता कौशल्याका चित्रण किया

किया है। सूरसागरके समान ही 'गीतावली'में—रामराज्यमें हिंडोला, वसन्त, होली और चाँचर-वर्णन मिलते हैं। इतना होते हुए भी 'सूरसागर' और 'गीतावली'के बाल-वर्णनमें अन्तर है। साधारण तथा स्वाभाविक परिस्थितियोंके वर्णनमें गोस्वामीजीने भगवान् रामके उत्कृष्ट व्यक्तित्व और महत्त्वका ध्यान रखा है, जिससे मर्यादाका अतिक्रमण न होने पावे। गीतावलीका बाल-वर्णन वर्णनात्मक अधिक है; क्योंकि उसमें स्थितिका सम्पूर्ण निरूपण हुआ है। किन्तु 'गीतावली'का बाल-वर्णन अभिनयात्मक नहीं माना जा सकता। पात्रोंके सम्भाषणके कुछ अभावके कारण रामके शृङ्गार-वर्णनके प्रसंगमें मनोवेगोंका स्थान गौण हो गया है। सूरसागरमें मनोवैज्ञानिक भावनाओंका जो वर्णन पात्रोंके अभिनयका रूप देकर सूरदासने किया है, वह 'गीतावली'के ऐसे वर्णनोंसे श्रेष्ठ है। क्योंकि स्वाभाविक बाल-चेष्टाओंके अन्तर्गत स्वतन्त्रता, चञ्चलता और चपलता आदिकी सृष्टि न करके तुलसीदासजी अपने आराध्यदेव श्रीरामचन्द्रजीके सौन्दर्य-चित्रण—उनके अंग, वस्त्र तथा आभूषण आदिके वर्णनमें भी मर्यादाका सर्वथा ध्यान रखते ही रहे। उन्हें भय था कि भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके मनोवेगोंके स्वाभाविक चित्रणमें कहीं मर्यादाका उल्लंघन न हो जाय। सूरदासकी भक्ति सख्यभावके अन्तर्गत होनेसे विस्तृत क्षेत्रका उन्हें अवसर था। वे अधिकसे अधिक स्वतन्त्रता-पूर्वक भावोंकी सृष्टि कर सकते थे, किन्तु महात्मा तुलसीदासकी भक्ति दास्यभावके अन्तर्गत थी, जिसके भीतर दृष्टि-विस्तारकी क्षमता होनेपर भी मर्यादाके बाहर झाँकना वर्जित होनेसे कविको एक संकुचित घेरेमें ही रह जाना पड़ा। इसलिए रामचन्द्रजी नागरिक जीवनसे मर्यादित होनेके कारण (मर्यादा पुरुषोत्तम होनेके कारण) उच्छृङ्खलताके सम्पर्कमें न लाए जा सके और कविको उनके प्रायः बाह्यरूप-वर्णनमें ही संतोष करना पड़ा। वहाँ सूरदासको भगवान् श्रीकृष्णके अनेक गोपियोंके सम्पर्कमें आने और उनसे प्रेम करने जैसे विषयका विस्तारपूर्वक वर्णन करनेके लिए

अवसर था, वहाँ रहके एक पत्नीव्रती और अत्यधिक संयमी होनेके कारण कवि तुलसीदासको सूरकी भाँति व्यापक क्षेत्र ही नहीं मिल पाया, जिससे उन सभी बाल-चेष्टाओंको वे अंकित न कर सके। अत्यन्त संकुचित दायरेमें भी रहकर कविने अपनी काव्य-कुशलताका जितना परिचय दिया है, वही क्या कम है?

वर्ण्य-विषय—गोस्वामी तुलसीदासके ग्रन्थोंमें कलेवरकी दृष्टिसे 'मानस' के पश्चात् 'गीतावली' ही है। इसमें समग्र राम-चरित्र पदोंमें वर्णित है। किन्तु 'मानस'की अपेक्षा इसकी वर्णन-शैली, दूसरे ढंगकी है, 'मानस' महाकाव्य है, उसमें सभी रसोंका सांगोपांग वर्णन है, वहाँ कवि-हृदयके समग्र भावोंका गम्भीर विश्लेषण देखनेमें मिलता है। किन्तु 'गीतावली' की रचना गीतोंमें मुक्तक रूपसे हुई है, जिसमें आद्योपान्त कविका एक ही भाव देखनेमें आता है। सच तो यह है कि आराध्यसे आत्म-निवेदनकी प्रधानतामें रचना गेय हो जाती है तथा भावनाके घनीभूत होनेसे संक्षिप्तता आ जाती है। विद्वानों द्वारा सफल गीति-काव्यके चार लक्षण गिनाए गए हैं :—१—आत्माभिव्यक्ति, २—विचारोंकी एकरूपता, ३—संगीत और ४—संक्षिप्तता। ये तत्व 'गीतावली'में पाए जाते हैं। इन तत्वोंके संयोजनका प्रयत्न कविने किया है। इस रचनामें प्रबन्धात्मकताकी अपेक्षा न करके अपने इष्टदेवकी मनोहर झाँकियाँ प्रस्तुत करनेमें कवि ललित भाव ही व्यक्त कर सका है। भगवान्के रूप-माधुर्य अथवा करुण रसका वर्णन कविने अन्य घटनाओंकी अपेक्षा अधिक विस्तारसे किया है, जितनी परुष घटनाएँ हैं; उनकी ओर तो कवि दृष्टिपात भी नहीं करता। इसी दृष्टिकोणसे कविने कैकेयी-दशरथसंवाद, लंका-दहन, राम-रावण युद्ध आदिका वर्णन नहीं किया है। ये स्थल गीतके कोमल एवं सरस उपकरणोंके लिए अनुकूल नहीं पड़ सकते थे। संक्षेपमें प्रत्येक काण्डकी समीक्षा इस प्रकार है :—

बाल-काण्ड—इसमें रामकी बाल्यावस्थाके अतीव सुन्दर और कोमल

चित्र अंकित हैं ४४ पदोंमें रामका बाल-चित्रण किया गया है। इसमें जनकपुरकी स्त्रियों द्वारा रामकी (किशोर मूर्तिकी) सुन्दरता एवं उनके प्रति भक्ति-भावनाकी सर्वाङ्गीण पवित्र चित्रावली, उपस्थित करते हुए इस प्रसंगका कविने बहुत विस्तृत वर्णन किया है।

अयोध्या-काण्ड—इसमें दशरथ और कैकेयीके संवादका वर्णन नहीं है। किन्तु बनमार्गमें ग्रामीण स्त्रियों द्वारा प्रभुके तापस-वेषका जो वर्णन किया गया है, वह भक्तके दृष्टिकोणसे अत्यन्त श्रेष्ठ है। 'मानस'की अपेक्षा चित्रकूटके प्रसंगमें वसन्त और फागके वर्णन भी मिलते हैं, जो कविके किसी दूसरे ग्रन्थमें नहीं मिलते। माताकी करुणामयी भावनाका वर्णन बड़ा ही सजीव है। इस काव्यमें कथाकी प्रधानता न होकर भावोंका प्रधानता है।

अरण्य-काण्ड—इसमें भी 'मानस'की भाँति कथाका निर्वाह नहीं किया गया है, जयन्त-छल, अत्रि एवं अनुसूइयासे तपस्वी वेषमें राम-लक्ष्मण और सीताका मिलाप, विराध-वध, शरभंग, अगस्त एवं सुतीक्ष्णसे प्रभुमिलन, शूर्पणखा-प्रसंग, खर-दूषण-वध, रावण और मारीचका वार्तालाप, राम और नारदका मिलन तथा उनका भक्ति-सम्बंधी संवाद, जो मानसमें विस्तारपूर्वक वर्णित है, इसमें नहीं लिया गया। इसका कारण यह जान पड़ता है कि ये घटनाएँ वर्णनात्मक और वीरात्मक हैं, जो कोमल भावनाओंसे युक्त न होनेके कारण छोड़ दी गयी हैं। रामचन्द्रजीकी भक्तवत्सलतासे सम्बन्धित होनेके कारण गीध-प्रसंग पूर्वपक्षमें वीरतापूर्ण होनेपर भी ले लिया गया है शबरीके प्रसंगमें भी यही बात है। इस काण्डमें कोमल भावनाओंका सुन्दर वर्णन है।

किष्किन्धा काण्ड—इसमें मात्र दो पद लिखे गए हैं। कथाकी दृष्टिसे तथा 'मानस'में वर्णित प्रकृति-चित्रणके साथ जो उपदेश दिया गया है, उसका इसमें सर्वथा अभाव है।

सुन्दर-काण्ड—इसमें 'मानस'की भाँति अशोक-वाटिका-विध्वंस एवं

लंकादन जैसे प्रमुख प्रसंग छूट गए हैं। रस की दृष्टिसे, इसमें वीर, वियोग-शृङ्गार और रौद्र-रसोंके अतिरिक्त शान्त-रसको भी अपनाया गया है, यह काण्ड श्रेष्ठ है। विभीषणका रामके समीप आकर शरणागत होना, तुलसीदासजीकी अपनी आत्माभिव्यक्तिका द्योतक है। वियोग-शृङ्गारके वर्णनमें सीताके हृदयकी मर्मस्पर्शिनी-व्यथा, वीर-रसमें श्रीरामचंद्रजीका सैन्य-संचालन, रौद्र-रसमें रावणके प्रति हनुमानजीकी ललकार तथा शान्त रसमें विभीषणके उद्गारोंका वर्णन अत्यन्त श्रेष्ठ है। इस काण्डमें गीति-काव्यका पूर्ण-निर्वाह करनेका प्रयत्न किया गया है।

लंका-काण्ड—इस प्रकरणमें राम-रावण-युद्ध, जिसके आधारपर इस काण्डका नामकरण भी 'युद्ध काण्ड' किया गया है, नहीं वर्णित है। अंगद-रावण संवादके बाद ही लक्ष्मण-शक्तिका वर्णन कर दिया गया है। इस काण्डमें 'मानसकी भाँति वीररसका अधिक वर्णन होना चाहिए था, किन्तु वीररसके बदले करुणरसका वर्णन आया है। इसमें हनुमानजीकी वीरताके कुछ पद आ गए हैं और इसी प्रकार कथाको संक्षिप्त करते हुए कविने लक्ष्मण-शक्तिके बाद ही भगवान् रामकी विजयका एक ही पदमें वर्णन किया है।

उत्तर-काण्ड—इसका वर्णन वाल्मीकि-रामायण और कृष्ण-काव्यसे प्रभावित है। इन दोनोंके संग तुलसीदासकी कथा-वर्णनकी मौलिकताके दर्शन भी होते चलते हैं। रामराज्याभिषेक, सीता वनवास, लव-कुश-जन्म आदि कथाएँ तो वाल्मीकि-रामायण की-सी हैं; हिंडोला, नख-शिख-वर्णन कृष्ण-काव्य सा है। बाल-काण्डके समान ही अवस्था-भेदके साथ इस काण्डके प्रारम्भमें भी 'मानसकी भाँति सम्पूर्ण राम-कथाका सारांश दे दिया गया है। इसमें हिंडोला आदि वर्णनोंके आ जानेसे रामचन्द्रजी-की जिस मर्यादाका उचित संरक्षण 'मानस'में किया गया है, वह इस ग्रन्थमें नहीं हो पाया है।

ऊपर लिखा जा चुका है कि गीतावलीमें भावनाओंकी ही प्रधानता

है, घटनाओंकी नहीं। इसलिए इसमें कथाका अनियमित विस्तार है, जिसमें भावनात्मक-चित्रण विशेष मार्मिक हैं। रामका सौन्दर्य-वर्णन विशेष ढंगसे मिलता है। लोक-शिक्षणकी ओर कविका ध्यान 'मानस'की भाँति नहीं गया। गीत काव्यके आदर्शोंके संरक्षणमें 'मानस'की भाँति सभी घटनाएँ नहीं आयी हैं, जैसे करुण तथा ओजपूर्ण स्थल तो सारी 'गातीवली'में छूट ही गए हैं। इतना सब कुछ होनेपर भी हृदयके विविध भावोंकी अभिव्यक्ति 'गीतावली'के मधुर पदोंमें हुई है। 'गीतावली'की रचना ब्रज भाषामें हुई है, जिसमें ब्रज भाषापर कविका अच्छा अधिकार दिखायी पड़ता है। इसमें काव्य-कलाकी दृष्टिसे सबसे अधिक मधुर भावोंकी अभिव्यक्ति है। डाक्टर श्रीरामकुमार वर्माके शब्दोंमें-'तुलसीदास गीति-काव्यके अन्तर्गत केवल सौन्दर्यकी सृष्टि कर सके, किसी उत्कृष्ट काव्यादर्शकी नहीं। न तो वे 'विनय-पत्रिका'के समान आत्म-निवेदन हो कर सके और न 'मानस'के समान कथा-प्रसंगकी सृष्टि ही। अतः 'गीतावली' एकान्त 'माधुर्य'की रचना है।*

रसकी दृष्टिसे 'गीतावली' शृङ्गार-रस-प्रधान रचना है। डा० श्रीराम-कुमार वर्माके शब्दोंमें—१—'यदि वात्सल्यको भी शृङ्गार-रसके अन्तर्गत मान लिया जावे, तब तो संयोग-शृङ्गार ही प्रधान हो जाता है, क्योंकि—रामका बाल-वर्णन संयोगात्मक अधिक है, वियोगात्मक कम। इसके पर्याय कृष्णका बाल-वर्णन वियोगात्मक अधिक है, संयोगात्मक कम। २—'तुलसीने जैसा चित्रण राम-कथाका किया है, उसके अनुसार भी शृङ्गार-रसको प्रधान स्थान मिलता है। रामके उन्हीं चरित्रोंका दिग्दर्शन अधिक कराया गया है, जो कोमल भावनाओंके व्यंजक हैं। ३—"गीता-वलीका अन्तिम भाग कृष्ण-काव्यसे प्रभावित होनेके कारण भी अधिक

---

* डा० श्रीरामकुमार वर्मा कृत देखिए "हिन्दी साहित्यका आलो-चनात्मक इतिहास" द्वितीय संस्करण पृ० ४०३।

शृङ्गारात्मक बन गया है। वसन्त और हिंडोला आदि अवतरणोंने तो शृङ्गारको और भी अतिरंजित कर दिया है।'*

*'गीतावली'*में रामका बाल-वर्णन, सीता-स्वयंवर, विवाह, वन-गमन, चित्रकूट-वर्णन और रामके पंचवटी-जीवनका वर्णन तथा रामके नख-शिख और हिंडोला, वसन्त आदिके वर्णनोंमें शृङ्गार-रसके वर्णनकी उत्कृष्ट पदावलियाँ मिलेंगी। इसके अतिरिक्त वियोग-शृङ्गारके वर्णनमें कविको विशेष सफलता प्राप्त हुई है। जीवनकी वास्तविक परिस्थितियोंके वर्णनमें वियोग-शृङ्गार विशेष सफल हुआ है। अयोध्या-काण्डमें वियोग-शृङ्गार तो अपनी चरम सीमापर है।

करुण-रसका वर्णन अयोध्या-काण्डके १२ वें और ५७ वें पद (दशरथ-मरणके प्रसंग) में इसी प्रकारके पद दूसरेसे चौथे तक कौशल्या-विलाप और लंका-काण्डके लक्ष्मण-शक्तिके बाद राम-विलापके अन्तर्गत पाँचवेंसे सातवें पदमें मिलते हैं, जो अत्यन्त मार्मिक हैं। जान पड़ता है, हास्य-रसको कविने इसमें लानेकी चेष्टा ही नहीं की। यह बाल-काण्डके ६५ वें पदमें वर्णित अवश्य है; किन्तु अन्य रसोंकी भाँति उत्कृष्ट नहीं है। वीर-रसके लिए यद्यपि इस गीति-काव्य-संग्रहमें विशेष उपयुक्त अवसर नहीं था, किन्तु सुन्दर-काण्डके १२ वें–१४ वें पदमें जहाँ हनुमान-रावण प्रसंग है; अरण्य-काण्डके आठवें पदमें जहाँ जटायु-रावण-युद्ध-प्रसंग है और लङ्का-काण्डमें ८-९ तथा १० वें पदमें जहाँ हनुमानका संजीवनी लानेके लिए प्रस्थानका प्रसंग है, उत्तम व्यंजना है। इसी प्रकार बाल-काण्डके ८९ वें पदमें धनुष-चढ़ानेके प्रसंगमें राम तथा लक्ष्मणका उत्साह तथा धनुर्भंगकी प्रचण्डताका वर्णन भी अत्यधिक वीरोल्लासपूर्ण है। जनकजीके कहने पर :—

---

* देखिए 'हिन्दी-साहित्यका आलोचनात्मक इतिहास'—डा० श्रीरामकुमार वर्मा कृत पृ० ४०३।

"सप्तदीप नव खंड भूमि के भूपति वृन्द जुरे।
बड़ो लाभ कन्या कीरति को, जहँ तहँ महिप मुरे॥
डग्यो न धनु जनु बीर-बिगत महि, किधौं कहुँ सुभट दुरे।"

वीर लक्ष्मण कहते हैं —

"रोषे लखन बिकट भृकुटी करि भुज अरु अधर फुरे॥
सुनहु भानु-कुल-कमल-भानु! जो अब अनुसासन पावौं।
का बापुरो पिनाकु, मेलि गुन मंदर मेरु नवावौं॥
देखौ निज किंकर को कौतुक, क्यों कोदंड चढ़ावौं।
लै धावौं, भंजौं मृनाल ज्यौं, तौ प्रभु-अनुज कहावौं॥"

इसी प्रकार लक्ष्मण-मूर्च्छापर रामकी व्याकुलता देख हनुमानजीके वचन :—

"जौं हौं अब अनुसासन पावौं।
तौ चन्द्रमहि निचोरि चैल ज्यों आनि सुधा सिर नावौं॥
कै पाताल दलौं ब्यालावलि अमृतकुण्ड महि लावौं॥
भेदि भुवन करि भानु बाहिरो तुरत राहु दै तावौं॥
बिबुध-बैद बरबस आनौं धरि तौ प्रभु अनुज कहावौं॥
पटकौं मीच नीच मूषक ज्यौं सबहि को बापु बहावौं॥"

इत्यादि वीर-रसके श्रेष्ठ नमूने हैं।

रौद्र तथा भयानक-रसके वर्णनोंका अवसर कविको मिल सकता था, वह था—राम-रावण-युद्धका स्थल, किन्तु इस ग्रन्थमें यह कथा आने ही नहीं पायी है। इसके अतिरिक्त अयोध्या-काण्डके ६० वें तथा ६१ वें पदमें, जहाँ कैकेयीके प्रति भरतकी और लंका-काण्डमें दूसरे तथा चौथे पदमें *रावणके प्रति अंगदकी भर्त्सना वर्णित है* :—

"ऐसे तैं क्यों कटु बचन कह्यो री!
राम जाहु कानन कठोर तेरो कैसे धौं हृदय रह्यो री॥ १॥
दिनकर बंस पिता दसरथ-से राम-लखन-से भाई॥

जननी तूँ जननी ! तौ कहा कहौं बिधि केहि खोरि न लाई ॥ २ ॥

+ + +

तुलसीदास मोको बड़ो सोच है, तू जनम कवन विधि भरिहै ॥"

इसके अतिरिक्त :—

"तू दस कंठ भले कुल जायो ॥"

"तैं मेरो मरम कछू नहि पायो ॥"

"सुनु खल ! मैं तोहिं बहुत बुझायो ॥"

आदि रौद्र-रसके उदाहरण मिलते हैं ।

रामके लंका-प्रयानके प्रसंगमें सुन्दर-काण्डके २२ वें पदके अन्तर्गत भयानक-रसका वर्णन बड़ी ओजस्वी भाषामें हुआ है—

"जब रघुबीर पयानो कीन्हो ।

छुभित सिन्धु डगमगत महीधर, सजि सारंग कर लीन्हों ॥ १ ॥

+ + +

तुलसीदास गढ़ देखि फिरे कपि, प्रभु आगमन सुनाइ ॥ १२ ॥"

वीभत्स-रस—इसका वर्णन 'गीतावली'में नहीं आ सका है, क्योंकि युद्धकी विकरालताका वर्णन, जहाँ राम-रावण-युद्धमें अधिक संभव था, उसे न आनेसे इसके वर्णनका अवसर ही नहीं मिल सका। अद्भुत-रसका साधारण वर्णन 'गीतावली'में मिलता है। बाल-काण्डमें पद १, २, १२,और२२, में जहाँ रामकी बाललीलाओंका वर्णन है; अयोध्या-काण्डमें पद १७–४२ में, जिसमें वन-मार्गमें तपस्वी-वेष धारणकर राम, लक्ष्मण और सीताको चलते समय इनके प्रति लोगोंका आकर्षण दिखाया गया है और लंका-कांडमें हनुमान्-द्वारा संजीवनी लानेके लिए जो पद लिखे गये हैं, अर्थात् १० वें, ११ वें पदमें अद्भुत-रसकी व्यंजना हुई है। शान्त-रसका वर्णन सुन्दर-काण्डके अन्तर्गत ३७ से ४६, मात्र दस पदोंमें मिलता है, जिसमें विभीषणका श्रीरामकी शरणमें आनेका प्रसंग है।

डा० श्रीरामकुमार वर्माके मतानुसार 'गीतावली'में कविके रस-निरू-

पक्षके अन्तर्गत एक दोष है—"उसमें शृङ्गारको छोड़ अन्य रसोंमें आत्मानुभूति नहीं है। परुष रसोंकी व्यंजना तो कहीं-कहीं केवल उद्दीपन विभावोंके द्वारा ही की गयी है। यह भी देखनेमें आता है कि स्थायी भावके चित्रणके बाद तुलसीदासने सचारीभावोंके चित्रणका प्रयत्न बहुत कम किया है।*

कुछ भी हो इतना तो मानना ही होगा कि 'गीतावली' में अनेक स्थलोंपर कविने मनोदशाओंके अनेक करुण-चित्र अंकित कर रचनाको सजीव कर दिया है। यद्यपि 'गीतावली' मे 'मानस' तथा 'विनय-पत्रिका' की भाँति आध्यात्मिक और दार्शनिक सिद्धान्तोंकी झलक नहींके बराबर है, किन्तु राम-कथाके कोमल अंशोंका प्रकाशन तो इस ग्रन्थमें सफलतापूर्वक हुआ ही है। भाषामें तद्भव और तत्सम दोनों प्रकारके शब्दोंके प्रयोगसे इसमें ब्रजभाषा अत्यन्त मधुर और स्वाभाविक बन गयी है। इनकी रचनासे कहा जा सकता है—जिस प्रकार कविका अवधीपर पूर्ण अधिकार था, उसी प्रकार ब्रज-भाषापर भी क्षमता थी। इसमें भी अलंकारोंका यथास्थान प्रयोग मौलिक और स्वाभाविक है, किन्तु प्रायः उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, दृष्टान्त, काव्यलिंग और अप्रस्तुत प्रशंसा अलंकारोंका ही प्रयोग है। गुणोंमें माधुर्य और प्रसादका प्राधान्य है। एक ही प्रकारकी उपमाओंका आवर्त्तन अनेक बार हो गया है। रामके सौन्दर्य-कथनके प्रसंगमें कामदेवकी उपमा अधिक बार दी गयी है। इसी प्रकार बादल और मोर भी अधिक बार याद किए गए हैं। 'गीतावली' का सबसे महत्वपूर्ण अंश वह है, जिसमें रामके सौन्दर्य और ऐश्वर्यका कथन है।

छन्दोंकी दृष्टिसे 'गीतावली' में किसी एक छन्दको विशेष रूपसे न अपनाकर आसावरी, जयतश्री, बिलावल, केदारा, सोरठ, धनाश्री, कान्हरा, कल्याण, ललित, विभास, नट, टोड़ी, सारग, सूहो, मलार, गौरी, मारू,

---

* देखिए 'हिन्दी-साहित्यका आलोचनात्मक इतिहास' पृ० ४०७।

भैरव, चंचरी, वसन्त तथा रामकली आदि रागोंकी योजनाके दर्शन होते हैं।

(ई) विनय-पत्रिका—इसका रचना-काल वेणीमाधवदासने सं० १६३६ के लगभग और कुछ विद्वानोंने सं० १६६६ तथा १६८० के बीच माना है। वर्ण्य-विषयकी दृष्टिसे विनय-पत्रिकामें कोई कथा ऐसी नहीं है, जो प्रबन्धात्मक-काव्य माननेमें सहायक हो, इसमें तो भक्ति-संबंधी कविकी प्रार्थना अपने उद्धारके लिए अपने इष्टदेवसे पदोंमें की गयी है। गोस्वामी तुलसीदास स्मार्तवैष्णव थे, इसलिए विनय-पत्रिकामें इन्होंने पाँचों देवताओं—विष्णु, शिव, दुर्गा, सूर्य और गणेश—की स्तुतिसे रचना प्रारम्भ की है। भगवान् श्रीराम विष्णु रूप हैं, जिनकी स्तुति तो ग्रन्थमें सबसे अधिक है। आरम्भमें शेष चारों देवताओंकी वन्दना करके तब ग्रन्थकी रचना की गयी है। पदोंमें रचना होनेसे 'विनय-पत्रिका' मुक्तक रचना है, जिसमें सम्पूर्ण प्रबन्धात्मकताकी रक्षा नहीं हो सकती थी। इसमें कविने आत्म-निवेदन किया है, जिसमें भावोंका नियमन नहीं हो सका है। किन्तु श्रीवियोगी हरिजीने यह नहीं माना है, वे लिखते हैं :—

"कोष-काव्य होते हुए भी 'विनय-पत्रिका' का क्रम बड़ा ही सुन्दर है। किसी-किसीके मतसे यह ग्रन्थ गोसाईंजीके फुटकर पदोंका संग्रह-मात्र है, पर हमें यह कथन सत्य नहीं जान पड़ता। हो सकता है, इसके कुछ पद समय-समयपर बनाए गये हों, किन्तु इनकी रचना यथाक्रम ही हुई है। राजा-महाराजाके पास कोई बाला-बाला अर्जी नहीं भेजता। पहले दरबारके मुसाहिबोंको मिलना पड़ता है, तब कहीं पैठ होती है। इस बातको ध्यानमें रखकर गोसाईंजीने पहले देवी-देवताओंको मनाया है, तब वहीं हजूरमें अर्जी पेश की है। श्रीगणेश श्रीगणेशजीकी वन्दनासे किया गया है। फिर भगवान् भास्करकी वन्दना की गयी है। अनेक जन्म-संचित अविद्या-अन्धकारके दूर करनेके लिए मरीचिमालीकी स्तुति युक्तियुक्त ही है। फिर पार्वती-वल्लभ जगद्गुरु शिवका गुणगान किया गया है।

यहींसे कल्याणका प्रशस्त पथ दृष्टिगोचर होता है। कलिको डराने-धमकानेके लिए भीषण मूर्ति भैरवका भी ध्यान किया गया है। तदनन्तर पार्वती, गंगा, यमुना, काशी और चित्रकूटका यशोगान किया गया है... अब यहाँसे हनुमानजीकी वन्दना प्रारम्भ होती है। यह गोसाईंजीके खास वकील हैं। इनके आगे अपनी सारी व्यथा-कथा खोलकर रख दी है।...इसके बाद लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्नसे विनय की है। यहाँ तक दरबारके सारे मुसाहिब साथ लिये गये हैं। अब किसीकी ओरसे कोई शंका नहीं है। श्रीरघुनाथजीके सामने अपनी चर्चा छेड़नेके लिए गोसाईं-जीने जनकनन्दिनीजीको क्या ही उक्ति बताई है:—

"कबहुँक अंब अवसर पाइ।
मेरियो सुध द्याइबी, कछु करुन कथा चलाइ॥"

किसी पदमें स्वामीका प्रभुत्व, तो किसीमें सौहार्द्र वा किसीमें औदार्य एवं शील प्रदर्शित किया गया है। किसी पदमें जीवका असामर्थ्य, किसीमें आत्म-ग्लानि वा किसीमें मनोराज्य दिखाया गया है, किसी पद-में अपनी राम-कहानी सुनाई गयी है तो किसीमें अत्याचार-पीड़ित मानव-समाजका प्रतिनिधित्व स्वीकार किया गया है। इस प्रकार २७६ पद तक पत्रिका लिखी गयी है। पत्रिका पूरी हो चुकी। अब पेश कौन करे? फिर हनुमान, शत्रुघ्न, लक्ष्मण और भरतसे प्रार्थना की गयी। सेवक होनेके कारण अगुवा बननेका किसीको साहस न हुआ। एक दूसरे-का मुँह देखने लगे। पर सबमें लक्ष्मण अधिक ढीठ थे उनपर श्रीराम-चन्द्रजीका अपरमित स्नेह था। सो उन्होंने पत्रिका पेश की, यहीं ग्रन्थ समाप्त होता है।*

'विनय-पत्रिका'में छः प्रकारके पद हैं—१—प्रार्थना या स्तुति, २—

---

* देखिये 'विनय-पत्रिका हरितोषिणी टीका', श्रीवियोगीहरिजी कृत अनुवाद पृ० १५, १६ और १७।

स्थानोंका वर्णन ३—मनके प्रति उपदेश; ४—संसारकी निस्सारता, ५—ज्ञान-वैराग्य-वर्णन और ६—आत्मचरित्र-संकेत।

प्रार्थना या स्तुति जिसके अन्तर्गत गणेशसे राम तककी वन्दना की गयी है, रूपकों और कथाओं द्वारा गुण-वर्णनके पद और हैं। रूपवर्णन अलंकारों द्वारा तथा रामकी भक्ति-याचना पदोंकी अन्तिम पंक्तियोंके द्वारा की गयी है। स्थानोंके वर्णनमें चित्रकूट तथा काशीका विवरण मिलता है। रामकी प्रार्थनाके प्रसगमें रामकी लीला, नख-शिख-वर्णन, हरिशंकरी रूप, दशावतारी महिमा तथा आत्म-निवेदनके भावोंकी व्यंजना हुई है।

इस ग्रन्थमें वर्णित भावनाएँ स्वतन्त्र हैं। कहीं कवि संसारकी निस्सारता का वर्णन करता है, तो कहीं मनको उपदेश देता है। रचनामें कहीं कविके व्यक्तिगत जीवनकी व्यंजना है, तो कहीं भगवान्‌के दशावतारोंसे सम्बन्ध रखनेवाली उदारता तथा भक्तवत्सलताकी पौराणिक कथाओंकी झलक है। यही कारण है कि गणिका, अजामिल, गज, व्याध और अहिल्या आदि-की इतिवृत्तोंका बार-बार आवर्त्तन हुआ है। क्योंकि कविका हृदय भक्तिसे भरा है, जिससे वह भगवान्‌के गुणगानमें सर्वथा संलग्न है और रामकी भक्तिमें वह अनेक साधना-पद्धतियों पर अनेक पदोंकी रचना करता है। भक्तिकालमें तुलसीदासके पूर्व विद्यापति, कबीर और सूरदासने जिस गीत-पद्धतिपर भक्ति-भावनाकी अभिव्यंजना की थी, उसे उन्होंने भी अपनाया। विद्यापतिने जयदेवका अनुसरण करते हुए गीतगोविन्द'की रचना-शैलीको अपनाया; किन्तु राधा कृष्णका गुण-गान करते हुए भी वे शुद्ध भक्ति-भावना की स्थापना अपने पदोंमें न कर पाये। इसी प्रकार महात्मा कबीरकी रचना भक्तियुक्त होनेपर भी साकार रूपके निरूपणमें न आ सकी। क्योंकि आत्म-समर्पणकी भावना उनकी रचनामें स्थिर ही न हो सकी। ऐकेश्वरवादकी भावना तथा रहस्यवादकी अनुभूति, इन दोनोंने मिलकर कबीरकी भक्तिकी उपासनाका रूप दे दिया था; जिससे स्पष्ट है कि विद्यापति और कबीर महात्मा तुलसीके समक्ष भक्तिका कोई आदर्श न उप-

स्थित कर सके थे, अतः तुलसीकी भक्तिका आदर्श एक मौलिक प्रयास था। रहे सूरदास, उनकी उपासनाका दृष्टिकोण तुलसीदासकी उपासनाके दृष्टिकोणसे भिन्न था, उनकी (सूरकी) भक्ति सख्यभावके अन्तर्गत है और तुलसीकी भक्ति दास्यभावके अन्तर्गत। महात्मा सूरकी रचनामें संस्कृतकी कोमल-कान्त पदावली एवं अनुप्रासोंकी वह योजना नहीं है, जो तुलसीदासकी रचनामें पायी जाती है। आचार्य शुक्लजी लिखते हैं—"दोनों भक्त-शिरोमणियोंकी रचनामें यह भेद ध्यान देने योग्य है और इसपर ध्यान अवश्य जाता है। गोस्वामीजीकी रचना अधिक संस्कृत-गर्भित है, पर इसका अभिप्राय यह नहीं है कि इनके पदोंमें शुद्ध देश भाषाका माधुर्य नहीं है। उन्होंने दोनों प्रकारकी मधुरताका बहुत ही अनूठा मिश्रण किया है।*

इसके अतिरिक्त गोस्वामीजीके समकालीन कवियोंने भी पुष्टिमार्गका अवलम्बन कर भक्तिकी विवेचना की; परन्तु उनकी रचनाओंमें भक्ति-भावनाका समावेश होते हुए भी आत्म-समर्पणकी भावनाकी व्यंजना नहीं हो पायी है। इस विचारसे विनय-पत्रिका' हिन्दी-साहित्यमें अपना एक मौलिक दृष्टिकोण उपस्थित करती है तुलसीदासकी इस रचनामें (दास्य-भावकी भक्तिमें) आत्माकी समग्र वृत्तियोंकी व्यंजना सफल रूपसे हुई है।

'विनय-पत्रिकामें कविने संगीतका आधार लिया है, हर्ष और करुण-की भावनामें जयतश्री, केदारा, सोरट तथा आसावरी; वीरकी भावनामें मारू और कान्हरा; शृङ्गारकी भावनामें ललित, गौरी, सूहो और बसन्त; शान्तकी भावनामें रामकली, विभास, कल्याण, मलार और टोड़ीका राग प्रयोगमें लाया गया है। तुलसीदासने विशेष रागिनीमें भावना विशेषके लिए रचना की है। कुल मिलाकर विनय-पत्रिकाके अंतर्गत २१ रागोंमें आत्म-निवेदन है, जिनके नाम हैं—बिलावल धनाश्री, रामकली,

---

* देखिए "हिन्दी-साहित्यका इतिहास" परिवर्द्धित सं० पृ० १३५।

वसन्त, मारू, भैरव, कान्हरा, सारंग, गौरी, दण्डक, केदारा, आसावरी, जयतश्री, विभास, ललित, टोड़ी, नट, मलार, सोरठ, भैरवी और कल्याण; किन्तु ध्यान देनेकी बात है कि इस प्रसंगमें भावोंका तात्पर्य रस नहीं है।

'विनय-पत्रिका'में एक ही रसकी व्यंजना है, वह है शान्त-रस। विविध भाव उसके संचारी होकर ही आए हैं। "विनय-पत्रिका" में शान्त-रसकी जितनी मार्मिक-व्यंजना हुई है, 'मानस'को छोड़कर किसी और ग्रन्थमें वह देखनेको नहीं मिलती। 'विनय-पत्रिका' में शान्त-रसके प्राबल्यसे किसी और रसके प्रस्फुटनका अवसर कविको नहीं मिल सका है। क्योंकि इसमें कविकी आत्म-निवेदनकी भावना प्रबल है। जितने और भी रस रचनामें आए, वे सब शान्त रसके ही संचारी बन गए हैं। सूरदासके भी विनयके पद महत्वपूर्ण हैं। किन्तु तुलसीके विनयके पदोंकी भाँति उनमें अनुभूतिकी गहराई नहीं है। जो प्रौढ़ता तुलसीदासके स्थायी भावमें झलकती है, वह सूरदासके स्थायीभावमें नहीं मिलती; क्योंकि रसके आलम्बन विभावको रामचरितने जो अवधेश और मर्यादा पुरुषोत्तमके गुणोंसे विभूषित है बहुत सहायता दी है। सूरदासको कृष्ण-चरितसे यह उपकरण नहीं प्राप्त हो सका है। दूसरा कारण यह है कि तुलसीदासकी उपासना 'दास्यभाव'की है। जिससे आत्म-निवेदनमें भी प्रौढ़ता आ गयी है।

'विनय-पत्रिका'की रचनाके पदोंको नीचेकी श्रेणियोंमें विभक्त किया जा सकता है :—

(१) दीनता—"कैसे देउँ नाथहिं खोरि।

काम-लोलुप भ्रमत मन हरि, भगति परहरि तोरि॥"

(२) मानमर्षता—'काहे ते हरि! मोहि बिसारो।

जानत निज महिमा, मेरे अघ तदपि न नाथ सँभारो॥
नाहिन नरक परत मोकहँ डर, जद्यपि हौं अति हारो॥
यह बड़ि त्रास दासतुलसी प्रभु नामहु पाप न जारो॥'

'केशव कारन कौन गोसाईं ।
जेहि अपराध असाधु जानि मोहिं तजेउ अग्य की नाईं ॥
जद्यपि नाथ ! उचित न होत अस प्रभु सों करौं ढिठाई ॥
तुलसिदास सीदति निसिदिन देखत तुम्हारि निठुराई ॥'

(३) "भय-दर्शना—राम कहत चलु राम कहत चलु……।"
(४) मनोराज्य—"कबहुँक हौं इहि रहनि रहौंगो……।"
(५) विचारणा—"केशव कहि न जाइ का कहिए……।"
(६) निर्वेद—"अब लौं नसानी अब न नसैहौं…।"
(७) ग्लानि—"ऐसी मूढ़ता या मन की।"
(७) विषाद-सम्बन्धी पद—'रघुबर रावरि यहै बड़ाई ॥'
(८) चिन्ता-सम्बन्धी पद—"ऐसे राम दीन-हितकारी ॥"
इन उपर्युक्त श्रेणियोंमें विनयके प्रायः सभी पद आ जाते हैं।

'विनय-पत्रिका'में काव्य-सौष्ठव—यों तो 'रामचरित-मानस' जो गोस्वामीजीकी ही नहीं, समग्र हिन्दी-साहित्यकी सर्वश्रेष्ठ रचना है, जो साहित्य-शास्त्रके सभी लक्षणोंसे संयुक्त है, जो भावाभि-व्यञ्जना और भाव-प्रवणता आदि दृष्टियोंसे महत्वपूर्ण कृति है, छोड़कर इसकी समानतामें अन्य कोई ग्रन्थ नहीं हो सकता। यहाँ पर 'विनय-पत्रिका'के काव्यकी उत्कृष्टताका थोड़ा प्रसंग उपस्थित करना आवश्यक है।

गोस्वामीजीके सभी अन्य धर्म-प्रधान-साहित्यिक-ग्रन्थ हैं और 'विनय-पत्रिका' भी ऐसी ही रचना है। इसमें जो उक्ति-वैचित्र्यके साक्षात्कार होते हैं और जो अर्थगौरवका जीता-जागता वर्णन मिलता है, वह अन्यत्र कम पाया जाता है। कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते हैं:—

"नाहिन नरक परत मोकहँ डर जद्यपि हौं अति हारो।
यह बड़ि त्रास दासतुलसी प्रभु नामहु पाप न जारो ॥"

अर्थात्—मुझे सुगति पानेकी चिन्ता नहीं है, चिन्ता है तो केवल

इस बातकी कि प्रभुकी अनन्त शक्तिकी भावना बाधित हो गई। इस प्रकार एक दूसरा पद :—

'विषय-वारि मन-मीन भिन्न नहिं होत कबहुँ पल एक।
ताते सहौं बिपति अति दारुन जनमत जोनि अनेक॥
कृपा-डोरि बनसी-पद-अंकुस, परम-प्रेम-मृदु चारो।
एहि बिधि बेधि हरहु मेरो दुख कौतुक राम तिहारो॥"

कितनी अनूठी उक्तियाँ हैं। एक और पद देखिए :—

मैं केहि कहौं बिपति अति भारी। श्रीरघुबीर धीर हितकारी॥
मम हृदय भवन प्रभु तोरा। तहँ बसे आइ प्रभु चोरा॥
अति कठिन करहिं बरजोरा। मानहिं नहिं विनय निहोरा॥
तम, मोह, लोभ, अहँकारा। मद, क्रोध, बोध रिपु मारा॥

\+ \+ \+

कह तुलसिदास सुनु रामा। लूटहिं तस्कर तव धामा॥
चिन्ता यह मोहिं अपारा। अपजस नहिं होइ तुम्हारा॥"

इस प्रकारकी उक्तियोंके अनेक उदाहरण उपस्थित किए जा सकते हैं। भक्तिरसके पदोंसे सारा ग्रन्थ भरा पड़ा है। आचार्य शुक्लजीके शब्दों में :—

"भक्ति-रसका पूर्ण परिपाक जैसा विनय-पत्रिकामें देखा जाता है, वैसा अन्यत्र नहीं। भक्तिमें प्रेमके अतिरिक्त आलम्बनके महत्व और अपने दैन्यका अनुभव परम आवश्यक अंग है। तुलसीके हृदयसे इन दोनों अनुभवोंके ऐसे निर्मल शब्द-स्रोत निकले हैं, जिसमें अवगाहन करनेसे मनकी मैल कटती है और अत्यन्त पवित्र प्रफुल्लता आती है।*

१२—तुलसीकी राम-कथाकी दार्शनिक पृष्ठभूमि (१)—राम-नामके विविध अर्थ—कितने ही जन दाशरथि रामको विष्णुका अवतार

---

*—देखिए 'विनय-पत्रिका' श्रीवियोगीहरिजीकृत हरितोषिणी टीकाकी भूमिका पृ० १।

मानते हैं, कितने ही उन्हें परात्पर ब्रह्म और कितने ही जन उन्हें मर्यादा पुरुषोत्तम कहते हैं तथा उन्हें ईश्वरका अवतार माननेसे इन्कार कर देते हैं। कहनेका तात्पर्य सबकी राय या मान्यता एक-सी नहीं है। अतः इसके निर्णयकी समस्या कठिन है। कठिन इसलिए है कि किसी एक निर्णय पर सब सहमत न होंगे। किसी भी निर्णयपर पहुँचनेके बाद भी प्रश्न-वाचक चिन्हका निवारण नहीं किया जा सकता। क्योंकि बहुतोंने प्रमाण-प्रयासे और शास्त्रीय-पद्धतिसे भी रामको परात्परब्रह्म, विष्णुका अवतार घोषित किया और प्रमाणित भी किया; किन्तु दूसरोंने इस मान्यताको तर्कों द्वारा खण्डित कर दिया। अतः इसके संबंधमें कुछ भी कहने और प्रमाणित करनेकी आवश्यकता नहीं है, क्योंकि अब तक जो कुछ भी कहा और सुना गया वही पर्याप्त है। किन्तु इतना कह देनेसे भी काम नहीं चल सकता, यहाँपर इस वाद-विवादसे तटस्थ होकर 'राम' शब्दके सम्बन्धमें प्राचीन साहित्य और परम्परासे जो स्पष्ट है, उसपर विचार करना है, क्योंकि राम-कथाके लेखकोंने रामके जिस रूपकी कल्पना करके रचना की, उस भाव-भूमिपर हमें उतरना ही होगा और उन्हीं रचनाओंके दृष्टिकोणसे रामके उसी रूपको देखते हुए विचार करना होगा। राम ईश्वर थे या नहीं; यहाँपर इस प्रश्नके उत्तरकी आवश्यकता नहीं। यहीं-पर इतना ही कहना पर्याप्त है कि रामके व्यक्तित्वका मूल्यांकन किस प्रकार कवियोंने किया। उन कवियोंके दृष्टिकोण-विशेषके अनुसार ही रामके रहस्यपर प्रकाश डाला जाय, क्योंकि यहाँ यही प्रधान प्रश्न है।

तो, प्राचीन-साहित्यमें 'राम' शब्दके कितने अर्थ हुए? सर्वप्रथम अवतारवादकी भावना शतपथ-ब्राह्मणमें मिलती है। प्रारंभमें विष्णुकी अपेक्षा प्रजापतिको इस संबंधमें अधिक महत्व दिया जाता था। कुछ विद्वानोंके मतानुसार शतपथ ब्राह्मणसे हो प्रजापतिके मत्स्य (दे० १.८.१.१.); कूर्म (७.५.१.५. १४. १. २-११) के अवतार हुए थे। प्रजापतिके वाराह रूप धारण करनेकी कथा तैत्तरीय ब्राह्मण (१.१.३.५)

और काठक संहितामें भी (८. २) बीज रूपमें पायी जाती है।

'महाभारत'में मत्स्य ब्रह्माका अवतार माना गया है (दे० ३,१८७) किन्तु कालांतरमें जब विष्णु श्रेष्ठ माने जाने लगे, तो मत्स्य, कूर्म और वाराह विष्णुके अवतार माने जाने लगे। शतपथ-ब्राह्मणमें—(१.२.५.५.)— वामनावतार प्रारम्भसे ही विष्णुका अवतार माना जाता है। कुछ विद्वान् इसे ऋग्वेदकी एक कथाका विकसित रूप मानते हैं—(दे० ऋ० १.२२. १७); शतपथ ब्राह्मण (१. २. ५. १), तैत्तरीय आरण्यकके परिशिष्टमें (१०१.६) विष्णुके अवतार नृसिंहकी कथा उद्धृत हैं, ।†

उपर्युक्त विवरणोंसे स्पष्ट है कि अवतारवाद बहुत प्राचीनकालसे ब्राह्मण-साहित्यमें माना जा चुका था। आगे चलकर कृष्णावतारके साथ-साथ अवतारवादके विकासमें विद्वानोंने महत्वपूर्ण परिवर्तन माना। वासुदेव कृष्ण भागवतोंके इष्टदेव थे, जिन्हें कुछ विद्वान् पहले विष्णुसे संबंधित नहीं मानते थे। समय पाकर लगभग तीसरी शताब्दी ई० पूर्वसे वासुदेव कृष्ण और विष्णुकी अभिन्नताकी भावनाका उद्भव हुआ।*

बौद्धधर्म और भागवतका भक्ति-मार्ग, दोनोंको समान रूपसे ब्राह्मणोंके कर्मकाण्ड एवं यज्ञकी प्रधानताके प्रतिक्रियास्वरूप विकसित और पल्लवित मानते हुए अवतारवादके विकासको बौद्ध-धर्मका प्रभाव माना जाता है। विद्वानोंका अनुमान है कि बौद्ध-धर्म एवं भागवतके भक्ति-मार्गके पल्लवनसे ब्राह्मणोंका धर्म-विषयमें एकाधिकार जब लुप्त हो गया, तब बौद्ध-धर्मका अधिक प्रचार देखकर ब्राह्मणोंने भागवतोंको अपनी ओर आकर्षित करनेके उद्देश्यसे उनके देवता वासुदेव कृष्णको विष्णु-नारायणका अवतार मान लिया, जिससे अवतारवादको बड़ा प्रोत्साहन मिला और साथ ही साथ विष्णुकी महिमा बढ़ने लगी। इस प्रकार धीरे-

---

† देखिए 'राम-कथा,' पृ० १४४ रेवरेण्ड फ़ादर कामिल बुल्केकृत।

* देखिए 'रामकथा' पृ० १४४।

धीरे अवतारवादकी समस्त भावना विष्णु-नारायणमें केन्द्रित होने लगी और वैदिक-साहित्यके अन्य अवतारोंके कार्य विष्णुमें ही आरोपित किए गए। इधर जब अनेक शताब्दियोंसे रामका आदर्श भारतीय जनताके समक्ष प्रस्तुत था, तब रामायणकी लोकप्रियताके साथ-साथ रामका महत्व भी बढ़ता रहा, उनकी वीरताके वर्णनमें अलौकिकताका अंश भी बढ़ने लगा। रावण पाप और दुष्टताका प्रतीक बन गया; राम पुण्य तथा सदाचारके। अतः इस विकासकी स्वाभाविक परिणति यह हुई कि कृष्णकी भाँति राम भी विष्णुका अवतार माने जाने लगे। यद्यपि इस मान्यताका समय अभी तक विद्वानोंने निर्धारित नहीं किया है; किन्तु रामायणमें उत्तर-काण्डके अन्तर्गत वर्णित अवतारवाद-सम्बन्धी वर्णित सामग्रीके पहलेका इसे माना है।

प्राचीनतम पुराण—वायु, ब्रह्माण्ड, विष्णु, मत्स्य और हरिवंश आदि—में अवतारोंके वर्णनमें रामका नाम आया है और उधर बौद्ध एवं जैन-साहित्यमें रामकथाका जो वर्णन मिलता है, उसके अन्तर्गत बौद्धोंने ईस्वीके अनेक शताब्दियों पहले रामको बोधिसत्व मानकर और जैनियोंने अपने धर्ममें आठवें बलदेवके रूपमें मानकर उस समयके तीन प्रचलित धर्मोंमें एक निश्चित स्थान प्रदानकर रामके महत्वका बढ़ाया है।

भारतीय-भक्तिमार्गका बीजारोपण वेदोंमें ही हुआ था और उसका पल्लवन भागवत-धर्ममें हुआ। भागवतोंका भक्तिमार्ग भी बौद्ध एवं जैन धर्मोंके समान कर्मकाण्ड और यज्ञ-प्रधान ब्राह्मण-धर्मकी प्रतिक्रिया-स्वरूप उत्पन्न तो हुआ; किन्तु इसमें विशेषता यह थी कि वेदोंकी निन्दाको इसमें स्थान नहीं मिला। आगे चलकर ब्राह्मण-धर्म और भागवत-धर्मका समन्वय हुआ, जिसके फल-स्वरूप वैष्णव-धर्मकी उत्पत्ति माना जाती है। इसमें प्राचीन वैदिक देवता विष्णु भागवतोंके देवता वासुदेव कृष्णके अवतार माने गए और भक्ति-भावना इन्हीं विष्णु-नारायण वासुदेवकृष्णमें केन्द्रित होकर उत्तरोत्तर विकासोन्मुख होती गयी। विष्णुके दूसरे अवतार

भी माने जाने लगे, जिसमें सबसे महत्वपूर्ण रामावतार ही हुआ।*

यद्यपि कुछ विद्वान् राम-भक्तिकी परम्पराके सम्बन्धमें यह मानते हैं कि ईस्वी सन्‌के प्रारंभसे राम विष्णुके अवतार माने जाते हैं, किन्तु उनकी विशेष रूपसे प्रतिष्ठा ग्यारहवीं शताब्दीके लगभग प्रारम्भ हुई तथा राम और राधाकी एकांतिक पूजा जिन वैष्णव-संहिताओंमें प्रतिपादित की गयी; वे अर्वाचीन हैं और पंचरात्रके प्रामाणिक साहित्यके अनुकरणसे उत्पन्न हुई हैं।†

परन्तु भक्ति-परम्पराके मूलस्रोतका अस्तित्व वैदिक-साहित्य तकमें भी ढूँढ़ा जाता है और किसी आरम्भिक रूपका पता मोहेञ्जोदड़ोके भग्नावशेषोंके भी आधारपर माना जाता है।‡ "भक्ती द्राविड़ ऊपजी" के अनुसार कुछ विद्वान् यह भी मानते हैं कि राम-भक्तिका आविर्भाव दक्षिण भारतमें ही हुआ था।

वैष्णव-संहिताओं और उपनिषदोंमें भी राम-भक्ति और राम-पूजाका शास्त्रीय प्रतिपादन किया गया है। यद्यपि सायणके अनुसार 'राम' का अर्थ 'रमणीय पुत्र' है—(राम-कथा पृ० ४) किन्तु श्रीरामपूर्वतापनीयोपनिषदमें 'राम' शब्दकी व्युत्पत्तिके सम्बन्धमें लिखा है—ॐ सच्चिदानन्दमय महाविष्णु श्रीहरि जब रघुकुलमें दशरथजीके यहाँ अवतीर्ण हुए, उस समय उनका नाम 'राम' हुआ, जिसकी व्युत्पत्ति इस प्रकार है—'जो महीतलपर स्थित होकर भक्तजनोंका सम्पूर्ण मनोरथ पूर्ण करते और राजाके रूपमें सुशोभित होते हैं, वे राम हैं'—ऐसा विद्वानोंने लोकमें

---

* देखिए 'राम-कथा' पृ० १४६।

† सर रामगोपाल भंडारकर और डा० श्राडरका मत (राम-कथासे उद्धृत) पृ० १५०।

‡ देखिए "भारतीय-साहित्यकी सांस्कृतिक रेखाएँ" श्रीपरशुराम चतुर्वेदी कृत पृ० २।

'राम' शब्दका अर्थ व्यक्त किया है। ("राति राजते वा महीस्थितः सन् इति रामः"—इस विग्रहके अनुसार 'राति' या 'राजते'का प्रथम अक्षर 'रा' और 'महीस्थितः' का आदिम अक्षर 'म' लेकर 'राम' बनता है; इसी प्रकार अन्यत्र भी समझना चाहिए।) राक्षस जिनके द्वारा मरणको प्राप्त होते हैं, वे राम हैं। अथवा अपने ही उत्कर्षसे इस भूतलपर उनका 'राम' नाम विख्यात हो गया (इसकी प्रसिद्धिमें कोई व्युत्पत्तिजनित अर्थ ही कारण है, ऐसा नहीं मानना चाहिए) अथवा वे अभिराम (सबके मनको रमानेवाले) होनेसे राम हैं अथवा जैसे राहु मनसिज (चन्द्रमा) को हतप्रभ कर देता है, उसी प्रकार जो राक्षसोंको मनुष्य रूपसे प्रभाहीन (निष्प्रभ) कर देते हैं, वे राम हैं। अथवा वे राज्य पानेके अधिकारी महिपालोंको अपने आदर्श-चरित्रके द्वारा धर्ममार्गका उपदेश देते हैं, नामोच्चारण करनेपर ज्ञानमार्गकी प्राप्ति कराते हैं, ध्यान करनेपर वैराग्य देते हैं और अपने विग्रहकी पूजा करनेपर ऐश्वर्य प्रदान करते हैं; इसलिए भूतलपर उनका नाम 'राम' नाम पड़ा होगा। परन्तु यथार्थ बात तो यह है कि उस अनन्त, नित्यानन्दस्वरूप चिन्मय ब्रह्ममें योगीजन रमण करते हैं; इसलिए वह परब्रह्म परमात्मा ही 'राम' पदके द्वारा प्रतिपादित होता है ॥ १-६ ॥"*

इसके अतिरिक्त श्रीरामपूर्वतापनीयोपनिषद्के द्वितीय खण्डमें श्रीराम-के स्वरूपपर प्रकाश डाला गया है और राम-बीजकी व्याख्या की गयी है। जो इस प्रकार है:—

"भगवान् किसी कारणकी अपेक्षा न रखकर स्वतः प्रकट होते या नित्य विद्यमान् रहते हैं, इसलिए 'स्वयंभू' कहलाते हैं। चिन्मय प्रकाश ही उनका स्वरूप है; अतः वे ज्योतिर्मय हैं। रूपवान होते हुए भी वे अनन्त हैं—देश, काल और वस्तुकी सीमासे परे हैं। उन्हें प्रकाशित

* देखिए—उपनिषद् अंक—गीता प्रेस, गोरखपुर पृ० ५३१।

करनेवाली दूसरी शक्ति नहीं है, वे अपनेसे ही प्रकाशित होते हैं। वे ही अपनी चैतन्यशक्तिसे सबके भीतर जीवन रूपसे प्रतिष्ठित होते हैं, तथा तमोगुणका आश्रय लेकर समस्त जगत्की उत्पत्ति, रक्षा और संहारके कारण बनते हैं; ऐसा होनेसे ही यह जगत् सदा प्रतीतिगोचर होता है। यह जो कुछ दिखाई देता है, सब ॐकार है—परमात्मा-स्वरूप है। जैसे प्राकृत वटका महान् वृक्ष वटके छोटेसे बीजमें स्थिर रहता है, उसी प्रकार यह चराचर जगत् राम-बीजमें स्थित है ('राम' ही रामबीज है।) ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव—ये तीन मूर्तियाँ 'राम'—के रकारपर आरूढ़ हैं तथा उत्पत्ति, पालन एवं संहारकी त्रिविध शक्तियाँ अथवा बिन्दु, नाद और बीजसे प्रकट होनेवाली रौद्री, जेष्ठा और वामा—ये त्रिविध शक्तियाँ भी वहीं स्थित हैं। ('राम'का अक्षर-विभाग इस प्रकार है—र, आ, अ, और म्। इनमें रकार तो साक्षात् श्रीरामका वाचक है तथा उसपर आरूढ़ जो 'आ', 'अ' और 'म्' हैं, ये क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव—इन तीन देवोंके और उपर्युक्त त्रिविध शक्तियोंके वाचक हैं।) इस बीज-मन्त्रमें प्रकृति-पुरुष रूप सीता तथा राम पूजनीय हैं। इन्हीं दोनोंसे चौदह भुवनोंकी उत्पत्ति हुई है। इनमें ही इन लोकोंकी स्थिति है तथा उन आकार, अकार और मकार रूप ब्रह्मा, विष्णु और शिवमें इन सबका लय भी होता है। अतः श्रीरामने माया (लीला)—से ही अपनेको मानव माना। जगत्के प्राण एवं आत्मारूप इन भगवान् श्रीरामको नमस्कार है। इस प्रकार नमस्कार करके गुणोंके भी पूर्ववर्ती परब्रह्म-स्वरूप इन नमस्कार योग्य देवता श्रीरामके साथ अपनी एकताका उच्चारण करे अर्थात् दृढ़-भावनापूर्वक 'मैं श्रीराम ही ब्रह्म हूँ'-यों कहे ॥ १-४ ॥*

इसी प्रकार रामोपासनासे सम्बन्ध रखनेवाली 'श्रीरामोत्तरतापनीय'

---

* देखिए—उपनिषद् अंक (गीता-प्रेस गोरखपुर) पृ० ५३२

और 'श्रीरामरहस्य' दो अन्य उपनिषद् भी हैं जिनमें राम-यन्त्र, राम मन्त्र *और सीता मन्त्र आदिका उल्लेख है और जिसमें राम परम पुरुष और* सीता मूल प्रकृति मानी जाती हैं।

(?) राम और विष्णुका रहस्य—जिस राम भक्तिका प्रचार भारतवर्षमें हुआ, वह वैष्णव धर्मसे निकली। वैष्णव धर्मका आदि रूप *विष्णुके देवत्वमें और उसकी प्रधानतामें मिलता है।* विष्णु हिन्दुओंके वेदकालीन प्रमुख देवता हैं।† विष्णु—'विश' धातुसे व्याप्त होनेके अर्थमें आता है विष्णुमें सरक्षण एवं व्याप्त होनेकी भावना प्रमुख है। आगे चलकर आचार्यों और कवियों द्वारा इस भावनाने सामान्य जनतामें भी प्रचार पाया। *शतपथब्राह्मणमें तो विष्णु यज्ञ रूप होकर (वामन रूपसे)* असुरसे समग्र पृथ्वी प्राप्त कर लेते हैं और ऐतरेय ब्राह्मणमें विष्णु सर्व श्रेष्ठ देवता माने गये हैं। अग्निका स्थान सबसे छोटा है तथा दूसरे देवताओंका स्तर विष्णु और अग्निके मध्यका है,—

अग्निर वै देवानाम् अवमो। विष्णु परमम्।
तदन्तरेण सर्वा अन्या देवता ॥—ऐतरेय ब्राह्मण—१,१।

वाल्मीकि रामायणमें भी विष्णुका विशेष महत्व है।

महाराज दशरथके द्वारा जब पुत्रेष्टि यज्ञमें अपना यज्ञ भाग लेनेके *लिए सब देवता एकत्र हुए और सबसे अन्तमें*—

एतस्मिन्नन्तरे विष्णुरुपयातो महाद्युतिः।
शङ्ख चक्र गदा पाणिः पीतवासा जगत्पतिः ॥१४॥

—बा० रा० बालकाण्ड पञ्चदश सर्ग।

अर्थात् "इतने हीमें शङ्ख, चक्र, गदा और पीताम्बर धारण किए महातेजस्वी जगत्पति भगवान् विष्णु वहाँ आए।"

---

† ऋग्वेदमें वर्णन आता है—'अतो देवा अवन्तु नो यतो विष्णुर्विचक्रमे पृथिव्याः सप्तधामभिः ॥ १६ ॥ आदि

"जब वे (विष्णु) आकर पितामह ब्रह्मासे मिले और उनके समीप बैठ गए तब सभी देवताओंने बड़ी विनम्रताके साथ उनकी वन्दना की और कहा हे प्रभो ! आप सबकी भलाईके लिए अपने चार अंशोंसे महाराज दशरथकी तीनों रानियोंमें पुत्रभाव स्वीकार करें। महाभिमानी रावणको युद्धमें परास्तकर हम सबका भला करें।"—(१८। १६। २०। २१। २२। वा० रा० पं० सर्ग)

\+ + +

"पितामहपुरोगांस्तान्सर्वलोक नमस्कृतः।
अब्रवीत्रिदशान्सर्वान्समेतान्धर्म संहितान्" ॥ २६ ॥

अर्थात् "सर्वलोकोंसे नमस्कार किए जानेवाले अर्थात् सर्व पूज्य भगवान् विष्णुने, आए हुए एकत्रित ब्रह्मादि देवताओंसे कहा ॥"— (वा० स० बालकाण्ड श्लोक २६ सर्ग १५।')

'महाभारत', 'श्रीमद्भागवत् महापुराण', 'विष्णुपुराण', 'ब्रह्मवैवर्त्त पुराण' और 'ब्रह्माड पुराण' आदिमें भी विष्णुका बहुत ऊँचा स्थान घोषित किया गया है 'सर्वशक्तिमयो विष्णुः' 'शंख-चक्र-गदापाणिः पीत-वस्त्रः जगत्पति' आदि उदाहरणोंसे स्पष्ट है कि भगवान् विष्णु भारतीय-प्राचीन साहित्यमें सर्वश्रेष्ठ देवता माने गए हैं। आगे चलकर भगवान् विष्णु अवतारके रूपमें उसी श्रेष्ठतासे माने जाते हैं। संरक्षक होनेसे वे बहुत ही लोक-प्रिय देवता हैं। उनके सहस्र नाम हैं उनकी पत्नी लक्ष्मी या श्री हैं, जो समग्र सम्पति और वैभवकी स्वामिनी हैं। उनका स्थान वैकुण्ठ है और उनके वाहन अमित तेजस्वी पक्षिराज गरुड़ हैं। भगवान् विष्णु चतुर्भुज हैं, उनका वर्ण श्याम है उनके हाथोंमें पाँचजन्य नामक शंख, सुदर्शन नामक चक्र, कौमोदकी गदा और पद्म (कमल) हैं। 'सारंग' नामक उनका धनुष है, 'नन्दक' नामक उनकी तलवार है। उनके वक्षःस्थल पर श्रीवत्स (विष्णुके वक्ष स्थलपर भृगुके लात मारनेका चिन्ह अथवा बालोंका चक्र-समूह) है और कौस्तुभमणि है। उनकी भुजा

श्यामन्तकमणिसे सुशोभित हैं। कभी वे लक्ष्मीके साथ कमलपर बैठते हैं, कभी वे सर्प-शय्यापर विश्राम करते हैं और कभी वे गरुड़पर गमन करते हैं। संसारमें माने जानेवाले सभी देवताओंसे वैष्णव-धर्म केवल विष्णुको ही परब्रह्मके रूपमें मानता है। ब्रह्मा, विष्णु और महेशकी त्रिमूर्तिसे भी परे विष्णु ब्रह्मके आदि रूप हैं। इसीमें वैष्णव धर्मकी चरम भावना है।

विष्णुके अवतार राम और श्रीकृष्णको आगे चलकर आचार्योंने विशेष महत्व दिया। अनन्तकालसे आते हुए विष्णुकी श्रेष्ठताके विचारमें स्वामी शंकराचार्यके पश्चात् होनेवाले आचार्योंने (राम और कृष्णकी श्रेष्ठतामें)बहुत बड़ा जोर दिया स्वामी शंकराचार्यके सम्पर्कमें जब वैष्णव धर्म आया तब अपनी भक्तिके आदर्शके कारण उसे आचार्य शंकरके मायावादसे बड़ा संघर्ष करना पड़ा, जिसका पल्लवित रूप ग्यारहवीं शताब्दीमें जब स्वामी रामानुजाचार्य हुए, तब उनके श्री सम्प्रदायमें देखनेको मिलता है। आगे चलकर स्वामी निम्बार्काचार्यने विष्णुके अवतार भगवान् श्रीकृष्णकी परम्परासे आती हुई भक्ति और श्रेष्ठतामें योग दिया। इसी प्रकार मध्वाचार्यने भी इस विचारधाराको और भी पुष्ट किया। स्वामी रामानन्दजीने भी अनन्तकालसे आई हुई राम-भक्ति और उसकी श्रेष्ठताकी विचारधारापर बल दिया।

ऊपर लिखा जा चुका है कि अनन्तकालसे आती हुई राम-भक्ति यद्यपि विभिन्न मनीषियोंके द्वारा श्रेष्ठ पदको प्राप्त कर चुकी थी, किन्तु रामभक्तिका विशेष प्रचार स्वामी रामानन्दजीने किया। कालान्तरमें यही राम-भक्ति गोस्वामी तुलसीदासके द्वारा अपनी उन्नतिकी चरम सीमाको स्पर्श करने लगी। गोस्वामी तुलसीदासके रामके महत्वका विचार यहाँ कर लेना आवश्यक समझता हूँ। क्योंकि आर्षकालीन ग्रन्थोंमें रामका जो महत्व है, तुलसीदासके रामका महत्व उससे भी बढ़कर है। मनु और शतरूपाके घोर तप करनेपर उन्होंने उनसे कहलाया है :—

"उर अभिलाष निरन्तर होई। देखिय नयन परम प्रभु सोई॥
अगुन अखण्ड अनन्त अनादी। जेहि चिंतहि परमारथवादी॥
नेति नेति जेहि बेद निरूपा। निजानन्द निरुपाधि अनूपा॥
संभु बिरंचि बिष्नु भगवाना। उपजहिं जासु अंस तें नाना॥"

इस प्रकारकी कामनासे संयुक्त होकर मनु और शतरूपाने तेइस सहस्र वर्ष घोर तप किया। उन दोनोंका घोर तप देखकर :—

"बिधि हरि हर तप देखि अपारा। मनु समीप आए बहु बारा॥
माँगहु बर बहु भाँति लोभाए। परम धीर नहिं चलहिं चलाए॥"

किन्तु इतनेपर भी जब राजा मनु और उनकी रानी शतरूपा अपने तपसे विमुख न हुई और उनका शरीर हड्डियोंका ढाँचा मात्र रह गया था और उनके मनमें इतनेपर भी कुछ पीड़ा नहीं थी, तब 'विधि' 'हरि' तथा 'हर' से भिन्न सर्वज्ञ प्रभुने अनन्यगति (आश्रय) वाले तपस्वी राजा तथा रानीको 'निज दास' समझकर परम गम्भीर और कृपा रूपी अमृतसे सराबोर "वर माँगो मैं तुम्हारी अभिलाषा पूरी करूँगा। मेरा प्रण सत्य है, सत्य है, सत्य है" की आकाशवाणीसे उन दोनोंको अत्यन्त हर्षित कर दिया। वे दोनों बहुत हृष्ट-पुष्ट हो गए। उन 'परम प्रभु' को दण्डवत् प्रणाम कर मनुने कहा—हे प्रभो! यदि आपकी मेरे ऊपर कृपा है और आप प्रसन्न हैं तो:—

"सुनु सेवक सुरतरु सुर धेनू। बिधि-हरि-हर बंदित पद-रेनू॥
जौं अनाथ हित हम पर नेहू। तौ प्रसन्न होइ यह बर देहू॥
जो सरूप बस सिव मन माहीं। जेहि कारन मुनि जतन कराहीं॥
जो भुसुण्डि मन-मानस हंसा। सगुन अगुन जेहि निगम प्रसंसा॥
देखहिं हम सो रूप भरि लोचन। कृपा करहु प्रनतारति मोचन॥"

अर्थात् मुझे उस रूपका दर्शन दें, जिसका ध्यान सर्व वंदित स्वयं भगवान् शिव किया करते हैं अर्थात् वह रूप परात्पर ब्रह्मका है जिसके अंशसे अगणित ब्रह्मा, विष्णु और महेश उत्पन्न होते हैं; जिसे तुलसी-

दासजी 'परमप्रभु' कहते हैं। महाराज मनुके ऐसा कहनेपर 'परमप्रभु' उनके समक्ष प्रकट हुए, जिनका रूप है :—

"नील सरोरुह नीलमनि, नील नीरधर स्याम।
लाजहिं तन सोभा निरखि, कोटि कोटि सत काम॥

\+ + +

पद-राजीव वरनि नहिं जाहीं। मुनिमन मधुप बसत जिन्ह माहीं॥
बाम भाग सोभति अनुकूला। आदि सक्ति छबिनिधि जगमूला॥
जासु अंस उपजहिं गुनखानी। अगनित लच्छि उमा ब्रह्मानी॥
भृकुटि बिलास जासु जग होई। राम बाम दिसि सीता सोई॥

उपर्युक्त विवरणमें रामका वर्णन ब्रह्मा, विष्णु और महेशसे भिन्न परमसत्ताका है। इस प्रकारका वर्णन 'मानस' में स्थान-स्थानपर और भी हुआ है। दो-एक उदाहरण पर्याप्त होंगे।

"जग-पेखन तुम्ह देखनहारे। बिधि हरि संभु नचावन हारे॥
तेउ न जानहिं मरम तुम्हारा। और तुम्हहि को जाननिहारा॥"

काकभुशुण्डिके मनमें जब सन्देह हुआ:—

"प्राकृत सिसु इव लीला, देखि भयउ मोहि मोह।
कवन चरित करत प्रभु, चिदानन्द सन्दोह॥"

तब—"एतना मन आनत खगराया। रघुपति प्रेरित ब्यापी माया॥

\+ + +

मूँदेउँ नयन त्रसित जब भयऊँ। पुनि चितवत कोसलपुर गयऊँ॥
मोहिं बिलोकि राम मुसुकाहीं। बिहँसत तुरत गयउँ मुख माहीं॥
उदर माँझ सुनु अंडजराया। देखेउँ बहु ब्रह्माण्ड - निकाया॥
अति बिचित्र तहँ लोक अनेका। रचना अधिक एक तें एका॥
कोटिन्ह चतुरानन गौरीसा। अगनित उडुगन रबि रजनीसा॥
अगनित लोकपाल जम काला। अगनित भूधर भूमि बिसाला॥
सागर सरि सर बिपिन अपारा। नाना भाँति सृष्टि बिस्तारा॥

सुर मुनि सिद्ध नाग नर किंनर। चारि प्रकार जीव सचराचर॥
जो नहिं देखा नहिं सुना, जो मनहूँ न समाइ।
सो सब अद्‌भुत देखेउँ, बरनि कवनि बिधि जाइ॥ क॥ ८०॥
एक एक ब्रह्माण्ड महुँ रहेउँ बरस सत एक।
एहि बिधि देखत फिरेउँ मैं अंड कटाह अनेक॥ ख। ८०॥
लोक लोक प्रति भिन्न बिधाता। भिन्न बिष्नु सिव मनु दिसित्राता॥
नर गंधर्व भूत बेताला। किन्नर निसिचर पसु खग ब्याला॥
देव दनुज गन नाना जाती। सकल जीव तहँ आनहिं भाँती॥
महि सरि सागर सर गिरि नाना। सब प्रपंच तहँ आनहिं आना॥
अण्डकोस प्रति प्रति निज रूपा। देखेउँ जिनस अनेक अनूपा॥
अवधपुरी प्रति भुवन निनारी। सरजू भिन्न भिन्न नर नारी॥
दसरथ कौसिल्या सुनु ताता। बिबिध रूप भरतादिक भ्राता॥
प्रति ब्रह्माण्ड राम अवतारा। देखेउँ बाल बिनोद अपारा॥
भिन्न भिन्न मैं दीख सबु, अति बिचित्र हरिजान।
अगनित भुवन फिरेउँ प्रभु, राम न देखेउँ आन॥ क॥८१॥
सोइ सिसुपन सोइ सोभा, सोइ कृपाल रघुबीर।
भुवन-भुवन देखत फिरउँ, प्रेरित मोह-समीर॥ ख॥८१॥"

\+ \+ \+

"राम काम सत कोटि सुभग तन। दुर्गा कोटि अमित अरि-मर्दन॥
सक्र कोटि सत सरिस बिलासा। नभ सत कोटि अमित अवकासा॥
मरुत कोटि सत बिपुल बल, रबि सत कोटि प्रकास।
ससि सत कोटि सुसीतल, समन सकल भव त्रास॥ (क)॥
काल कोटि सत सरिस अति, दुस्तर दुर्ग दुरंत।
धूमकेतु सत कोटि सम, दुराधरष भगवंत॥ (ख)॥
प्रभु अगाध सत कोटि पताला। समन कोटि सत सरिस कराला॥
तीरथ अमित कोटि सम पावन। नाम अखिल अघ पूग नसावन॥

हिमगिरि कोटि अचल रघुबीरा। सिंधु कोटि सत सम गंभीरा॥
कामधेनु सत कोटि समाना। सकलकाम दायक भगवाना॥
सारद कोटि अमित चतुराई। बिधि सतकोटि सृष्टि निपुनाई॥
बिष्नु कोटि सम पालनकर्त्ता। रुद्रकोटि सत सम संहर्ता॥
धनद कोटि सत सम धनवाना। माया कोटि प्रपंच निधाना॥
भार धरन सत कोटि अहीसा। निरवधि निरुपम प्रभु जगदीसा॥"

उपर्युक्त उद्धरणसे स्पष्ट है कि राम ब्रह्मा, विष्णु और शिवसे बहुत ऊँचे परात्पर ब्रह्म हैं।

(३) **दार्शनिक-भावना**—यद्यपि हिन्दू-जनतामें अत्यन्त प्राचीन-कालसे अवतारकी भावना चली आ रही है; किन्तु जब अद्वैतवादके प्रतिपादक स्वामी शंकराचार्यने ब्रह्मकी जिस व्यावहारिक सगुण-सत्ताको स्वीकार किया, वह स्वामी रामानुजाचार्य द्वारा सं० १०७३ में सम्प्रदायके घेरेमें प्रतिष्ठित हुई, अर्थात् राम-भक्तिने सम्प्रदायका रूप ग्रहण किया। इस समय रामानुजके 'श्री' सम्प्रदायमें विष्णु या नारायणकी उपासनाका विधान हुआ। आगे चलकर इस सम्प्रदायमें उच्चकोटिके सन्त हुए। विक्रमकी चौदहवीं शताब्दीके अन्तमें वैष्णव 'श्री' सम्प्रदायके प्रधानाचार्य राघवानन्दजी हुए, जो काशीमें रहते थे, उन्होंने रामानन्दजीको दीक्षा दी। दीक्षा ग्रहण करनेके उपरान्त श्रीरामानन्दजीने समग्र भारतका पर्यटन कर इस सम्प्रदायका प्रचार किया, जिसमें उन्हें उत्तर-भारतमें विशेष सफलता प्राप्त हुई। इस सम्प्रदायमें श्रीरामानन्दजीने जाँति-पाँतिका प्रतिबन्ध न रखा, इसलिए यह सम्प्रदाय सर्वसाधारणके लिए उपयोगी सिद्ध हुआ।

श्रीरामानन्दजीने श्रीरामानुजाचार्यके सम्प्रदायमें दीक्षित होकर भी अपनी उपासना पद्धति भिन्न रखी, अर्थात् उपासनाके निमित्त वैकुण्ठ-निवासी विष्णुका स्वरूप न ग्रहणकर दाशरथि राम (जो राम विष्णुके अवतार हैं) का ही आश्रय ग्रहण किया। इनके राम इष्टदेव हुए और राम-नाम मूलमंत्र हुआ। यद्यपि इनके पूर्व भी रामकी भक्ति प्रचलित

थीं, क्योंकि रामानुजाचार्यने जिस सिद्धान्तका प्रतिपादन किया था, उसके प्रवर्त्तक शठकोपाचार्य पाँच पीढ़ी प्रथम हो चुके हैं।* शठकोपाचार्यने अपनी सहस्रगीतिमें कहा है—

"दशरथस्य सुतं तं बिना अन्य शरणवान्नास्मि।"

स्वामी रामानुजके पश्चात् उनके शिष्य कुरेश स्वामीने राम-भक्ति संबंधी 'पंचस्तवी' ग्रन्थकी रचना की। आगे चलकर श्रीरामानन्दके शिष्य हुए—कबीर, रैदास, सेन नाई और गांगरौनगढ़के राजा पीपा; जो विरक्त होकर पक्के भक्त हुए। भक्तमालमें रामानन्दजीके बारह शिष्योंका उल्लेख है, इन्हीं शिष्योंकी परम्परामें भक्तवर कवि गोस्वामी तुलसीदास हुए, जिन्होंने स्वामी रामानन्दजीके सिद्धान्तोंको लेकर अपनी अलौकिक प्रतिभा द्वारा व्यापक ढंगसे रामभक्तिका प्रचार किया। रामभक्तिके पीछे तुलसीदासकी जो दार्शनिक भावना मिलती है, वह उनके 'विनय-पत्रिका' और 'मानस'के अन्तर्गत अत्यन्त क्लिष्ट और रहस्यपूर्ण होनेपर भी बड़े ही सरल ढंगसे देखनेको मिलती है। स्तुति, आत्म-बोध और आत्म-निवेदनका अंश अधिक हो जानेके कारण 'विनय-पत्रिका'में अधिक स्पष्टीकरण नहीं हो पाया है, किन्तु फिर भी कुछ पद अवश्य ऐसे हैं, जिसमें आचार्य शंकरके मायावादका निरूपण और उसे भ्रम तक कह डालनेका संकेत मिलता है :—

"केसव कहि न जाइ का कहिए।
देखत तव रचना बिचित्र अति! समुझि मनहिं मन रहिए।
सून भीति पर चित्र रंग नहिं, तनु बिनु लिखा चितेरे॥
धोए मिटै न मरै भीति, दुख पाइअ एहि तनु हेरे।
रबिकर-नीर बसै अति दारुन मकर रूप तेहि माहीं॥

---

* दे० 'हिन्दी-साहित्यका इतिहास' आचार्य शुक्लकृत, छठा संस्करण पृ० १२८।

मदनहीन सो ग्रसे चराचर पान करन जे जाहीं।
कोउ कह सत्य, झूठ कह कोऊ, जुगल प्रबल कोउ मानै॥
तुलसिदास परिहरै तीनि भ्रम, सो आपन पहिचानै।"

'विनय-पत्रिका'के इस पदके अनुसार तुलसीदासजी आचार्य शंकरके अद्वैतवादको मानते हुए भी उसे 'भ्रम' मानते थे। इसके अतिरिक्त 'मानस'में जहाँ तुलसीदासने घटना-प्रसंगमें भी दर्शनका पुट दे दिया है, वहाँ दर्शनका व्यापक और परिमार्जित रूप देखनेको मिलता है। बाल-काण्डमें जहाँ उन्होंने ईश्वर-भक्तिका निरूपण किया है, अपने दार्शनिक विचारोंका आभास दे दिया है। इसी प्रकार लक्ष्मण-निषाद-सम्वाद, राम-नारद-सम्वाद, वर्षा शरद-वर्णन, राम-लक्ष्मण-संवाद, गरुड़ और काकभुसुण्डि-संवादमें गोस्वामीजीने अपनी दार्शनिक विचार-धाराका परिचय दे दिया है। तुलसीदासने रामको ही पूर्ण ब्रह्म माना है। 'विधि हरिहर बंदित पद-रेनू।' 'विधि हरि संभु नचावनिहारे' आदिके जो वर्णन अनेक बार आये हैं, वे अद्वैतवादी ब्रह्मके ही विशेषण हैं। इस अद्वैतवादकी व्याख्यामें मायाके लिए भी स्थान है, जिसका वर्णन स्थान-स्थानपर गोस्वामीजीने किया है। इनके वैष्णव होनेमें तो कोई सदेह है ही नहीं, अतः ये अवतारवादी भी माने जायँगे। क्योंकि 'मानस'में अपने इष्टदेवको अद्वैतवादके शब्दोंमें व्यक्त करते हुए भी उसे गोस्वामीजीने विशिष्टाद्वैतके गुणोंसे विभूषित कर दिया है :—

'एक अनीह अरूप अनामा। अज सच्चिदानन्द परधामा॥
व्यापक विश्वरूप भगवाना। तेहि धरि देह चरित कृत नाना॥
सो केवल भगतन हित लागी। परम कृपालु प्रनत अनुरागी॥'

जहाँ तुलसीदास अपने ब्रह्मको अद्वैतवादके अन्तर्गत यह दिखाते हैं कि :—

"गिरा अरथ जल बीचि सम कहियत भिन्न न भिन्न।"
"नाम रूप दुइ ईस उपाधी। अकथ अनादि सुसामुझि साधी॥"

"व्यापक एकु ब्रह्म अविनासी। सत चेतन घन आनंद-रासी॥"
"ईश्वर अंस जीव अविनासी। चेतन अमल सहज सुखरासी॥"
"सीयराम मय सब जग जानी। करौं प्रनाम जोरि जुग पानी॥"

वहाँ उसे विशिष्टाद्वैतवादके अन्तर्गत लानेके लिए सतीसे प्रश्न उपस्थित करा देते हैं :—

"ब्रह्म जो व्यापक बिरज अज, अकल अनीह अभेद।
सो कि देह धरि होइ नर, जाहि न जानत बेद॥"

जिसके उत्तरमें कहा गया—

"सगुनहिं अगुनहि नहिं कछु भेदा। गावहिं मुनि पुरान बुध बेदा॥
अगुन अरूप अलख अज जोई। भगत प्रेम बस सगुन सो होई॥
जो गुन-रहित सगुन सोइ कैसे। जल हिम उपल बिलग नहिं जैसे॥
जासु नाम भ्रम तिमिर पतंगा। तेहि किमि कहिय बिमोह प्रसंगा॥"

+ + +

"जगत प्रकास्य प्रकासक रामू। मायाधीस ग्यान-गुन धामू॥
जासु सत्यता तें जड़ माया। भास सत्य इव मोह सहाया॥
रजत सीप महँ भास जिमि, जथा भानुकर बारि।
जदपि मृषा तिहुँ काल सोइ, भ्रम न सकै कोउ टारि॥"

एहि बिधि जग हरि आश्रित रहई। जदपि असत्य देत दुख अहई॥
जौं सपने सिर काटै कोई। बिन जागे न दूर दुख होई॥
जासु कृपा अस भ्रम मिटि जाई। गिरिजा सोइ कृपालु रघुराई॥
आदि अन्त कोउ जासु न पावा। मति अनुमान निगम अस गावा॥
बिनु पद चलै सुनै बिनु काना। कर बिनु करम करै बिधि नाना॥
आनन-रहित सकल रस भोगी। बिनु बानी बकता बड़ जोगी॥
तन बिनु परस नयन बिनु देखा। गहै घ्रान बिनु बास असेखा॥
अस सब भाँति अलौकिक करनी। महिमा जासु जाइ नहिं बरनी॥

जेहि इमि गावहि वेद बुध, जाहि धरहिं मुनि ध्यान।
सोइ दसरथ सुत भगत हित, कोसलपति भगवान॥"

अर्थात् गोस्वामीजीने अद्वैतवादके अन्तर्गत विशिष्टाद्वैतकी सृष्टि कर दी है। 'मानस'के समग्र अवतरणोंसे पता चलता है कि तुलसीदास अद्वैतवादको श्रद्धाकी दृष्टिसे देखते तो हैं; किन्तु वे अनुयायी थे, विशिष्टाद्वैतके ही। आचार्य शुक्लजीके शब्दोंमें :—

'साम्प्रदायिक-दृष्टिसे तो वे रामानुजाचार्यके अनुयायी थे, जिनका निरूपित सिद्धान्त भक्तोंकी उपासनाके अनुकूल दिखायी पड़ा।'

गोस्वामीजीने ब्रह्मको व्यापक दिखानेके लिए अद्वैतवादका रूप अवश्य अपनाया और उसे मायासे समन्वित भी किया, किन्तु भक्त होनेके नाते भक्तिका अवलम्ब ग्रहण कर उन्होंने ब्रह्मको विशिष्टाद्वैतके द्वारा ही निरूपित किया है। यही कारण था, जहाँ कहीं भी उन्होंने अद्वैतवादके अन्तर्गत ब्रह्मका निरूपण किया है, वहाँ उसे उन्होंने भक्ति-मार्गका आराध्य भी माना है।

लक्ष्मणके पूछनेपर :—

"ईश्वर जीवहिं भेद प्रभु, कहहु सकल समुझाइ।
जातें होइ चरन-रति, सोक मोह भ्रम जाइ॥"

भगवान् राम उत्तर देते हैं।—

"माया ईस न आपु कहँ, जान कहिय सो जीव।
बंध मोच्छप्रद सर्व पर, माया प्रेरक सींव॥"

"जाते वेगि द्रवौं मैं भाई। सो मम भगति भगत सुखदाई॥"

'मानस' में गोस्वामीजी ब्रह्म रामको (अद्वैतवादरूपमें मानते हुए भी) विशिष्टाद्वैतवादके अन्तर्गत ही निरूपित करते हैं—१—पर-रूप, २—व्यूह रूप, ३—विभव रूप, ४—अन्तर्यामी रूप और ५—अर्चावतार रूप, ये पाँच कोटियाँ विशिष्टाद्वैतवाद की हैं, जिनका विश्लेषण निम्न प्रकार से है :—

१—पर-रूप—जिसके अनुसार यह रूप वासुदेव-स्वरूप है। यह परमानन्दमय और अनन्त है। 'मुक्त' तथा 'नित्य' जीव उसीमें लीन हैं; यह ऐश्वर्य, तेज, ज्ञान, वीर्य और बल आदि षड्गुण्य विग्रहरूप है। रामको यही रूप दिया गया है, उनके प्रत्येक कार्यपर देवता जो नित्य जीव हैं, फूल बरसाते हैं और अपनी प्रसन्नता प्रकट करते हैं, इसका वर्णन यत्र-तत्र 'मानस'में मिलता है।

"व्यापक ब्रह्म निरंजन, निर्गुन विगत विनोद।
सो अज प्रेम-भगति-बस, कौसिल्या के गोद ॥"

२—व्यूहरूप—यह स्वरूप विश्वकी सृष्टि तथा लयके हेतु है। षड्गुण्य विग्रहमेंसे मात्र दो गुण ही स्पष्ट होते हैं, वे छः गुणोंमेंसे चाहे ज्ञान और बल हों, चाहे ऐश्वर्य और वीर्य, चाहे शक्ति या तेज हों। 'मानस'में इसका निरूपण इस प्रकार है :—

"जाके बल बिरंचि हरि ईसा। पालत सृजत हरत दससीसा ॥
जा बल सीस धरत सहसानन। अंडकोस समेत गिरि कानन ॥"

३—विभव-रूप—इसके अन्तर्गत विष्णुके अवतार मुख्य हैं, वास्तवमें यह रूप नर-लीलाके लिए होता है, 'मानस'में इसका वर्णन इस प्रकार है :—

"जनि डरपहु मुनि सिद्ध सुरेसा। तुम्हहिं लागि धरिहौं नर बेसा ॥
अंसन सहित मनुज अवतारा। लेइहउँ दिनकर बंस उदारा।
हरिहउँ सकल भूमि गरुआई। निरभय होहु देव-समुदाई ॥"

निज इच्छा प्रभु अवतरइ, सुर महि गो द्विज लागि।
सगुन उपासक संग तहँ, रहहिं मोच्छ सब त्यागि ॥"

(४) अन्तर्यामी रूप—इसके अनुसार ईश्वर समग्र ब्रह्माण्डकी गतिसे अवगत रहता है। यह जीवोंके अन्तःकरणमें प्रविष्ट कर उनका नियमन करता रहता है। इसी रूपमें श्रीरामचन्द्रजीने अवतारके रहस्योंको सुलझाया है। 'मानस'में स्थान-स्थानपर इसका संकेत मिलता है :—

"तुम सर्बग्य कहउँ सतिभाऊ। उर अंतरजामी रघुराऊ॥"

"तव रघुपति जानत सब कारन। उठे हरषि सुर-काज सवाँरन॥"

(५) अर्चावतार-रूप—इसके अनुसार ब्रह्मका स्वरूप भक्तोंके हृदयमें अधिष्ठित होता है, वे जिस रूपसे ब्रह्मको चाहते हैं, वह उसी रूपमें उन्हें प्राप्त होता है। 'मानस'में इसका उदाहरण देखिए :—

"माता पुनि बोली सो मति डोली तजहु तात यह रूपा।
कीजिय सिसु लीला अतिप्रियसीला यह सुख परम अनूपा॥
सुनि बचन सुजाना रोदन ठाना होइ बालक सुरभूपा।
यह चरित जे गावहिं हरि-पद पावहिं ते न परहिं भव-कूपा॥"

अद्वैतवादको माननेपर भी विशिष्टाद्वैतवादके पोषक महात्मा तुलसीदासने 'मानस'में भलीभाँति स्पष्ट कर दिया है कि उनके सम्प्रदायगत विचार विशिष्टाद्वैतवादसे अधिक प्रभावित हैं। राम-जन्मके प्रसङ्गमें माता कौशल्या द्वारा जो स्तुति करायी गयी है, वह पूर्णरूपसे विशिष्टाद्वैतबादके अन्तर्गत मानी जायगी। स्तुतिकी पृष्ठ-भूमि एवं रूप-चित्रण :—

"भए प्रकट कृपाला दीनदयाला कौसल्या हितकारी।
हरषित महतारी मुनिमनहारी अद्भुत रूप बिचारी॥
लोचन अभिरामा तनु घनस्यामा निज आयुध भुजचारी।
भूषन बनमाला नयन बिसाला सोभासिन्धु खरारी॥"

इसके पश्चात् १—पर-रूपका संकेत :—

"कह दुहुँ कर जोरी अस्तुति तोरी केहि बिधि करौं अनंता।
माया गुन ग्यानातीत अमाना बेद पुरान भनंता॥

२—व्यूह-रूपका संकेत :—

"करुना-सुख-सागर सब गुन आगर जेहि गावहिं श्रुति-संता।
सो मम हित लागी जन अनुरागी भयउ प्रगट श्रीकंता॥

३—विभव-रूपका संकेत :—

"ब्रह्माण्ड निकाया निर्मित माया रोम रोम प्रति बेद कहै।

मम उर सो वासी यह उपहासी सुनत धीर मति थिर न रहै ॥"

४—अन्तर्यामी-रूपका संकेत :—

"उपजा जब ग्याना प्रभु मुसकाना चरित बहुत विधि कीन्ह चहै ।
कहि कथा सुहाई मातु बुझाई जेहि प्रकार सुत प्रेम लहै ॥"

५—अर्चावतार-रूपका संकेत :—

"माता पुनि बोली सो मति डोली तजहु तात यह रूपा ।
कीजै सिसु लीला अति प्रियसीला यह सुख परम अनूपा ॥
सुनि बचन सुजाना रोदन ठाना होइ बालक सुरभूपा ।
यह चरित जे गावहिं हरि-पद पावहिं ते न परहिं भवकूपा ॥"
बिप्र धेनु सुर सन्त हित, लीन्ह मनुज अवतार ।
निज इच्छा निर्मित तनु, माया गुन गोपार ॥"

गोस्वामीजीने धार्मिक-सिद्धान्तोंमें अति सहिष्णु होनेके कारण अद्वैत-वाद-विशिष्टाद्वैतवादका विरोध दूर करनेके उद्देश्यसे रामके व्यक्तित्वमें दोनों वादोंका सम्बन्ध कर दिया है। तुलसीदासके पहले अध्यात्म-रामायण'में सारी राम-कथा अद्वैतवादकी भावनाके अन्तर्गत वर्णित है और गोस्वामी तुलसीदासने 'मानस'का प्रधान आधार-ग्रन्थ 'अध्यात्म रामायण'को बनाया था, अतः 'मानस'में स्थान-स्थानपर उसकी दार्शनिक भावनाकी स्वतः छाप पड़ी हुई है, किन्तु यह मानकर ग्रन्थकी रचना करनेके कारण कि :—

"सीय राममय सब जग जानी । करौं प्रनाम जोरि जुगपानी ॥"

मानना पड़ेगा कि गोस्वामीजीने जिस ब्रह्मका निरूपण किया है वह विशिष्टाद्वैतवादके सिद्धान्तोंके अनुसार है।

१३—भाषा सम्बन्धी विचार—गोस्वामीजीकी रचनाओंके पहले ही अवधी भाषामें काव्य-रचना हो चुकी थी, किन्तु उसमें साहित्यिक-परिष्करणकी कमी थी, वह मानसकी रचनासे पूरी हुई। तुलसीदासके समयमें कृष्ण-काव्य ब्रजभाषामें लिखा जा रहा था, अतः उससे प्रभावित

होकर 'गीतावली', 'कृष्ण-गीतावली' 'कवितावली' और 'विनय-पत्रिका' की रचना उन्होंने व्रजभाषामें भी की।

अवधी एवं व्रजभाषाके अतिरिक्त गोस्वामीजीने अन्य भाषाओंके शब्दोंको भी अपनी कृतियोंमें अपनाया है। कुछ उदाहरण नीचे दिए जा रहे हैं।

(१) भोजपुरी भाषाका प्रयोग—

'राम कहत चलु राम कहत चलु राम कहत चलु भाई रे।

+ + +

हमहिं दिहल करि कुटिल करमचंद मंद मोल बिनु डोला रे॥

+ + +

मन्द बिलंद अमेरा दलकन पाइअ दुख झकझोरा रे॥'

"खोटो खरो रावरो हौं रावरी सौं, रावरे सों,

झूठ क्यों कहौंगो ? जानौ सबही के मनकी।"

—'विनय-पत्रिका'

'सठहु सदा तुम्ह मोर मरायल। अस कहि कोपि गगन पर धायल।'

'राजन राउर नाम जस सब अभिमत दातार।'

'धरि सोइ रूप गयउ पुनि तहवाँ। बन असोक सीता रह जहवाँ॥

—'मानस'

उपर्युक्त अवतरणोंके 'दिहल', 'रावरे' 'मरायल' 'धायल' 'तहँवा' और 'जहँवा' आदि शब्द भोजपुरी भाषाके प्रभावके सूचक हैं।

(२) बुन्देलखण्डी भाषाका प्रयोग—

"ए दारिका परिचारिका करि पालबी करुनामई।

अपराध छमिबो बोलि पठए बहुत हौं ढीठ्यो कई॥

+ + +

"परिवार पुरजन मोहिं राजहिं प्रानप्रिय सिय जानिबी।

तुलसी सुसील सनेह लखि निज किंकरी करि मानिबी॥"

'पठए भरत भूप नंदिनसउरे । राम मातु मत जानब रउरे'—'मानस'
'लषनलाल कृपाल निपटहि अरिया न बिसारि ।'—'गीतावली'
'मेरिश्रौ सुधि द्याइबी कछु करुन कथा चलाइ ।'—विनय-पत्रिका'
"तौ लौं मातु आपु नीके रहिबो ।
जौ लौं हौं ल्यावौं रघुबीरहि दिन दस और दुसह दुख सहिबो ।"
—'गीतावली'

आदिमें 'पालबी, 'जानबी' 'मानिबी' 'अरिया' 'द्याइबी' 'रहिबो' 'ल्यावों' और 'सहिबो' आदि शब्द बुन्देलखण्डीके प्रयुक्त हुए हैं ।

(३) खड़ी बोलीका प्रयोग—

"अब जनमि तुम्हरे भवन निज पति लागि दारुन तप किया ।"
'गए जनकु रघुनाथ समीपा । सनमाने सब रविकुल दीपा ।'
'यह तनय मम सम बिनय बल कल्यानप्रद प्रभु लीजिए ।
गहि बाँह सुरनर-नाह आपन, दास अंगद कीजिए ॥"
'रोदति बदति बहु भाँति करुना करति संकर पहँ गई ॥'
—'रामचरित-मानस'

'प्रातकाल रघुबीर बदन छवि चितै चतुर चित मेरे ।
होहि बिबेक बिलोचन निर्मल सफल सुसीतल तेरे ॥"
'करि आई, करिहैं, करती हैं, तुलसिदास दासन पर छाहैं ।'
—'गीतावली'

'नष्ट मति दुष्ट अति कष्ट रत खेद गत
दासतुलसी संभु सरन आया । —'विनयपत्रिका'

आदिमें 'किया', 'गए', 'लीजिए', 'कीजिए', 'गई' 'मेरे', 'तेरे', कहते हैं; और आया आदि खड़ी-बोलीके प्रयोग हैं ।

(४) बंगला भाषाका प्रयोग—

'सोइ बिबस कछु कहै न पारा ।'
"धाइ कपिन्ह सो देखा बैसा । आहुति देत रुधिर अरु भैंसा ॥"

"अंगद दीख दसानन बैसें। सहित प्रान कज्जल गिरि जैसें।।"
'सहज एकाकिन्ह के भवन कबहुँ कि नारि खटाहिं।'

—'राम-चरित-मानस'

उपर्युक्त अवतरणोंमें 'पारा'=सका, 'बैसा'=बैठा, बैसें'=बैठे और 'खटाहिं=निभाना आदि बंगलाके शब्दोंके प्रयोग हैं। जिनका हिन्दीके शब्दोंके साथ सुन्दर प्रयोग हुआ है।

(५) गुजराती भाषाका प्रयोग—

"का छति लाभु जून धनु तोरें। देखा राम नयनके भोरें।।"
'इन्द्र सम काहु न सिव अवराधे। काहुँ न इन्द्र समान फल लाधे।।'

—'राम-चरित-मानस'

तजि आस भो दास रघुप्पति को दसरत्थ को दानि दया-दरिया।।"
"पालों तेरो टूकको परेहू चूक मूकिए,
न टूक कौड़ी दू को हौं आपनी ओर हेरिए।"

—'कवितावली'

"सुनि खग कहत अब मौंगी रहि समुझि प्रेम-पथ न्यारो।'
'गीतावली

उपर्युक्त अवतरणोंमें—

'जून' 'लाघे' 'दरिया' और मौंगी' आदि क्रमशः 'जीर्ण' 'प्राप्त किया' 'समुद्र' और 'मौन' के अर्थमें (गुजराती शब्दोंका) प्रयोग हुआ है।

(६) राजस्थानी भाषाका प्रयोग—

"तुरत बिभीषन पाछें मेला। सन्मुख राम सहेउ सोइ सेला।।"
"एहि अवसर चाहिय परम, सोभा रूप बिसाल।
सो बिलोकि रीझैं कुअँरि, तब मेलैं जयमाल।।"
"मिला जाइ जब अनुज तुम्हारा। जातहिं राम तिलक तेहि सारा।।"

—'मानस'

"काल तोपची तुपक महि, दारू अनय कराल ।"

"जियत न नाई नारि, चातक घन तजि दूसरहिं ॥"—'दोहावली'

"दास तुलसी समय बदति मय-नन्दिनी, मंदमति कंत सुनु मंत म्हाको ।।"

—"कवितावली"

आदिमें 'मेला'='डालना' 'मेलै'-'डालै' 'सारा'="लगाया" "दारू" ='बारूद', और 'नारि'='गर्दन' म्हाको'—'हमारा' आदि राजस्थानी शब्दोंका प्रयोग हुआ है।

(७) अरबी-फारसीका प्रयोग—

"गनी गरीब ग्राम नर नागर। पंडित मूढ मलीन उजागर ॥"
"गई बहोरि गरीबनिवाजू। सरल सबल साहिब रघुराजू ॥"
"असमजस अस मोहिं अंदेसा।" 'लोकप जाके बंदीखाना ॥'
"जे जड़ चेतन जीव जहाना ॥" "कुंभकरन कपि फौज बिडारी ॥"
"मइ बकसीस जाचकन्ह दीन्हा ॥"—'मानस'

आदिमें 'गनी गरीब' 'उजागर' 'निवाजू' 'साहिब' 'अंदेसा' 'बंदीखाना' 'जहाना' 'फौज' और 'बकसीस' आदि अरबी-फारसी शब्दोंके प्रयोग विदेशीसे देशी बनाकर किये गये हैं।

(८) संस्कृत शब्दावलीका प्रयोग—

'मानस' और 'विनय-पत्रिका' में इसके उदाहरण भलीभाँति देखे जा सकते हैं। इनमे संस्कृतके शुद्ध तत्सम शब्दोंको और कहीं-कहीं उन्हें विकृत करके रचनामें प्रयुक्त किया गया है :—

"सो गोसाइँ नहिं दूसर कोपी। भुजा उठाइ कहौं पन रोपी ॥"
"सिद्ध बिरक्त महामुनि जोगी। तेपि काम बस भए बियोगी ॥"
"पस्यंति जे जोगी जतन करि। करत मन गो बस सदा ॥"
"सोपि राम-महिमा मुनिराया। सिव उपदेश करत करि दाया ॥"

'मानस'

आदिमें 'कोपी', 'तेपि', 'पस्यंति' 'जे' और सोपि' क्रमशः 'कोऽपि'

'तेऽपि', 'पश्यन्ति' 'यं' और सोऽपिके ही विकृत रूप हैं—

(६) प्राकृत और अपभ्रंशका प्रयोग—

'लप्पटिहि लग्गा ग्रलुज्झि जुज्झहिं सुभट मटम्ह दहावहीं ।।"

—'मानस'

"डिगति उर्वि अति गुर्वि सर्व पब्वे समुद्रसर ।

दिग्गयन्द लरखरत परत दसकण्ठ मुक्खभर ।।"

"मानो प्रायच्छ परब्बत की नम लीक लसी कपि यों धुकि धायो ।"

आदि उदाहरण दिए जा सकते हैं । —कवितावली'

गोस्वामीजीके पूर्व 'भाषा' में जो रचना की जाती थी, वह आदर-हीन रचना समझी जाती थी । इसका संकेत स्वयं कविके ही शब्दोंमें मिलता है :—

"भाषा भनित मोर मति थोरी । हँसिबे जोग हँसे नहिं खोरी ।।

किन्तु 'भाषा'में राम-कथाकी रचना कर इन्होंने इसका बड़ा ही महत्व बढ़ाया है । 'भाषा' रचना करनेके कारण गोस्वामीजीने संस्कृतके तत्सम शब्दोंको भी तद्भव कर सरल बना दिया है । इस प्रणालीके अनुसार तुलसीदासकी रचनाकी वर्णमाला निम्नांकित होगी :—

स्वर—अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ए, ऐ, ओ, औ, अं ।

व्यंजन—क, ख, प्रायः 'ष' के रूप में इसका प्रयोग किया गया है ।

ग, घ, च, छ, ज, झ, ट, ठ, ड, ढ, त, थ, द, ध, न, प, फ, ब, भ, म, य, र, ल, व, ष, स, ह, ड़, और, ढ़, हैं ।

१४—भाषा-संबंधी अन्य विचार—तुलसीकी काव्यगत भाषाका विचार वैज्ञानिक, शास्त्रीय और भावात्मक-दृष्टिकोणसे पूर्ण संतुलित है, यहाँ कुछ विचार करना आवश्यक प्रतीत होता है । वैज्ञानिक दृष्टिसे भाषा-सम्बन्धी विचारके अन्तर्गत भाषा-विज्ञान और व्याकरण आता है, जिसके अन्तर्गत विविध बोलियोंके रूपोंकी छान-बीन, व्याकरणीय विशिष्टताओंका विश्लेषण, संज्ञा, सर्वनाम, लिंग, वचन, विभक्ति तथा

कारक चिह्नोंका विवेचन, विशेषणों, क्रियापदों और अव्ययोंका विश्लेषण आदिका विचार किया जाता है। शास्त्रीय दृष्टिके अन्तर्गत लक्षण-ग्रन्थोंके आधारपर एक निश्चित मापदण्डानुसार शब्द-शक्तियों, रीति, ध्वनि-अलंकार आदि काव्यके गुण-दोष तथा खण्ड-काव्य और महाकाव्यादि विभिन्न काव्य-कोटियोंका निर्धारण होता है। इसी प्रकार भावात्मक दृष्टिकोणसे काव्यकी पदावलीकी रमणीयता, शब्द-चयन, वाक्य-विन्यासका नैपुण्य, लोकोक्तियों और मुहावरोंके प्रयोगकी कुशलता, शब्दोंकी संगीत-मयता तथा नाद-सौन्दर्य आदिका विचार किया जाता है। तुलसीकी रचनाओंमें यथा-स्थान इन सभी विशेषताओंके दर्शन होते हैं।

गोस्वामीजीने अपनी प्रतिभासे संस्कृत-भाषाका पुट देकर अपने 'मानस' में पूरी सफलतासे 'भाषा'में 'राम-कथा'की रचना की। तुलसीदासकी वर्ण-मालामें अवधीका बड़ा व्यापक प्रभाव है; अवधीकी समस्त व्याकरण-सम्बन्धी विशेषताएँ उनकी रचनाओंकी भाषामें पूरी तरह व्याप्त हैं। शब्दोंके प्रयोगमें उन्होंने स्वतंत्रतासे काम लिया है; यहाँ कुछ उदाहरण दिये जा रहे हैं, छन्दकी दृष्टिसे गोस्वामीजीने जहाँ चाहा है, वहीं ह्रस्वको दीर्घ और दीर्घको ह्रस्व कर दिया है; जैसे 'आशंका' को 'असंका' आशीर्वाद' को 'आसिरबाद', । 'मुनीश' को 'मुनीसा', हरीश' को 'हरीसा' 'राहू' आदिका प्रयोग।

संस्कृत शब्दावलीको तोड़मरोड़ कर किस प्रकार सुन्दर ढंगसे गोस्वामीजीने 'भाषामें प्रयुक्त किया है, उसके लिए भी नियमका पालन हुआ है; यहाँपर इस प्रकारके शब्दोंके रूपान्तरपर प्रकाश डाला जा रहा है :—

१—कुछ अकारादिक क्रियाओंके आदिके 'अ' का विकल्पसे लोप हो जाता है, उदाहरणके लिए 'अह' को लीजिए जिसके 'अहइ', 'अहहिं' और 'अहहु' रूप होते हैं। इसका विकल्पसे 'अ' का लोप होकर

'इइ', 'ई', 'इहि' 'हैं' 'हौ' रूप बन जाता है—'इइ तुम्ह कहँ सब भाँति भलाई।'—'मानस'।

२—कुछ शब्दोंमें आरम्भ या बीचके किसी व्यंजनके साथ लगे हुए 'अ' के स्थानमें 'उ' किया गया है; जैसे 'शिंशिपा', 'अञ्जलि' और 'सफल' आदिमें गोस्वामीजीने 'सिंसुपा', 'अंजुलि' और 'सुफल' बनाकर व्यवहृत किया है।

३—कुछ शब्दोंमें पूर्व उच्चारणकी सरलताके हेतु 'अ' जोड़ दिया गया है; जैसे 'स्तुति', 'स्नान', 'स्थान' आदिमें 'अस्तुति', 'अस्तुति', 'अस्नान' और 'अस्थान' कर दिया है।

४—अकारान्त स्त्रीलिंग भाववाचक संज्ञा शब्दोंके पीछे कहीं-कहीं 'ई' भी जोड़ दी गयी है। जैसे 'प्रभुता', 'सज्जा', 'रजा' और मनोहरता' आदिको 'प्रभुताई', 'सजाई' और 'मनोहरताई' आदि रूप दिया गया है।

५—संयुक्ताक्षरोंके *अव्यवहित पूर्वमें आनेवाले* दीर्घ स्वरोंको *प्रायः* ह्रस्व कर दिया गया है। जैसे—'आज्ञा', 'मुनीन्द्र', 'दीक्षा', 'परीक्षा' आदिको 'अग्या', 'मुनिन्दा', 'दिच्छा' और 'परिच्छा' आदि रूपोंमें प्रयुक्त किया गया है।

६—उकारादि शब्दोंमें आदिके 'उ' के स्थानमें कहीं-कहीं 'हु' कर दिया गया है, जैसे 'उल्लास' शब्दको 'हुलास' *बना दिया गया है।*

७—शब्दोंके आदि, अन्त और मध्यमें आनेवाले उकारान्त व्यंजनोंको कहीं-कहीं अकारान्त कर दिया गया है जैसे 'गुरु', 'दयालु', 'कृपालु', 'उडुगण', 'भीरु', 'कुधातु', 'तनु', 'कुपुत्र', 'अनुरूप', 'अनुकूल' आदि शब्दोंका रूप 'गुर', 'दयाल', 'उडगन', 'भीर', 'कुधात', 'तन', 'कपूत', 'अनरूप' और 'अनुकूल' *किया गया है।*

८—कहीं-कहीं शब्दके आदि 'उ' को वहाँसे हटाकर उसके आगेके व्यंजनके साथ जोड़ दिया गया है और कहीं-कहीं इसके विपरीत आदिके

उकारान्त व्यंजनको अकारन्त बनाकर 'उ' को उसके प्रथम जोड़ दिया गया है। जैसे 'उल्का' शब्दके 'उ' को आदिमेंसे हटाकर 'ल' में जोड़ दिया गया और इस प्रकार उसका रूप 'लूक' कर दिया गया, इसी प्रकार 'पुरोहित' के 'उ' को 'प' से हटाकर उसके पूर्वमें बैठा दिया गया, जिससे उसका रूप 'उपरोहित' हो गया।

९—किसी वर्णका उसी वर्णके साथ संयोग होनेपर उसके अव्यवहित पूर्वमें आनेवाले ह्रस्व स्वरको प्रायः दीर्घ कर दिया गया है, जैसे 'उत्तर' 'उतर' 'मत्त' का 'माता' और 'मल्ल' का 'माल'।

१०—शब्दोंके प्रारम्भके ऋकारान्त व्यंजनोंके 'ऋ' को 'ऊ' अथवा 'ऊँ' रूपमें बदल दिया गया है, जैसे, 'वृद्ध' से 'बूढ़ा', 'पृच्छ' से पूछ या पूँछ और 'वृत्त' के 'व' का लोप होकर 'रूँख' हो गया है। कहीं-कहीं ऐसे स्थानोंमें 'ऋ' का रूप 'इ' कर दिया गया है, जैसे 'तृण', 'निकृष्ट' 'दृढ़ाई' 'प्रावृट्', 'दृष्ट', 'शृङ्गार', 'दृगञ्चल', 'पृष्ठ' आदि शब्दोंके स्थान में 'तिन', 'निखिष्ट', 'दिढ़ाई', 'प्राबिट', 'दीठा', 'सिंगार', 'दिगंचल' और 'पीठि' शब्दोंका प्रयोग किया गया है।

११—'ऋ' के स्थानमें कहीं कहीं 'उ' भी हो गया है; जैसे 'मातृ' 'पितृ' से 'मातु', 'पितु' और मृतसे 'मुए' बन गया है। 'वृद्ध', 'सृजा' आदि शब्दोंमें 'ऋ' के स्थान पर 'इ' होकर उसके पीछे 'रि' जोड़ा गया है जिससे 'बिरिध' और 'सिरिजा' शब्द बने हैं। 'वृद्ध' के 'द' का कहीं-कहीं लोप हो गया है जैसे 'रिधि' 'सिधि' जो 'ऋद्धि' और 'सिद्धि'के विकृत रूप हैं।

१२—शब्दोंके मध्यवर्ती 'क' के 'स्थानमें 'कहीं-कहीं' 'अ' हो जाता है—जैसे 'सूकर' से 'सूअर', 'निकट' से निअराना आदि। कहीं-कहीं पदान्त और मध्यके 'क' को 'ग' रूपमें परिवर्तित कर दिया गया है। जैसे 'काक' से 'काग'; 'बक' से 'बग'; 'पर्यंक'से 'पलंग'; 'प्रकट' से 'प्रगट' 'विकसित' से 'बिगसित', 'युक्ति' से 'जुगुति' और 'भक्ति' से 'भगति'।

'क' के आगे 'त' का संयोग होनेपर कहीं-कहीं 'क' का लोप हो जाता है और उसका पूर्ववर्ती ह्रस्वस्वर दीर्घ हो जाता है—जैसे 'रक्त' (अनुरक्त) से 'राता' और 'रिक्त' से 'रीता' (खाली) बन गया।

१३—'क्ष' के स्थानमें कहीं कहीं 'ह' का प्रयोग हुआ है, जैसे 'दक्षिण' से 'दहिन'। इसी प्रकार पदान्तके 'क्ष' के स्थानमें कहीं-कहीं 'ख' और कहीं 'छ' का प्रयोग हुआ है और पूर्ववर्ती ह्रस्व स्वरको दीर्घ कर दिया जाता है, जैसे 'लक्ष' का 'लाख' 'अक्षि' का 'आँखि' 'मक्षी' का 'माखी' और 'ऋक्ष' का 'रीछ' हो गया है। इसी प्रकार 'ख' के स्थानमें कहीं-कहीं 'ह' हो गया है, जैसे 'मुख' से 'मुँह'।

१४—पदान्त के 'ग' और 'ज' का लोप कर कहीं-कहीं उसके साथ का स्वरमात्र ही प्रयुक्त हुआ है, जैसे—संजोगु के स्थानपर 'सँजोऊ' 'समाजु' के स्थान पर 'समाउ' 'आम्रराजि' का 'अँवराई' और 'राजु' का 'राउ' आदि। शब्दोंके बीचवाले 'ग' के स्थानपर 'य' का प्रयोग हुआ है, जैसे-'मृगांक' के स्थानपर 'मयंक'।

१५—'ग'के आगे 'ध' का संयोग होनेपर कहीं-कहीं 'ग' का का लोप हो जाता है और कहीं-कहीं दोनोंके स्थानमें 'ढ़' एकरूप हो जाता है। दोनों ही स्थलोंमें पूर्ववर्ती ह्रस्व स्वरको दीर्घ कर दिया गया है, जैसे 'दुग्ध' का 'दूध' तथा दग्धका 'दाढ़ा'।

१६—'ग' के साथ 'न'का संयोग होनेपर कहीं-कहीं 'न' का विकल्पसे लोप होकर पूर्ववर्ती ह्रस्वस्वर दीर्घ कर दिया गया है, जैसे—'अग्नि' से 'आगि' और जहाँ लोप नहीं होता, वहाँ बीचमें 'इ' का आगम होकर 'अगिनि' हो गया है। 'घ' के स्थानमें कहीं-कहीं 'ह' का प्रयोग हुआ है जैसे 'श्लाघ्' से 'सराहना' और इसके विपरीत 'ह' से 'घ' का भी प्रयोग किया गया है, जैसे—'सिंह' से 'सिंघ' 'सिंहासन' से 'सिंघासन', 'सिंहल' से 'सिंघल' तथा 'नहुष' से 'नघुष'।

१७—कहीं-कहीं 'च' के स्थानमें शब्दोंके बीच 'य' का प्रयोग किया

गया है; जैसे—'लोचन' से 'लोयन' 'बचन' से 'बयन' या बैन; 'ज' के स्थान में 'य' का प्रयोग; जैसे—'राज' का 'राय', 'गज' का 'गय' और 'गजेन्द्र' का 'गयंद' आदि।

१८—'ज्ञ' के स्थानमें कहीं 'ज' और कहीं 'य' कर दिया गया है, जैसे—'ज्ञान' से 'जान' और 'सज्ञान' से 'सयान' इसी प्रकार 'अज्ञान' से 'अयान'। पदान्तके 'ज्ञ' के स्थानमें कहीं-कहीं [illegible] गया है; जैसे—'राज्ञी' से 'रानी'। पदान्तके 'च' के पूर्व 'ञ' का और 'त' के पूर्व 'न' का संयोग होने पर 'ञ' और 'न' लोपकर पूर्ववर्ती ह्रस्व स्वरको दीर्घ तथा सानुनासिक कर दिया गया है; जैसे—'पञ्च' का 'पांच' और 'दन्त' का 'दांत'।

१९—पदान्त के 'ट' के स्थानपर कहीं-कहीं 'र' हो गया है—'ललाट' का 'लिलार' 'कोटि' का 'कोरि' 'कटु' का 'करु' 'उत्पाट' से 'उपार' 'पुष्पवाटी' से 'फुलवारी'। कहीं-कहीं 'ज' के स्थान पर 'द' का प्रयोग हुआ है। जैसे—'कागज' से 'कागद'। पदान्त के 'ठ' के स्थान पर 'ढ' का प्रयोग भी कहीं-कहीं किया गया है; जैसे—'पठ' से पढ़ना' 'ष' के साथ संयोग होने पर 'ठ' के स्थान पर 'ट' का प्रयोग; जैसे—'वसिष्ठ' के स्थानपर 'वसिष्ट', 'विष्ठा' के स्थानपर 'विष्टा', 'कुष्ठ' का 'कुष्ट' 'तिष्ठति' का 'तिष्टइ' और 'पापिष्ठ' का 'पापिष्ट'।

२०—हलन्त शब्दोंको अकारान्तके रूपमें प्रयुक्त किया गया है, जैसे—'राजन्' के स्थान पर 'राजन', 'पूषन्' से 'पूषन' 'सकृत्' 'सकृत', 'उपनिषद्' से 'उपनिषद' इसी प्रकार 'मूर्तिमत्' से 'मूरतिमंत' 'हिमवंत्' से 'हिमवंत' आदि।

२१—शब्दोंके आदि अथवा अन्तके 'ह' का कहीं-कहीं लोप होकर उसके साथका स्वर मात्र शेष रह जाता है; जैसे—'मोही' के स्थानपर 'मोई' (मोहित हुई) तथा 'हृष्ट-पुष्ट' के स्थानपर 'रिष्ट-पुष्ट' शब्दोंका प्रयोग हुआ है।

२२—शब्दोंके मध्यवर्ती अथवा पदान्तके 'श', 'ष' और 'स' के स्थान में 'ह' का प्रयोग हुआ है; जैसे—'बीस' के स्थान पर 'बीह', 'दश' के 'दह' इसी प्रकार 'एकादश' से 'एगारह', 'द्वादश' से 'बारह', 'केसरी' से 'केहरी', 'एष' से 'एह' और 'निष्काम' से 'निष्काम' आदि।

२३—किसी-किसी शब्दके पूर्व छन्दके अनुरोधसे 'स' जोड़ा गया है; जैसे—अवकास', 'चकित', 'चर', 'चेतन', 'प्रेम', 'अनुकूल', 'भीत' और 'संकेड' आदि में 'सावकास', 'सचकित', 'सचर', 'सचेतन', 'सप्रेम', 'सानुकूल', 'सभीत' और 'ससंकेड' आदि। कहीं-कहीं 'स्' के साथ 'थ' का संयोग होनेपर 'स्' का लोप कर दिया गया है; जैसे—'स्थापयन्ति' क्रिया का 'थापहि', 'स्थपित', से 'थपित', 'स्थिति' का 'थिति, 'स्थिर' का 'थिर' आदि रूप कर दिया गया है। इसी प्रकार 'स' को भी 'छ' कर दिया गया है; जैसे—'अप्सरा' से 'अपछरा', 'वत्स' से 'बच्छ' 'मत्सर' से 'मच्छर', 'उत्संग' से 'उछंग' 'सरवाइ' से 'उछाइ' कर दिया गया है। 'स' के आगे 'त' का संयोग होनेपर दोनोंके स्थानमें एक रूपसे 'थ' का प्रयोग हुआ है और पूर्ववर्ती ह्रस्व स्वरको दीर्घ कर दिया गया है; जैसे—'हस्त' से 'हाथ' और 'अस्त' से 'अथैना' आदि।

२४—शब्दोंके आरम्भ, मध्य अथवा अन्तमें 'ष' के स्थानमें कहीं-कहीं 'स' कर दिया गया है; जैसे—'षष्टि' से 'साठि', 'तुषार' से 'तुसार', 'रोष' से 'रोस', 'शेष' से 'सेस' और 'दोष' से 'दोस', 'मनुष्यता' से 'मनुसाई' कहीं-कहीं शब्दोंके आरम्भमें 'ष' को 'छ' कर दिया गया है; जैसे—'षट्' से 'छह'। 'ष' के साथ 'ट' अथवा 'ठ' का संयोग होनेपर दोनों स्थानोंमें एक रूप 'ठ' कर दिया गया है और पूर्ववर्ती स्वरको दीर्घ कर दिया गया है; जैसे—'दृष्ट' से 'दीठा', 'अष्ट' से 'आठ', 'मुष्टि' से 'मूठी' और 'पृष्ठ' से 'पीठि' आदि।

२५—'व' के प्रथम किसी अन्य व्यंजनका संयोग होनेपर 'व' के स्थानमें कहीं-कहीं और 'उ' कहीं 'ओ' कर दिया गया है; जैसे 'स्वभाव',

से 'सुभाऊ' 'त्वरित' से 'तुरित' 'त्वरावती' से 'तोरावति'। कहीं-कहीं ऐसे स्थानोंमें 'व' का लोप भी कर दिया गया है, जैसे—'श्वसुर' से 'ससुर', 'सरस्वती' से 'सरसइ', 'जिह्वा' से 'जीहा', 'पार्श्व' से 'पास', 'तेजस्वी' से 'तेजसी' और कहीं-कहीं शब्दोंके मध्यवर्ती 'व' का भी लोप करके उसके सायका स्वर मात्र रखा गया है, जैसे—'भुवन' का 'भुअन'।

२६—कहीं-कहीं शब्दोंके आरम्भ अथवा मध्यके 'ल' के स्थानमें 'न' कर दिया गया है; जैसे—'पलाश' से 'पनास' और 'लंघ' से 'नाघना'। कहीं-कहीं इसके विपरीत 'न' के स्थानमें 'ल' का प्रयोग हो गया है; जैसे—'नौका' से 'लौका' आदि। शब्दोंके मध्यवर्ती एवं पदान्तके 'ल' के स्थान 'र' का प्रयोग हुआ है; जैसे—'काली' से 'कारी', 'विकराल' से 'बिकरार', 'कदली' से 'कदरी', 'अन्त्रावली' से 'अंतावरी', 'शीतल' से 'सिअर' आदि।

२७—रेफके आगे किसी अन्य व्यंजनका संयोग होनेपर कभी-कभी रेफका लोप कर दिया जाता है, और पूर्ववर्त्ती स्वरको प्रायःदीर्घ कर दिया जाता है, जैसे 'वर्ति' से 'बाती', 'कीर्त्ति' से 'कीती', 'सर्व' से 'सब' तथा 'कार्य' से 'काज' हुआ है। रेफ अथवा 'ऋ' के परवर्त्ती 'त' 'ध' अथवा 'द्ध' को कभी-कभी क्रमशः 'ट' और 'ढ' के रूपमें बदल दिया गया है और 'ट' एवं 'ढ' के संयुक्त रेफ अथवा अन्य किसी व्यंजनको भी क्रमशः 'ट' अथवा 'ढ' कर दिया गया है; जैसे 'वर्त्म' का 'बट्ट', 'सार्द्ध' का 'सड्ढ' 'वृद्ध' का 'बुड्ढ'। रेफ के पीछे 'प' का संयोग होनेपर कभी-कभी, 'प' के स्थान में 'प्प' का प्रयोग है, जैसे 'सर्प' से 'सप्प' 'खर्पर' से 'खप्पर'। रेफके आगे 'य' अथवा 'म' का संयोग होनेपर कहीं-कहीं रेफ 'य' के पूर्ववर्ती व्यंजनके आगे संयुक्त हो गया है,—'पर्यन्त' से 'प्रजंत', 'तिर्यक' (पशु-पत्ती आदि योनि) से 'त्रिजग', 'कर्म' से 'क्रम' हो गया है।

२८—ऋकारान्त विशेषण शब्दोंके आगे पुल्लिंगमें 'अ' और स्त्रीलिंगमें 'इ' या 'ई' जोड़ा गया है; जैसे—'कटु' (कटु) से 'करुअ', 'हरु'

से 'हरुश्र', या 'हरुइ', 'गुरु' से 'गरुश्र' अथवा 'गरुइ' आदि।

२९—'र' के पूर्व किसी अन्य व्यंजनका संयोग होनेपर 'र' का प्राय: लोप हो गया है, जैसे 'प्रन' से 'पन', 'त्रिय' से 'तिय', 'प्रिय' से 'पिय', 'प्रेम' से 'पेम', 'प्रयाग' से 'पयाग', 'प्रयाण' से 'पयान', 'अन्यत्र' से 'अनत', 'गात्र' से 'गात' और 'द्रोह' से 'दोह'। पदान्त के 'य' के अव्यवहित पूर्वमें आनेवाले 'इ' को कहीं कहीं दीर्घ करके 'य' का लोप कर दिया गया है; जैसे—'तिय' (स्त्री) का 'ती', 'पिय' (पति) का 'पी', 'हिय', (हृदय) का 'ही', 'सुनिय' (सुनिश्र) का 'सुनी', 'पाइय' (पाइश्र) का 'पाई' हो गया है।

३०—'य' के पूर्व किसी और वर्णका संयोग होनेपर कभी-कभी 'य' का लोप हो गया है, जैसे 'स्यन्दन' का 'संदन', 'अन्यत्र' का 'अनत', 'ज्योति' का 'जोति', 'माणिक्य' का 'मानिक', 'श्यामल' का 'साँवरो', 'श्यामकर्ण' का 'सावकरन' किया गया है। कहीं-कहीं ऐसे शब्दोंमें 'य' के स्थान में 'इ' कर दिया गया है और वह उसके पूर्ववर्ती व्यंजनमें मिल गया है जैसे—'अगस्य' से 'अगस्ति', 'अवश्य' से 'अवसि', 'विन्ध्य' से 'बिंधि', 'व्यंजन' से 'विंजन', 'सत्य' से 'सति', 'व्यंग्य' से 'बिंग्य', 'सत्यभाव' से 'सतिभाउ' 'व्यवहार' से 'बिहार' आदि।

३१—कहीं-कहीं शब्दोंके मध्यवर्ती अथवा पदान्तके 'य' का लोप होकर उनके साथका स्वर मात्र शेष रह गया है, जैसे 'विषयी' का 'बिषई' 'विजयी' का 'बिजई' 'यातनामयी' का 'जातनामई', 'वायु' का 'बाउ', 'पीयूष' का 'पीऊष' तथा कहीं-कहीं 'य' के स्थान में 'इ' हो गया है; जैसे—'समुदाय' का 'समुदाई', 'विषयक' का 'बिषइक', 'सहाय' का 'सहाइ' आदि।

३२—शब्दोंके मध्यवर्ती एवं पदान्तके 'म' के स्थान में 'व' का कहीं-कहीं प्रयोग कर दिया गया है, जैसे—'प्रमान' से 'प्रवान', 'गमन' से 'गवन', 'दमन' से 'दवन' आदि। इसके विपरीत कहीं-कहीं व के

स्थानमें 'म' कर दिया गया है, जैसे 'यवन' के स्थानपर 'जमन', 'यवनिका' के स्थानपर 'जमनिका' कर दिया गया है। कहीं-कहीं 'म' के स्थानमें व भी कर दिया है, जैसे 'श्राम्र' से 'आंव' आदि।

३२—कहीं-कहीं शब्दोंके मध्यवर्ती और पदान्तके 'भ' के स्थानमें 'ह' कर दिया गया है, जैसे *'सौभाग्य'* से *'सोहाग'*, *'लाभ'* से *'लाह'* आदि। इसी प्रकार शब्दोंके मध्यवर्ती 'फ' के स्थानमें 'ह' कर दिया गया है जैसे—'मुक्ताफल' से 'मुकताहल'।

३४—कहीं-कहीं शब्दोंके मध्यवर्ती अथवा पदान्तके 'द' का लोप होकर उसके साथका स्वरमात्र शेष रह गया है, जैसे 'हृदय' का 'हियउ' अथवा 'हिअ' 'प्रस्वेद' से 'पसेउ' 'भेदु' से 'भेउ' आदि।

गोस्वामीजीकी रचनामें भाषा और शब्दोंके विविध रूपोंको इस प्रकार देखकर कहना पड़ेगा कि उनकी रचना दार्शनिक, धार्मिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक दृष्टिकोणसे जितना महत्त्व रखती है, उससे अधिक महत्व उसका भाषाके दृष्टिकोणसे भी है।

सगुणधारा

४. महात्मा सूरदास (कृष्ण-काव्य)

१—कृष्ण-भक्तिकी परम्परा—ऊपर लिखा जा चुका है कि यद्यपि हिन्दू-जनतामें अवतारोंकी भावना अत्यन्त प्राचीनकाल (अनादिकाल) से चली आ रही है; किन्तु ऐतिहासिक दृष्टिसे कृष्णचरितका प्रथम वर्णन करनेवाला ग्रन्थ महर्षि कृष्णद्वैपायन व्यास प्रणीत 'महाभारत' ही है। आगे चलकर कृष्ण भक्ति व्यापकरूपसे बहुत अधिक बढ़ी और उसका प्रभाव बौद्धकालके बाद तक रहा और है। प्रसिद्ध ग्रन्थ 'अमरकोष' के प्रणेता अमरसिंहने (जिन्हें महाराज विक्रमकी सभाका अन्यतम रत्न कहा जाता है और जिनका समय दो हजार वर्ष पूर्व निश्चित होता है) धार्मिक दृष्टिसे बौद्ध होते हुए भी 'अमरकोष' में ब्रह्मा, विष्णु और महेशका वर्णन करते हुए श्रीकृष्णका भी वर्णन किया है—'विष्णुर्नारायणः कृष्णः' से प्रारम्भ करके इन्होंने उपेन्द्र (इन्द्रके छोटे भाई), कैटभजित् (मधु कैटभके मारनेवाले), श्रीपति, स्वयम्भू, यज्ञपुरुष, विश्वरूप, जलशायीके साथ-साथ दामोदर, माधव, देवकीनन्दन और वसुदेवका पुत्र भी कहा है।

'सर भंडारकर वासुदेव और कृष्णमें अन्तर मानते हैं, उनका विचार है कि 'सात्वत' एक क्षत्रियवंशका नाम था, जिसे 'वृष्णि' भी कहते थे। वासुदेव इसी 'सात्वत' वंशके एक महापुरुष थे, और उनका समय ईसासे ४०० वर्ष पूर्व है। उन्होंने ईश्वरके एकत्व भावका प्रचार किया था। उनकी मृत्युके बाद उसी वंशके लोगोंने वासुदेव ही को साकार रूपसे ब्रह्म मान लिया है। 'भगवद्गीता' इसी कुलका ग्रन्थ है।

'इसी प्रकार वासुदेवका प्रथम रूप नारायण था, बादमें विष्णु और अन्तमें गोपालकृष्ण।

'कृष्ण एक वैदिक ऋषिका नाम था, जिसने 'ऋग्वेद' के अष्टम मंडलकी रचना की थी, वह उसमें अपना नाम कृष्ण लिखता है। 'अनुक्रमणी'का लेखक उसे आंगिरस नाम देता है। इसके बाद 'छांदोग्य उपनिषद' में कृष्ण देवकीके पुत्रके रूपमें उपस्थित किए जाते हैं। वे घोर आंगिरसके शिष्य हैं। आंगिरसने उन्हें शिक्षा भी दी है:—

"तद्धैतद् घोर आंगिरसः कृष्णाय देवकी पुत्रायोक्त्वो वाचाऽपिपास एवस बभूव, सोऽन्तवेलायामेतत्त्रयं प्रतिपद्येत अक्षितमस्य च्युतमसि प्राणसंशितमसीति।"—(छांदोग्य उपनिषद, प्रकरण ३, खण्ड १७)

"अर्थात् देवकी-पुत्र श्रीकृष्णके लिए आंगिरस घोर ऋषिने शिक्षा दी कि जब मनुष्यका अन्तिम समय आवे, तो उसे इन तीन वाक्योंका उच्चारण करना चाहिए :—

१—त्वं अचितमसि—तू अनश्वर है, २—त्वं अच्युतमसि—तू एक रूप है, ३—त्वं प्राणसंशितमसि—तू प्राणियोंका जीवनदाता है।

"यदि कृष्ण भी आंगिरस थे, तो 'ऋग्वेद' के समयसे 'छांदोग्य उपनिषद'के समय तक उनके सम्बन्धमें जनश्रुति चली आती होगी। इसी जनश्रुतिके आधारपर कृष्णका साम्य वासुदेवमें हुआ होगा। तब वासुदेव देवत्वके पदपर अधिष्ठित हुए होंगे। कृष्ण और वासुदेवके एकत्वका एक कारण और है। 'जातकी'की गाथाके भाष्यकारका मत है कि कृष्ण एक गोत्र-नाम है और यह क्षत्रियों द्वारा भी यज्ञ समयमें धारण किया जा सकता था। इस गोत्रका पूर्णरूप है काष्र्णायन। वासुदेव उसी काष्र्णायन गोत्रके थे, अत. उनका नाम कृष्ण हो गया। इस प्रकार कृष्ण ऋषिका समस्त वेद-ज्ञान और देवकीका पुत्र-गौरव वासुदेवके साथ सम्बद्ध हो गया, क्योंकि वे अब कृष्णके नामसे प्रसिद्ध हो गए।" *

---

* देखिए 'हिन्दी साहित्यका आलोचनात्मक इतिहास'—पृ० ४६२, ४६३—परिवर्द्धित संस्करण तीसरी बार १९५४—डा० श्रीरामकुमार वर्मा एम० ए० पी० एच० डी०।

किन्तु 'महाभारत' और 'भागवत' में महर्षि कृष्णद्वैपायन व्यासने भगवान् श्रीकृष्णका जो परिचय अपनी रचनामें दिया है, वह इस प्रकार है:—

"कृष्ण एव हि भूतानामुत्पत्तिरपि चाव्ययः।
कृष्णस्य हि कृते विश्वमिदं भूतं चराचरम् ॥ १६ ॥
एष प्रकृतिरव्यक्ता कर्त्ता चैव सनातनः।
परश्च सर्वभूतेभ्यस्तस्मात्पूज्यतमोऽच्युतः ॥ २३ ॥
बुद्धिर्मनो महद्वायुस्तेजोऽम्भः खं मही च या।
चतुर्विधं च यद् भूतं सर्वं कृष्णे प्रतिष्ठितम् ॥ २४ ॥"

—(महाभारत—सभापर्व, अध्याय ३८, श्लोक १६,२३,२४)

तथा आगे—"एतत्परमेकं ब्रह्म एतत्परमेकं यशः।
एतदक्षरमव्यक्तं एतत् वै शाश्वतं महः ॥"

—(महाभारत, सभापर्व, अध्याय ६६, श्लोक ६)

इसी प्रकार राजा परीक्षितके पूछनेपर :—

"कथितो वंशविस्तारो भवता सोमसूर्ययोः।
राज्ञां चोभयवंश्यानां चरितं परमाद्भुतम् ॥ १ ॥
यदोश्च धर्मशीलस्य नितरां मुनिसत्तम।
तत्रांशेनावतीर्णस्य विष्णोर्वीर्याणि शंस नः ॥ २ ॥
अवतीर्य यदोर्वंशे भगवान् भूतभावनः।
कृतवान् यानि विश्वात्मा तानि नो वद विस्तरात् ॥ ३ ॥
निवृत्ततर्षैरुपगीयमानाद् भवौषधाच्छ्रोत्रमनोऽभिरामात्।
क उत्तमश्लोकगुणानुवादात् पुमान् विरज्येत विना पशुघ्नात् ॥ ४ ॥
पितामहा मे समरेऽमरञ्जयैर्देवव्रताद्यातिरथैस्तिमिङ्गिलैः।
दुरत्ययं कौरवसैन्यसागरं कृत्वातरन् वत्सपदं स्म यत्प्लवाः ॥ ५ ॥
द्रौण्यस्त्रविप्लुष्टमिदं मदङ्गं सन्तानबीजं कुरुपाण्डवानाम्।
जुगोप कुक्षिं गत आत्तचक्रो मातुश्च मे यः शरणं गतायाः ॥ ६ ॥
वीर्याणि तस्याखिलदेहभाजामन्तर्बहिः पूरुषकालरूपैः।

प्रयच्छतो मृत्युमुतामृतं च मायामनुष्यस्य वदस्व विद्वन् ॥ ७ ।
रोहिण्यास्तनयः प्रोक्तो रामः संकर्षणस्त्वया ।
देवक्या गर्भसम्बन्धः कुतो देहान्तरं विना ॥ ८ ॥
कस्मान्मुकुन्दो भगवान् पितुर्गेहाद् व्रजं गतः ।
क्व च वासं ज्ञातिभिः सार्धं कृतवान् सात्वतां पतिः ॥ ९ ॥"

—("श्रीमद्भागवत" दशम स्कन्ध, प्रथम अध्याय श्लोक १ से ९ तक)

अर्थात्—"भगवन् ! आपने चन्द्र और सूर्यवंशके विस्तार एवं दोनों वंशोंके राजाओंका अत्यन्त अद्भुत चरित्र वर्णित किया। भगवान्‌के परम प्रेमी मुनिवर ! आपने स्वभावसे धर्म-प्रेमी यदुवंशका भी विशद वर्णन किया। अब कृपा करके उसी वंशमें अपने अंश श्रीबलरामजीके साथ अवतीर्ण हुए भगवान् श्रीकृष्णके परम पवित्र चरित्र भी हमें सुनाइये। भगवान् श्रीकृष्ण समस्त प्राणियोंके जीवनदाता एवं सर्वात्मा हैं। उन्होंने यदुवंशमें अवतार लेकर जो-जो लीलाएँ कीं, उनका विस्तारसे हम लोगों-को श्रवण कराइये। भगवान् श्रीकृष्णके गुण और उनकी लीलाएँ इतनी मधुर और रसभावने ही इतनी सुन्दर हैं कि जिन मुक्त महापुरुषोंके हृदय-में किसी भी प्रकारकी लालसा तृष्णा नहीं है, वे भी उनकी ओर आकर्षित होकर नित्य-निरन्तर उनका गायन किया करते हैं। जो लोग इस भव-रोगसे छुटकारा पाना चाहते हैं, उनके लिए तो ये लीलाएँ औषध रूप ही हैं, जन्म-मृत्युके चक्करसे छुड़ा देनेवाली हैं। यहाँ तक कि जो विषय-प्रेमी हैं, उनके मन और कान भी उनमें रम जाते हैं। उन्हें भी उनमें बड़ा रस, बड़ा सुख, मिलता है। ऐसी स्थितिमें पशुघाती अथवा आत्मघाती के अतिरिक्त ऐसा कोई और कौन नहीं हो सकता, जो मुक्त मुमुक्षु और विषयी सभीको सुख देनेवाली भगवानकी लीलाओंमें रुचि न करे। इसके अतिरिक्त मेरे कुलसे तो श्रीकृष्णका बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध है। जब कुरुक्षेत्रमें महाभारत-युद्ध हो रहा था और देवताओंको भी जीत लेनेवाले पितामह भीष्म आदि अतिरथियोंसे दादा पाण्डवोंका युद्ध

हो रहा था, उस समय कौरवोंकी सेना उनके लिए अपार समुद्रके समान थी—जिसमें भीष्म आदि वीर बड़े-बड़े मच्छोंको भी निगल जानेवाले तिमिङ्गिल मच्छोंकी भाँति भय उत्पन्न कर रहे थे; किंतु मेरे पितामह भगवान् श्रीकृष्णके चरणोंकी नौकाका आश्रय लेकर उस समुद्रको *अनायास* ही पार कर गये—ठीक वैसे ही जैसे कोई मार्गमें चलता हुआ स्वभावसे ही बछड़ेके खुरका गड्ढा पार कर जाय। हे महाराज! दादाओंकी बात जाने दें, मेरा यह शरीर जो आपके सामने है एवं जो कौरव और पांडव दोनों ही वंशोंका एकमात्र सहारा था—अश्वत्थामाके ब्रह्मास्त्रसे जल चुका था। उस समय मेरी माता जब भगवान्‌की शरणमें गयी, तब उन्होंने हाथमें चक्र लेकर मेरी माताके गर्भमें प्रवेश किया और मेरी रक्षा की। केवल मेरी ही बात नहीं, वे समस्त शरीरधारियोंके भीतर आत्मारूपसे रहकर अमृतत्वका दान कर रहे हैं और बाहर कालरूपसे रहकर मृत्युका। मनुष्यके रूपमें प्रतीत होना, यह तो उनकी एक लीला है। आप उन्हींकी ऐश्वर्य और माधुर्यसे परिपूर्ण लीलाओंका वर्णन कीजिये। वे मेरे कुलदेवता हैं, जीवनदाता हैं और समस्त प्राणियोंके आत्मा हैं। भगवन् आपने अभी बताया था कि बलरामजी रोहिणीके पुत्र थे। इसके बाद देवकीके पुत्रोंमें भी उनकी गणना की गई। दूसरा शरीर धारण किये बिना दो माताओंका पुत्र होना कैसे सम्भव है? असुरोंको मुक्ति देनेवाले और भक्तोंको प्रेम वितरण करनेवाले भगवान् श्रीकृष्ण अपने वात्सल्य-स्नेहसे भरे हुए पिताका घर छोड़कर ब्रजमें क्यों चले गये? प्रभुने नन्द आदि गोपोंके साथ कहाँ-कहाँ निवास किया?"

उपर्युक्त विवरणसे स्पष्ट है कि भगवान् श्रीकृष्ण महर्षि व्यासके समयसे ही पूर्णब्रह्म मान लिये गये थे। भगवान् श्रीकृष्ण (विष्णु) अवतारके रूपमें; हरिवंशपुराण, वायुपुराण, वाराहपुराण अग्निपुराण और नृसिंहपुराण आदिमें भी वर्णित हैं। इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णकी भक्ति अत्यन्त प्राचीनकालसे चली आ रही है।

२—मत-सिद्धान्त और दार्शनिक पृष्ठ-भूमि—परम्परासे आती हुई जो कृष्णभक्ति, विक्रमकी पन्द्रहवीं-सोलहवीं शताब्दीमें वैष्णव धर्मके आन्दोलनके अन्तर्गत पायी जाती है, उसके प्रवर्त्तकोंमेंसे आचार्य वल्लभ प्रमुख थे। इनका जन्म सम्वत् १५३५ वैशाख कृष्ण ११ को माना जाता है और मृत्यु सम्वत् १५८७ आषाढ़ शुक्ल ३ को मानी जाती है। ये वेद-शास्त्रके बड़े ही प्रकाण्ड पण्डित थे।

भारतमें आचार्य रामानुजसे लेकर वल्लभाचार्य तक जितने भी उच्च-कोटिके भक्त, दार्शनिक या आचार्य हुए, उन सबोंका उद्देश्य स्वामी शंकराचार्यके मायावाद और विवर्त्तवादसे, जिसके अनुसार भक्ति अविद्या या भ्रांति ही ठहरती थी, * पीछा छुड़ाना था। शंकरने केवल निरुपाधि निर्गुणब्रह्मकी ही पारमार्थिक सत्ता स्वीकार की थी। महाप्रभु वल्लभाचार्यने जगत्के मिथ्यात्वका खण्डन करके उपासनाकी प्रतिष्ठा की। समग्र सृष्टिको उन्होंने लीलाके लिए ब्रह्मकी आत्मकृति कहा। भगवान् श्रीकृष्ण ही ब्रह्म हैं। वे निर्गुण, निर्विशेष, कर्ता, भोक्ता, निर्विकार, गुणरहित, समस्त धर्मोंके आश्रय, संसारके धर्मोंसे रहित एवं जगत्के उपादान हैं। जगत् सत्य है। वह कार्य है। ब्रह्मसे अभिन्न उसकी परिणति है, क्योंकि ब्रह्म अविकृत परिणामी है। जगत्में आविर्भाव और तिरोभाव होता रहता है। जीव शुद्ध तथा अणुरूप है। जीवके लिये ब्रह्मसे प्रीति करना ही श्रेष्ठ मार्ग है। ब्रह्म पूर्ण सत्-चित्-आनन्दस्वरूप है। जीवको अपने पूर्ण आनन्दस्वरूपकी प्राप्ति ईश्वरके अनुग्रहपर निर्भर है। अतः उसी अनुग्रहको पुष्ट करना भक्तिकी साधनाका लक्ष्य है। इसीलिये आचार्य वल्लभने पुष्टिमार्गका प्रवर्त्तन किया, क्योंकि बिना ईश्वरके अनुग्रहके मोक्ष नहीं प्राप्त हो सकता।—'मोक्षश्च विष्णु प्रसादमन्तरेण न लभ्यते।'

---

* देखिये आचार्य शुक्ल प्रणीत 'हि० सा० का इतिहास' परिवर्द्धित संस्करण पृष्ठ १५५।

श्रद्धा-मिश्रित प्रेमको भक्ति कहते हैं। वल्लभ सम्प्रदायमें कृष्णके लीला-मय स्वरूपकी उपासनाके कारण प्रेमकी प्रधानता है। प्रेममें अनुरंजनका प्राधान्य रहता है। प्रेममूला-भक्तिके तीन प्रधान तत्त्व माने जाते हैं। *समता, स्वच्छन्दता तथा प्रेमान्तिकता।* *प्रेम-साधनामें* आचार्य वल्लभने वेदमर्यादा और लोक-मर्यादा दोनोंका त्याग विधेय ठहराया। इस प्रेम-लक्षणाभक्तिका मानव-हृदयमें तभी स्फुरण होता है, जब उसपर भगवान्का अनुग्रह होता है, जिसे पुष्टि कहा जाता है। यही कारण है कि वल्लभाचार्यके सम्प्रदायका नाम 'पुष्टि-मार्ग' पड़ा। इस पुष्टिके आचार्य-ने चार भाग किये :—

(१) प्रवाह-पुष्टि— संसारमें रहते हुए भी श्रीकृष्णकी भक्ति प्रवाह रूपसे हृदयमें होती रहे। इसीसे इसे 'प्रवाह-पुष्टि' कहा जाता है।

(२) मर्यादा-पुष्टि—संसारके सुखोंको त्यागकर श्रीकृष्णका गुणगान *करता रहे। इस प्रकार मर्यादापूर्ण भक्तिके विकासको 'मर्यादा-पुष्टि'* कहते हैं।

३—पुष्टि-पुष्टि—श्रीकृष्णका अनुग्रह प्राप्त होनेपर भी भक्तिकी साधना अधिकाधिक होती रहे। इसीका नाम 'पुष्टि-पुष्टि' है।

४—शुद्धपुष्टि—मात्र प्रेम तथा अनुरागके आधारपर श्रीकृष्णका अनुग्रह प्राप्त कर हृदयमें श्रीकृष्णकी अनुभूति हो। यह अनुभूति श्रीकृष्ण-का स्थान हृदयको बना दे तथा गो, गोप, यमुना, गोपी और कदम्ब *आदिके सम्बन्धसे उसे कृष्णमय कर दे। वही 'शुद्धपुष्टि' है।*

इसी 'शुद्धपुष्टि'को वल्लभने अपने सम्प्रदायका चरम उद्देश्य माना है। इसके अनुसार वे प्राणीको राधाकृष्णके साथ गोलोकमें स्थान पा जानेपर ही सार्थक समझते हैं।

जिस प्रकार रामानुजाचार्यसे प्रभावित होकर उनके अनुयायी स्वामी-रामानन्दने विष्णु या नारायणके रूप रामकी भक्तिका प्रचार उत्तर-भारतमें किया, उसी प्रकार निम्बार्क, मध्व तथा विष्णु गोस्वामीके

आदर्शोंको मानकर उनके अनुयायी महाप्रभु चैतन्य और आचार्य वल्लभने विष्णुके रूपमें श्रीकृष्णकी भक्तिका प्रचार किया। रामानुजाचार्य और अन्य आचार्यों—निम्बार्क, मध्व और विष्णु स्वामी—की भक्तिमें कुछ अन्तर है। रामानुजकी भक्तिमें चिन्तन और ज्ञान दोनोंका महत्व स्वीकार किया गया है। इसलिये मुक्ति पानेके लिए इसकी विशेष आवश्यकता है, किन्तु इन तीनों आचार्योंकी भक्तिमें ज्ञानकी अपेक्षा प्रेमका महत्व अधिक है। इसमें आत्म-चिन्तनकी उतनी आवश्यकता नहीं; जितनी आत्मसमर्पणकी; इसमें श्रवण, कीर्तन, स्मरण, अर्चन, वंदन और आत्म-निवेदनकी अधिक आवश्यकता है। इस भक्तिकी उद्‌भावना प्रेमसे होती है।

भगवान् श्रीकृष्णकी यह भक्ति महाभारत कालसे आकर ईसाकी पंद्रहवीं-सोलहवीं शताब्दीमें महाप्रभु चैतन्य और आचार्य वल्लभकी प्रतिभाका योग पाकर भलीभाँति प्रसार पाने लगी। आचार्य वल्लभने दार्शनिक-क्षेत्रमें जैसे 'शुद्धाद्वैत'की प्रतिष्ठा की, वैसे ही भक्तिके क्षेत्रमें 'पुष्टिमार्ग'की। आचार्य वल्लभके इस 'पुष्टिमार्ग'में अनेक प्रतिभा-सम्पन्न लोग दीक्षित हुए, जिन्होंने भगवान् श्रीकृष्णकी भक्तिपर श्रेष्ठ रचनाएँ कीं। इसमें 'अष्टछाप' बहुत प्रसिद्ध है। इसकी स्थापना वल्लभाचार्यके पुत्र श्रीविट्ठलनाथने की। इसी अष्टछापके कवियोंमें महात्मा सूरदास तथा नन्ददास आदि ब्रज-भाषाके उत्कृष्ट कवि हुए।

३—कवि और रचनाएँ—हिन्दी-साहित्यमें कृष्ण-काव्यकी रचना विद्वानोंने कवि 'जयदेव'से मानी है। जयदेवके बाद विद्यापति हुए; किन्तु विद्यापति कृष्णभक्तोंकी परम्परामें नहीं थे। वे शैव थे। श्रीकृष्णसे सम्बन्धित उन्होंने जो रचना की, उसमें उनका दृष्टिकोण भक्तिका न होकर केवल शृङ्गारका ही रहा। आगे चलकर यास्तविकरूपसे ब्रजभाषामें कृष्ण-काव्यकी रचनाका श्रेय वल्लभाचार्यको ही है। क्योंकि उनके द्वारा प्रचारित 'पुष्टिमार्ग'में दीक्षित होकर सूरदास आदि कवियोंने कृष्ण-काव्यकी

रचना की। कृष्ण काव्यके कवियोंमें सर्वश्रेष्ठ कवि महात्मा सूरदास हैं। इनके अतिरिक्त छोटे बड़े और भी कवि हैं जिनके नाम हैं—नन्ददास, कृष्णदास, परमानन्ददास, कुम्भनदास, चतुर्भुजदास, छीतस्वामी, गोविन्दस्वामी, मीराबाई, छीहल, लालदास, श्रीगिरधर भट्ट, कृपाराम, सूरदासमदनमोहन, नरोत्तमदास, हरिराय, ललीर, गोविन्ददास, स्वामी हरिदास, हितहरिवंश, श्रीभट्ट, व्यासजी, निपटनिरंजन, लक्ष्मीनारायण, बलभद्र मिश्र, गणेश मिश्र, कादिर, मोहन, मुबारक, बनारसीदास, रसखान, ब्रजमार दीक्षित, अहमद, भीष्म, ध्रुवदास, सुन्दरदास, चतुरदास, भुवाल, धर्मदास, सुखदेव मिश्र, रसिकदास, हरिवल्लभ, जगतानन्द, मनोहर कवि, जयतराम, रहीम, बीरबल, होलराय, टोडरमल, नरहरि बन्दीजन और गंग। इनके अतिरिक्त आधुनिककालके कवियोंमें अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध', बाबू जगन्नाथदास 'रत्नाकर', बाबू मैथिलीशरण गुप्त और ठाकुर गोपालशरणसिंह आदि भी हैं।

कृष्ण-काव्यके इन सभी कवियोंमें सर्वश्रेष्ठ कवि महात्मा सूरदास हैं।* ये वल्लभाचार्यके प्रधान शिष्य थे। हिन्दीमें रामकाव्यके कवियोंमें जो स्थान गोस्वामी तुलसीदासजीका है, वही स्थान कृष्ण-काव्यके कवियोंमें महात्मा सूरदासका भी है। यद्यपि तुलसीदासजीकी भाँति सूरका काव्य क्षेत्र इतना विस्तृत नहीं है कि उसमें जीवनकी विभिन्न दशाओंका चित्रण हो,

---

* सूरदासका जन्म सम्वत् १५४० और मृत्यु सं० १६२० के आस पास हुई माना जाता है। ये अन्धे थे और महाकवि चन्दवरदायीके वंशज थे, इनके ६ बड़े भाई युद्धमें मारे गए थे। ये विरक्त भावसे मथुरा और आगराके बीच गौघाटपर रहते थे, इनकी जब वल्लभाचार्यसे भेंट हुई तब इनके पदोंको सुनकर वे प्रभावित हुए और श्रीनाथजीके मन्दिरपर कीर्तन करनेका आदेश दिया। तबसे ये गोवर्द्धन पर्वतपर ही मन्दिरकी सेवामें रहा करते थे।

किन्तु शृङ्गार और वात्सल्यके क्षेत्रमें जहाँ तक सूरदास पहुँच सके, वहाँ तक और कवियोंको पहुँचनेका सौभाग्य नहीं प्राप्त हुआ। बालकोंके स्वाभाविक भावोंकी व्यंजनामें जितनी सुन्दर रचना इस कविने की, उतनी बालसुलभ भावों तथा चेष्टाओंकी व्यंजना तुलसीदासजीकी रचनाओंमें भी नहीं मिलती। आचार्य शुक्लके विचारानुसार—"जयदेवकी देववाणीकी स्निग्ध पीयूषधारा जो कालकी कठोरतामें दब गई थी, अवकाश पाते ही लोक-भाषाकी सरसतामें परिणत होकर मिथिलाकी अमराइयोंमें विद्यापतिके कोकिलकंठसे प्रकट हुई और आगे चलकर ब्रजकी करील-कुञ्जोंके बीच फैले मुरझाए मनोंको सींचने लगी। आचार्योंकी छाप लगी हुई आठ वीणाएँ श्रीकृष्णकी प्रेमलीलाका कीर्त्तन करने उठीं, जिनमें सबसे ऊँची, सुरीली और मधुर झनकार अन्धे कवि सूरदासकी वीणाकी थी। भक्त-कवि सगुण उपासनाका रास्ता साफ करने लगे। निर्गुण उपासनाकी नीरसता और अग्राह्यता दिखाते हुए ये उपासनाका हृदयग्राही स्वरूप सामने लानेमें लग गए। इन्होंने भगवान्‌का प्रेममय रूप ही लिया; इससे हृदयकी कोमल वृत्तियोंके ही आश्रय और आलम्बन खड़े किए। आगे जो इनके अनुयायी कृष्ण-भक्त हुए, वे भी उन्हीं वृत्तियोंमें लीन रहे। हृदयकी अन्य वृत्तियों (उत्साह आदि) के रंजनकारी रूप भी यदि वे चाहते तो कृष्णमें ही मिल जाते, पर उनकी ओर वे न बढ़े।"* हम कृष्ण-काव्यका प्रतिनिधि कवि सूरको ही मानकर उनकी साधनापर ही विचार करेंगे। यद्यपि कृष्ण-काव्यके कुछ और भी कवि ऐसे हैं, जिन्हें छोड़ा नहीं जा सकता। किन्तु इस ग्रन्थमें स्थानाभावसे उन श्रेष्ठ कवियों पर विचार नहीं किया जा रहा है।

४—महात्मा सूर की रचनाएँः—सूर-कृत ग्रन्थोंमें, विद्वानोंने छः ग्रन्थोंका पता लगाया है। जिनके नाम हैं—सूरसागर, साहित्य-लहरी,

* देखिए आचार्य शुक्ल प्रणीत 'त्रिवेणी' पृ० ६३-६४।

सूरसारावली, ब्याहलो, नल-दमयन्ती और हितहरिवंशकी टीका। इनमें अन्तिम तीनों अप्राप्य हैं। इन सभी ग्रन्थोंमें सूरसागर ही श्रेष्ठ है। जिसमें श्रीमद्‌भागवतके विभिन्न स्कन्धोंका सामान्य परिचय देते हुए दशम् स्कंधकी कथाका बड़े विस्तारसे सूक्ष्म विवेचन मिलता है। 'सूरसारावली' और 'साहित्य लहरी' 'सूरसागर' के बादकी कृति हैं। इनका निर्देश अनेक स्थलोंपर स्वयं सूरदासने भी किया है। सूरने भागवत्‌के अनुरूप कथा कहनेपर भी इसमें मौलिकता ला दी है। सूरसागरकी रचनाको तीन भागोंमें विभक्त किया जा सकता है। १—विनयके पद, २—बाल-लीला-वर्णन और ३—शृङ्गार-वर्णन।

विनयके पदोंसे सूरको एक मुक्त गायकको भाँति माना जा सकता है। आत्म-परिष्कार और प्रबोधनके लिये विनयका विशेष महत्व है। वास्तवमें भगवान् और भक्तके बीचकी यही कड़ी है। इसीके माध्यमसे आत्म-विस्तारके साथ जीवन-भावनाके केन्द्रमें भी परिवर्तन होता है। मनुष्य व्यष्टिसे ऊपर उठकर समष्टि-चेतनाकी ओर प्रेरित होता है। वैष्णव सम्प्रदायके अनुसार विनयके द्वारा भगवत् आश्रय ग्रहण करनेमें निम्नांकित नियमोंका पालन आवश्यक होता है :—

"अनुकूलस्य संकल्पं, प्रतिकूलस्य वर्जनम्,
रक्षिष्यतीति विश्वासो तथा गोप्तृत्व - वर्णनम्
आत्म निक्षेप कार्पण्यं षडविधा शरणागतिः।"

अर्थात् अपने इष्टदेवके अनुकूल गुणोंको धारण करनेका संकल्प, प्रतिकूल गुणोंका त्याग, ईश्वरके संरक्षणमें दृढ़ विश्वास, अपने गोप्ता यानी रक्षकका गुणगानपूर्ण आत्मसमर्पणका भाव तथा दीनता और अपने पापोंको प्रकट करते हुए उसके मार्जनके लिए विनय करना। महात्मा सूरके पदोंमें इन्हीं नियमोंकी व्यंजना मिलती है। वास्तवमें भक्त हृदयके उद्गारों एवं विदग्धताओंके आधारपर इस प्रकारकी व्यवस्था नियमित की गयी है। महात्मा सूरके विनयके पद इसी प्रकारके हैं :—

"बन्दौं चरन-कमल हरि राई।
जाकी कृपा पंगु गिरि लंघै अँधरे को सब कुछ दरसाई॥"

उपर्युक्त पदमें अपने आराध्यके महत्वकी व्यापक स्वीकृतिके साथ दीनताकी मार्मिक व्यंजना की गयी है। इसी प्रकार निम्नांकित पदमें :—

"मेरी तो गति पति तुम, अनतहिं दुख पाऊँ।
हौं कहाय तेरो अब, कौन को कहाऊँ॥"

कितनी अपार श्रद्धा, विश्वास तथा आत्मग्लानिका समन्वय देखनेको मिलता है। भगद्विषयक रति, वात्सल्य और दाम्पत्य-रतिको ग्रहण कर सूरदासने जिस प्रकार भगद्विषयक पदोंमें विनयकी अत्यन्त मार्मिक सृष्टि की, उसी प्रकार बाललीलाके पदोंमें वात्सल्य-प्रेम और गोपियोंके प्रेम-सम्बन्धी पदोंमें दाम्पत्य रति-भावकी अत्यन्त हृदयस्पर्शी व्यंजना की है। नीचे हम सूरकी बाललीला और शृङ्गार-विषयोंकी विवेचना करेंगे।

बाललीला—बाललीलाओंका जितना विस्तृत स्वाभाविक और मनोहर चित्रण सूरने किया है, उतना विस्तृत स्वाभाविक और मनोहर वर्णन अन्यत्र नहीं मिलता। कवि सूरने अपनी रचनामें शैशवकालसे लेकर कौमारावस्था तकको कितनी ही बाल्य-भावोंकी सुन्दर और स्वाभाविक व्यंजना कर हिन्दी-साहित्यके भाण्डारको भरा है। बाल-चेष्टाओंके कुछ उदाहरण नीचे दिए जा रहे हैं :—

"मैया कबहिं बढ़ैगी चोटी?
किती बार मोहिं दूध पियत भइ, यह अजहूँ है छोटी।
तू जो कहति बल की बेनी ज्यों है है लाँबी मोटी॥"

"सोभित कर नवनीत लिए।
घुटुरुन चलत, रेनु तन मंडित, मुख दधि लेप किए॥"

"पाहुनो करि दै तनक मह्यो।
आरि करै मनमोहन मेरो, अंचल आनि गह्यो॥
व्याकुल मथत मथनियाँ रीती, दधि भ्वैं ढरकि रह्यो॥"

बालकोंकी सरलसे सरल प्रवृत्तियोंका चित्रण करनेमें सूरदासने जैसे बालकोंके हृदयमें पैठकर यथातथ्य उनकी भावनाओंको ग्रहण करनेकी चेष्टा की है। इसके अतिरिक्त सूरने भगवान् श्रीकृष्णके जन्मोत्सव, छठी, बरही, नामकरण, अन्नप्राशन, बधावा आदिका मनोवैज्ञानिक ढंगसे चित्रण किया है।

"भीतर तें बाहर लौं आवत।
घर आँगन अति चलत सुगम भयो देहरी में अटकावत॥
गिर गिर परत बात नहिं उलँघी अति श्रम होत न धावत।
अहुठ पैर बसुधा सब कीन्हीं धाम अवधि बिरमावति॥
मन ही मन बलबीर कहत हैं ऐसे रंग बनावत।
'सूरदास' प्रभु अगनित महिमा भक्तन के मन भावत॥"

बालकोंका देहरी पार करनेके लिए बार-बार प्रयत्न करना सूरदासके सूक्ष्म-निरीक्षणका उज्वल प्रतीक है। इसी प्रकार बालक श्रीकृष्ण गोपियों का दही चुराकर घरमें छिप जाते हैं और गोपियाँ यशोदाको उलाहना देने आती हैं इसमें कितनी स्वाभाविकता है :—

"जसोदा कहाँ लौं कीजै कानि।
दिन प्रति कैसे सही परति है दूध दही की हानि॥
अपने या बालक की करनी जो तुम देखो आनि।
गोरस खाइ ढूँढ़ि सब बासन भली करी यह बानि॥
मैं अपने मन्दिर के कोने माखन राख्यो बानि।
सोइ जाइ तुम्हारे लरिका लीनी है पहिचानि॥
बूझी ग्वालिन घर में आयो नेकु न संका मानी।
'सूरस्याम' तब उतर बनायो चींटी काढ़त पानी॥"

शृङ्गार-वर्णन—शृङ्गार-वर्णनके अन्तर्गत महात्मा सूरने भगवान् श्रीकृष्णके चरित्रमें संयोग और वियोग दोनों पक्षोंको अपनाया है और सफल रचना की है; किन्तु सूरकी वियोग-पक्षकी रचनाएँ ही अत्यन्त उत्कृष्ट

है। तुलसीदासकी भाँति यद्यपि सूरदासने मर्यादाका निर्वाह तो नहीं किया है, किन्तु इतना तो मानना ही होगा कि सूरके शृंगार-वर्णनमें रसका पूर्ण परिपाक होने पर भी अश्लीलता नहीं आने पायी है। ऊपर हम लिख आए हैं कि सूरकी भक्ति सख्य-भावकी है, अतः इस दृष्टिसे यदि शालीनता और मर्यादाका निर्वाह सूरने नहीं किया तो न सही, किन्तु राधा और श्रीकृष्णका शृङ्गार-वर्णन पढ़ते हुए यह तो ज्ञात ही हो जाता है कि कवि अपने आराध्य राधा तथा श्रीकृष्णका शृङ्गार-वर्णन कर रहा है, जो ईश्वरीय शक्तियोंसे विभूषित हैं। सूरने साधारण स्त्री-पुरुषोंकी भाव-भंगिमाओंका चित्रण उपस्थित करते हुए भी दिव्य-शक्तियों-से संयत राधा-कृष्णके शृङ्गार-वर्णनमें पवित्रताका ध्यान रखा है। जिस कल्याणकारी भक्ति-भावनाकी सृष्टि सूरने श्रीराधा-कृष्णके शृङ्गार-वर्णनमें की, उसे अन्य रीतिकालके कवि न अपना सके; क्योंकि दरबारी कवियों-की रचनाएँ, जहाँ तलवारोंकी खनखनाहटोंके स्थान पर विलासिताके घुँघरुओंकी ध्वनियोंसे अनुरणित वातावरण था, वासनाके लाञ्छनसे दूषित हो गयीं। डाक्टर श्रीरामकुमार वर्माके शब्दोंमें—'सूरने जो शृङ्गार लिखा है उसकी एक बूंद भी ये बेचारे कवि नहीं पा सके हैं। जिस प्रकार उज्ज्वल शिखासे काजल निकलता है, उसी प्रकार सूरके उज्ज्वल और तेजोमय पवित्र शृङ्गारसे अठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दीका कलु-षित शृङ्गार प्रादुर्भूत हुआ।'* वास्तवमें वासना जाग्रत करनेके उपकरणों-का पाठकोंके समक्ष सूरदास चित्रण अवश्य उपस्थित करते हैं, किन्तु वे सौन्दर्यकी इतनी सुन्दर सृष्टि कर देते हैं कि पाठकका हृदय उसके रूप पर ही अधिक मुग्ध हो जाता है उसमें वासनाकी भावना जाग्रत होनेके के लिए अवसर ही नहीं प्राप्त होता।

---

* देखिए हिन्दी-साहित्यका आलोचनात्मक इतिहास तृतीय संस्करण, पृ० ५३७।

महाकवि सूरने सामान्य हृदय-तत्वकी सृष्टि-व्यापिनी भावनाके माध्यम-से वियोगका जो वर्णन किया है, वह विश्व-साहित्यमें अपनी एक विशेषता रखता है। सूरदासकी वियोग-रचनामें, विरह-जीवनके जितने चित्र हैं, वे भावनाओंकी गहरी अनुभूति लिए हुए हैं। विद्वानोंने विरहकी जो ग्यारह अवस्थाएँ मानी हैं, अर्थात् अभिलाषा, चिन्ता, स्मरण, गुण-कथन उद्वेग, प्रलाप, उन्माद, व्याधि, जड़ता, मूर्च्छा और मरण इन सबोंका उचित वर्णन 'भ्रमरगीत'के अन्तर्गत मिलता है; जिनके उदाहरण नीचे दिए जाते हैं :—

१—अभिलाषा—'निरखत अंक स्यामसुन्दरके बार-बार लावति छाती।
लोचन जल कागद मषि मिलि कै होइ गइ स्याम स्याम की पाती॥'

२—चिन्ता—"मधुकर ये नैना पै हारे।
निरखि-निरखि मग कमल-नयन को प्रेम-मगन भए भारे॥"

३—स्मरण—"मोरे मन इतनी सूल रही।
वे बतियाँ छतियाँ लिखि राखीं जे नँदलाल कही॥"

४—गुणकथन—"सँदेशो देवकी सों कहियो।
हौं तो धाय तिहारे सुत की, कृपा करत ही रहियो॥
उबटन तेल और तातो जल, देखे ही भजि जाते।
जोइ जोइ माँगत सोइ सोइ देती धर्म कर्म के नाते॥
तुम तौ टेव जानती होइहौ तऊ मोहिं कहि आवै।
प्रात उठत मेरे लाल लड़ैतहि माखन रोटी भावै॥
अब यह सूर मोहिं निसि-बासर बड़ो रहत जिय सोच।
अब मेरे अलक लड़ैते लालन ह्वइहै करत सँकोच॥"

५—उद्वेग—"तिहारी प्रीति, किधौं तरवारि।
दृष्टिधार करि मारि साँवरे, घायल सब ब्रजनारि॥"

६—प्रलाप—"कैसे के पनघट जाउँ सखीरी डोलों सरिता तीर।
भरि भरि जमुना उमड़ चली है, इन नैनन के नीर॥

इन नैनन के नीर सखीरी, सेज भई घरनाउँ।
चाहति हौं याही पर चढ़ि कै स्याम मिलन को आउँ ॥"

७—उन्माद—"माधव यह ब्रज को व्योहार।
मेरो कह्यो पवन को भुस भयो गावत नन्दकुमार ॥
एक ग्वालिन गोधन ले रेंगति, एक लकुट करि लेत।
एक मंडली करि बैठारति, छाक बाँटि कै देति ॥"

८—व्याधि—
"ऊधो जू मैं तिहारे चरन, लागौं बारक या ब्रज करवि भाँवरी।
निसि न नींद आवै, दिन न भोजन भावै मग जोवत भई दृष्टि झाँवरी ॥"

६—जड़ता—"बालक संग लिए दधि चोरत, खात खवावत डोलत।
'सूर' सीस सुनि चौंकत नावहिं, अब काहे न मुख बोलत ॥"

१०—मूर्च्छा—"सोचति अति पछताति राधिका, मूर्च्छित धरनि ढही।
'सूरदास' प्रभु के बिछुरे ते, बिथा न जात सही ॥"

११—मरण—
"जब हरि गवन कियो पूरब लौं, तब लिखि जोग पठायो।
यह तन जरि कै भस्म ह्वै निवर्‍यो बहुरि मसान जगायो ॥
कै रे, मोहन आनि मिलाओ, कै ले चलु हम साथे।
'सूरदास' अब मरन बन्यो है, पाप तिहारे माथे ॥"

इस प्रकार महात्मा सूरने विरह-वर्णनका सांगोपांग वर्णन कर हिन्दी-साहित्यके गौरवका स्तरोन्नयन किया है। शृङ्गार-वर्णनके दोनों पक्षोंमें सूरको अद्भुत सफलता मिली है। संयोग-वियोगकी विभिन्न दशाओंके अनेक सुन्दर और मनोमुग्धकारी चित्रोंको अपनी रचनामें सूरने उपस्थित किया है। वियोग सम्बन्धी पदोंका संग्रह 'भ्रमरगीत'में किया गया है। 'भ्रमरगीत'को उपालम्भका अत्यन्त उत्कृष्ट संग्रह समझना चाहिए।

५—रस निरूपण—शृङ्गारके साथ ही साथ सूरने करुण और हास्यरसकी भी व्यंजनाकी है। श्रीकृष्णके मथुरासे ब्रज न लौटनेकी निराशा-

से करुणरस और उद्धवके ज्ञान-मार्गके परिहाससे हास्यरसकी सृष्टि हुई है। नीचे कुछ उदाहरण दिए जाते हैं :—

करुणरस—"अति मलीन वृषभानु कुमारी।
हरिश्रम जल अन्तर तनु भीजे ता लालच न धुवावति सारी॥
अधोमुख रहति उरध नहिं चितवति, ज्यों गथ हारे थकित जुआरी।
छूटे चिहुर बदन कुम्हिलाने, ज्यों नलिनी हिमकर की मारी॥
हरि सँदेस सुनि सहज मृतक भई इक विरहिन दूजे अलि जारी।
'सूरस्याम' बिनु यों जीवत हैं ब्रज-बनिता सब स्याम दुलारी॥"

हास्यरस—"निर्गुन कौन देस को बासी।
मधुकर हँसि समुझाय सौंह दै बूझति साँच न हाँसी॥
को है जनक जननि को कहियत, कौन नारि को दासी।
कैसो बरन भेस है कैसो वहि रस में अभिलासी॥"

इन रसोंके अतिरिक्त सूरदासने दूसरे रसोंका भी वर्णन किया है, किन्तु सब गौणरूपसे हैं। इन रसोंमें कोमल रस ही प्रधान है; जिनमें अधिकता अद्भुत और शान्तकी है।

रस-निरूपणमें सूरने मनोवैज्ञानिक भावनाओंको सरस राग-रागिनियोंमें वर्णित किया है, जिनके प्रभावसे सूरकी रचना अत्यन्त मधुर और आकर्षक हो गयी है। रस-निरूपणमें निम्नलिखित राग-रागिनियोंका प्रयोग सूरने किया है :—

शृंगाररसके अन्तर्गत—ललित, गौरी, बिलावल, सूही और बसन्त; हास्यरसके अन्तर्गत—टोड़ी, सोरठ, सारंग; और शान्तरसके अन्तर्गत—रामकली आदि। इसके अतिरिक्त सूरने विभास, नट, कल्याण और मलार आदि रागोंका भी यथास्थान प्रयोग किया है।

अलंकार-योजना—महात्मा सूरकी रचनामें अलंकार भी अधिक आए हैं, जिनमें शब्दालंकारकी अपेक्षा अर्थालंकारकी योजना प्रधान है। शब्दालंकारका प्रयोग प्रायः चमत्कार-वर्द्धनकी दृष्टिसे होता है, किन्तु

अर्थालंकारमें चमत्कारके अतिरिक्त अर्थ-व्यंजनाकी प्रधानता रहती है। सूरकी अलंकार-योजना अर्थ-व्यंजनाके लिए ही हुई है। रचनामें कहीं-कहीं ऊहात्मक प्रसंगोंकी योजना विशुद्ध कलात्मक दृष्टिसे की गई है। उनमें भाव-सौन्दर्यकी अपेक्षा चमत्कार एवं कलात्मकताका अंश अधिक है। सूरदासके कुछ पद दृष्टि-कूटके अन्तर्गत भी आते हैं, जिनमें साहित्यिकता संदिग्ध है। प्रस्तुतके सीमित होनेके कारण तथा अप्रस्तुतके आधिक्यसे सूरकी रचनामें परिस्थितियोंके गम्भीर वर्णनका अभाव मिलता है।

६—भक्ति-भावना—वल्लभाचार्यके पुष्टिमार्गमें 'नारद-भक्ति-सूत्र'में वर्णित भक्तिके अनुसार ग्यारह प्रकारकी भक्ति भगवान् श्रीकृष्णके प्रति प्रतिष्ठितकी गयी है। महात्मा सूरने कृष्णके प्रति यशोदा, नन्द, गोप और गोपियोंकी आसक्तिके माध्यमसे इन सभी ग्यारह आसक्तियोंकी व्यंजनाकी है। भ्रमरगीतमें गुणमाहात्म्यासक्ति, दानलीलामें रूपासक्ति, गोवर्द्धन-धारणमें पूजासक्ति, गोपिका-वचन परस्परमें स्मरणासक्ति, मुरली-स्तुतिमें दास्यासक्ति, गौचारणमें सख्यासक्ति गोपिका-विरहमें कान्तासक्ति, यशोदा-विलापमें वात्सल्यासक्ति, और शेष आत्मनिवेदनासक्ति और परम विरहासक्ति भ्रमरगीतकी रचनामें वर्णित हैं। महात्मा सूरने उपर्युक्त ग्यारह आसक्तियोंकी बड़ी सुन्दर व्यंजनाकी है। पुष्टिमार्गके अन्तर्गत कीर्तनका विशेष महत्व है, क्योंकि वल्लभाचार्यके आदेशसे सूरदास श्रीनाथ और नवनीतप्रियाजीके समक्ष कीर्त्तन किया करते थे। इस कीर्तनमें 'सूरसागर'के अनेक पदोंकी रचना हुई है। पुष्टिमार्गके अन्तर्गत श्रीकृष्णके चरित्रका जो वर्णन है, उसमें प्रभातीसे उठना, शृंगार करना, गो-चारण, भोजन और शयन आदि प्रमुख हैं। इनसे संबंधित पदोंमें साम्प्रदायिक दृष्टिसे पुष्टिमार्गके सिद्धान्तोंका प्रचार भी था। इसके अतिरिक्त डाक्टर श्रीरामकुमार वर्माके शब्दोंमें—"श्रीकृष्णकी मुरली 'योगमाया' है। रास-वर्णनमें इसी मुरलीकी ध्वनिसे गोपिका रूप आत्माओंका आह्वान् होता

है, जिससे समस्त बाह्याडम्बरोंका विनाश और लौकिक संबंधोंका परित्याग कर दिया जाता है। गोपियोंकी परीक्षा, उसमें उत्तीर्ण होने पर उनके साथ रास-क्रीड़ा, १६ सहस्र गोपिकाओंके बीचमें श्रीकृष्ण, जिस प्रकार असंख्य आत्माओंके बीचमें परमात्मा है यही रूपक है। लौकिक चित्रणके पीछे सूरदासकी यही अलौकिक भावना छिपी है।'* ऊपर लिखा जा चुका है कि सूरकी भक्ति सख्य भावकी थी, किन्तु आरंभिक कुछ पद तुलसीदासके दृष्टिकोणसे मिलते हुए, दास्य भावके हैं। शेष सभी पद तो सख्य-भावके अन्तर्गत ही लिए जायँगे। गोस्वामी तुलसीदासकी भाँति इन्होंने मूर्तिपूजा, तीर्थव्रत, वेद-महिमा और वर्णाश्रम-धर्म पर जोर नहीं दिया और इनकी रचनामें धर्म-प्रचारकी उतनी भावना तथा लोक-रक्षाकी स्थापना नहीं हुई है, जितनी तुलसीदासकी रचनामें पाई जाती है; किन्तु इतना होने पर भी विनयके पदोंमें सगुणोपासनाका प्रयोजन, भक्तिकी प्रधानता; और मायामय संसार आदि पर उत्कृष्ट पद हैं। इसके अतिरिक्त भगवान् विष्णुके चौबीस अवतारों पर भी इन्होंने रचनाकी है। महात्मा सूरने सगुणोपासनाका निरूपण बड़ेही मार्मिक ढङ्गसे कियाहै। 'भ्रमरगीत'में मर्मस्पर्शी एवं वाग्वैदग्ध्यपूर्ण रचना करनेके साथही साथ निर्गुण-ब्रह्मज्ञान एवं योग-कथाके समक्ष सगुणोपासनाकी प्रतिष्ठा कर अपने समयमें प्रचलित निर्गुण-संत-सम्प्रदायके उपासना-पद्धतिकी सूरने खिल्ली उड़ाई है। जब गोपियोंको उद्धव लगातार निर्गुण उपासनाका उपदेश देते ही जाते हैं तब उनके उत्तरमें गोपियाँ कहती हैं :—

'ऊधो ! तुम अपनो जतन करौ।' 'निर्गुन कौन देस को बासी ?' आदि।

वे कहती हैं—दिग्दिगन्तमें चारों ओर व्याप्त इस सगुणसत्ताका निषेधकर आप क्यों व्यर्थ ही उसके अव्यक्त तथा अनिर्दिष्ट-तत्त्वको लेकर बकवाद करते हैं :—

---

* देखिए 'हिन्दी-साहित्यका आलोचनात्मक इतिहास' डाक्टर श्रीरामकुमार वर्मा कृत, तृतीय संस्करण पृ० ५३३।

"सुनि है कथा कौन निर्गुनकी, रचि-पचि बात बनावत।
सगुन-सुमेरु प्रकट देखियत तुम, तृन की ओट दुरावत ॥"

अन्तमें वे कहती हैं कि तुम्हारे निर्गुणसे अधिक रस तो हमें श्रीकृष्ण-के अवगुणोंमें ही मिलता है :—

"ऊनो कर्म कियो मातुल बधि, मदिरा मत्त प्रमाद।
सूर स्याम एते अवगुन में निर्गुन तें अति स्वाद ॥"

७—भाषा और उसपर अधिकार—पश्चिमी हिन्दी बोलनेवाले प्रान्तोंमें गीतोंकी भाषा ब्रज थी। दिल्लीके निकट भी गीत ब्रजभाषामें ही गाए जाते थे। वास्तवमें गीतोंकी परम्परा बहुत पुरानी है। चाहे वे मौखिक रूपमें हों या लिखित। सूरकी रचनामें ब्रजभाषाका बड़ा परि-मार्जित रूप देखनेको मिलता है। आचार्य शुक्लके शब्दोंमें कि सूरकी "रचना इतनी प्रगल्भ और काव्यांगपूर्ण है कि आगे होनेवाले कवियोंकी शृङ्गार और वात्सल्यकी उक्तियाँ सूरकी जूठीसी जान पड़ती हैं।" यद्यपि सूरदासके पहले भी ब्रजभाषामें रचना हुई थी; किन्तु भाषा-सौष्ठवका इतना सुन्दर रूप देखनेको उसमें नहीं मिलता। उसमें साहित्यिक छटाका अभाव-सा है। यद्यपि सूरदास ब्रजभाषाको छोड़ अन्य भाषाको रचनामें न ला सके; किन्तु सूरने चलते हुए वाक्यों, मुहावरों और कहीं-कहीं कहावतोंका भी यथास्थान समुचित प्रयोग किया है। जिसमें बड़ी स्वाभा-विकताके दर्शन होते हैं। यद्यपि काव्य-भाषा होनेसे उसमें अनेक स्थलों पर संस्कृतके पद, कविके पहलेके परम्परागत प्रयोग और ब्रजके दूर दूर प्रदेशोंके शब्द भी मिलते हैं; किन्तु उनकी अधिकता न होनेसे भाषाके स्वरूपमें कुछ अन्तर या कृत्रिमता नहीं आने पाई है। सूरकी रचनाके उपमान अधिकतर यद्यपि साहित्य-प्रसिद्ध ही हैं, किन्तु स्वकल्पित नवीन उपमानोंकी भी कमी नहीं है। राम-काव्यमें ब्रजभाषा और अवधी दोनोंका प्रयोग हुआ है, किन्तु कृष्ण-काव्यकी भाषा केवल ब्रज-भाषा ही है। यद्यपि सूरके द्वारा ब्रजभाषा संस्कृतमय हो गयी और मीराके द्वारा उसमें

मारवाड़ीपन आ गया, किन्तु व्रजभाषाका रूप विकृत न होने पाया।

छन्दोंकी दृष्टिसे कृष्ण-काव्यमें प्रायः गीति-काव्यका ही स्वरूप मिलता है। कृष्ण-काव्य मुक्तकके* रूपमें वर्णित होनेके कारण प्रायः गेय ही रहा। कृष्ण-काव्यके सभी पद राग-रागिनीके आधार पर लिखे गए हैं। अतः कृष्ण-काव्य संगीतात्मक है। सूर, मीरा आदिने पदोंमें ही रचना की, किन्तु कुछ कवियोंने—नन्ददास आदि—रोला, आदि छन्दोंका भी प्रयोग किया। प्रारम्भमें सूरने भी रोला और चौपाई छन्द अपनाया है, पर पदोंमें उन्होंने अधिक रचना की।

रसकी दृष्टिसे समूचे कृष्ण-काव्यमें शृंगार, अद्भुत और शान्त रसकी प्रधानता है। संयोग और वियोग दोनों पक्षोंके साथ साथ शृंगार रसमें वर्णन हुआ है। रति-भावके प्राधान्यमें शृंगारकी प्रधानता कृष्ण-काव्यकी विशेषता है। यद्यपि इस धारामें हास्य तथा वीर रसका भी यत्र-तत्र दर्शन होता है, किन्तु प्रधानता तो शृंगार रसकी ही है।

६—कृष्ण-काव्य और भक्तिका प्रसरण—राम-भक्तिका प्रचार उत्तरी भारतमें ही अधिकतर हुआ; किन्तु कृष्ण-भक्ति मध्यप्रदेश, दक्षिणी भारत, राजस्थान और काठियावाड़ (जूनागढ़) आदि प्रान्तोंमें भी विकसित होती रही। मध्यप्रदेश एवं दक्षिणमें तो वह सम्प्रदायोंका रूप धारण कर बढ़ती रही।‡ जिनके नाम हैं—दत्तात्रेय सम्प्रदाय, माधव

---

* यद्यपि सूरकी रचनामें श्रीकृष्णके शिशुकालसे गोचारण तकके क्रमशः चित्र उपस्थित हैं, जिसमें इतवृत्तात्मकताकी झलक पायी जाती है, किन्तु इनकी रचनामें मुक्तककी परम्पराका पूर्ण निर्वाह है। प्रत्येक पद अपनेमें पूर्ण एवं स्वतन्त्र हैं। इनमें पूर्वापर सम्बन्ध-योजना नहीं दिखाई पड़ती।

‡ डा० श्रीरामकुमार वर्मा एम० ए० पी-एच० डी० कृत 'हिन्दी-साहित्यका आलोचनात्मक इतिहास तृतीय सं० पृ० ६०५ देखिये।

सम्प्रदाय, विष्णुस्वामी सम्प्रदाय, निम्बार्क सम्प्रदाय, चैतन्य सम्प्रदाय, वल्लभ सम्प्रदाय, राधावल्लभी सम्प्रदाय और हरिदासी सम्प्रदाय आदि। इन सम्प्रदायोंका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है :—

१—दत्तात्रेय सम्प्रदाय—इस सम्प्रदायके अनुयायी दत्तात्रेयको ही अपने पंथका प्रवर्त्तक मानते हैं, दत्तात्रेयका रूप तीन सिरोंसे युक्त है, उनके साथ एक गाय और चार कुत्ते हैं। तीन सिरोंका संकेत त्रिमूर्त्तिसे, गायका पृथ्वीसे और चार कुत्तोंका चार वेदोंसे ज्ञात होता है। इस प्रकार दत्तात्रेयमें दैवी भावनाका आरोपण है। इन्हें भगवान् श्रीकृष्णका अवतार माना जाता है। इस सम्प्रदायकी धार्मिक पुस्तक 'भगवद्गीता' मानी जाती है और श्रीकृष्णही आराध्य माने जाते हैं। इसका केन्द्र महाराष्ट्र रहा। इसकी उन्नति विक्रमकी चौदहवीं शताब्दीमें हुई थी।

२—माधव-सम्प्रदाय—विक्रमकी पन्द्रहवीं शताब्दीमें इस सम्प्रदायकी अच्छी उन्नति हुई। मध्वाचार्यसे प्रभावित इस सम्प्रदायके अनुयायियोंने अपनी धार्मिक पुस्तक 'भक्तिरत्नावली' मानी है। इस सम्प्रदायके प्रचारकोंमें ईश्वरपुरी नामक एक नेता थे। जिन्होंने इस सम्प्रदायका खूब प्रचार किया। नगर कीर्तन और संकीर्त्तन ही इसमें भक्तिके साधन माने गये।

३—विष्णुस्वामी सम्प्रदाय—इस सम्प्रदायके आदि प्रवर्त्तक विष्णुस्वामी थे। जिन्होंने शुद्धाद्वैतसे इसकी स्थापना की। विल्वमंगल नामक सन्यासीके द्वारा इस सम्प्रदायका विशेष प्रचार हुआ। आगे चलकर विक्रमकी सत्रहवीं शताब्दीके अन्तिम कालमें यह सम्प्रदाय वल्लभी सम्प्रदायमें मिल गया, क्योंकि वल्लभाचार्यने विष्णुस्वामीके सिद्धान्तानुसार ही पुष्टिमार्गकी स्थापना की।

४—निम्बार्क सम्प्रदाय—इस सम्प्रदायके प्रचारकोंमें केशव काश्मीरी, हरिव्यास मुनि तथा श्रीभट्ट मुख्य थे। इस सम्प्रदायके प्रवर्त्तकका अभी तक पता नहीं चला है। इस मतका विकासकाल विक्रमकी

रह सका। श्रीकृष्णकी उपासनाके अन्तर्गत चैतन्य महाप्रभुने माधुर्य भाव-प्रवणतासे उनकी दाम्पत्य-प्रेमकी व्यंजना की। इस प्रेमके अलौकिक रहस्यकी धारा अपने वास्तविक रूपमें *विशेष दूर तक प्रभावित न हो सकी।* उसके आध्यात्मिक स्वरूपको भिन्न भिन्न भक्तों तथा कवियोंनेभिन्न-भिन्न रूप-से ग्रहण किया। अर्थात् प्रेमके क्षेत्रमें प्रेम ही का पतन हुआ या यों कह सकते हैं कि उसमें सांसारिक तथा पार्थिव आकर्षणकी विकृतावस्था आ गई।

कृष्ण-काव्यकी एक विशेषता यह है कि राम-काव्य धाराके समानान्तर प्रवाहित होते हुए भी यह काव्य धारा राम-काव्यसे प्रभावित न हो सकी, क्योंकि राम-काव्यके मर्यादावाद और दास्य-भावके प्रभाव कृष्ण-काव्य पर नहीं पड़ सके। कृष्ण काव्यके अन्तर्गत मूल प्रेरक शक्ति राधा रही है और इस काव्य धाराके माध्यमसे राधाका क्रमिक विकाश होता रहा। इस *भावधाराको लक्ष्य करके साहित्यकारोंने जो भावना अपनायी थी,* उसके मूलमें प्रेम और शृङ्गारकी भावना प्रधान थी। कृष्ण-काव्यके अन्तर्गत वर्ण्य-विषयको नवीनतम बनानेकी चेष्टाकी जाती रही, जिससे यह विषय अति चिरन्तन होने पर भी नवीन ही बना रहा। एक बात और थी कि कृष्ण-काव्यके कवियोंमेंसे किसी भी कविने मानवकी समग्र प्रवृत्तियों पर *उस प्रकार समाधान न उपस्थित किया, जिस प्रकार राम काव्यधारामें* तुलसीदासने आदर्शकी स्थापना करते हुए मानवीय प्रवृत्तियों पर अन्तिम समाधान उपस्थित किया था।

❀

सम्मतियाँ

'मैंने श्रीसत्यदेव चतुर्वेदीकी 'हिन्दी काव्यमें भक्तिकालीन साधना' पुस्तक देखी है। अनेक बातोंका स्पष्टीकरण अच्छा किया गया है। मुझे पुस्तक बड़ी उपयोगी प्रतीत हुई।

अध्यक्ष–हिन्दी-विभाग हस्ताक्षर—
सागर विश्वविद्यालय, सागर —आचार्य श्रीनन्ददुलारे वाजपेयी

'हिन्दी काव्यमें भक्तिकालीन साधना' पुस्तक मैंने देखी। पुस्तक अध्ययन और परिश्रमसे लिखी गई है। विद्यार्थियोंके लिये उपयोगी सिद्ध होगी। श्रीचतुर्वेदीजी इस क्षेत्रमें निरन्तर आगे बढ़ते रहें, यही मेरी इच्छा है।' हस्ताक्षर—
साकेत —डा० श्रीरामकुमार वर्मा,
प्रयाग एम० ए० पी एच० डी०

'मैंने पं० सत्यदेव चतुर्वेदी द्वारा लिखित 'हिन्दी-काव्यमें भक्तिकालीन साधना' पुस्तक देखी। पुस्तकमें अनेक विषयोंका विवेचन अच्छी तरह किया गया है। यह छात्रोंके लिए नितान्त उपादेय है। साहित्यके अन्य जिज्ञासु भी इससे लाभ उठा सकते हैं।' हस्ताक्षर—
प्रयाग विश्वविद्यालय, — डा० श्रीउदयनारायण तिवारी
प्रयाग। एम० ए० पी-एच० डी०

'श्रीसत्यदेव चतुर्वेदीकृत यह ग्रन्थ शोधपूर्ण है। अपने अध्यवसाय, साधना, अनुसंधान तथा दृष्टिकोणके सहारे उन्होंने प्रस्तुत पुस्तकमें ताजगी ला दी है। विद्यार्थी तो इससे लाभान्वित होंगे ही, साधारण पाठक-वर्ग भी इससे प्रेरणा ग्रहण करेगा। मैं श्रीचतुर्वेदीजीको उनके इस महत्वपूर्ण ग्रन्थके लिये साधुवाद देता हूँ।'

हस्ताक्षर—
साहित्य सम्पादक, अमृत-पत्रिका, प्रयाग। —श्रीश्रीकृष्णदास

सहायक-ग्रन्थों की सूची—

१-'श्रीमद्वाल्मीकि-रामायण', २-'श्रीमद्भागवत महापुराण' ३-'महाभारत', ४-'अध्यात्म-रामायण' ५-'कवितावली'', ६-'गीतावली', ७-'दोहावली', ८-'रामचरित-मानस'—९'उपनिषदांक', १०-'हिन्दू-संस्कृति अंक'—(गीताप्रेस, गोरखपुर) । ११-'विनय-पत्रिका', और १२-'व्रजमाधुरीसार'—श्रीवियोगीहरि । १३-'गोस्वामी तुलसीदास' और १४-'कबीर-ग्रन्थावली'—(बाबू श्रीश्यामसुन्दरदास) । १५-'कबीर' और १६-'हिन्दी-साहित्यकी भूमिका'-आचार्य श्रीहजारीप्रसाद द्विवेदी । १७-'तुलसीदास'—डा० श्रीमाताप्रसाद गुप्त । १८-'दर्शन-दिग्दर्शन—श्रीराहुलसांकृत्यायन । १९-'सूरदास', 'सूरसागर', और 'मानसांक'—आचार्य श्रीनन्ददुलारे वाजपेयी । २०-'हिन्दी साहित्यका इतिहास', २१-'जायसी ग्रन्थावली', २२-'गोस्वामी तुलसीदास' २३-'त्रिवेणी'—आचार्य श्रीरामचन्द्र शुक्ल । २४-'हिन्दी-साहित्यका आलोचनात्मक इतिहास', २५-'कबीरका रहस्यवाद' २६-'सन्तकबीर'-डा० श्रीरामकुमार वर्मा । २७-'तुलसीदास और उनकी कविता' तथा २८-'रामचरित-मानस'—श्रीरामनरेशत्रिपाठी । २९-'तुलसीदास और उनका युग'—डा० श्रीराजपति दीक्षित । ३०-'श्रीरामचरित-मानसकी भूमिका'—श्रीरामदास गौड़ । ३१-'हिन्दी-प्रेमाख्यानक-काव्य'—डा० श्रीकमलकुल श्रेष्ठ । ३२-'तुलसी दर्शन'—श्रीबलदेव उपाध्याय । ३३-'राम कथा'—रेवरेण्ड फादर कामिल बुल्के ३४-'पूर्वी-पश्चिमी-दर्शन'—डा० श्रीराजदेव उपाध्याय । ३५-'तसव्वुफ अथवा सूफीमत'—श्रीचन्द्रबली पाण्डेय । इनके अतिरिक्त सामयिक पत्र-पत्रिकाएँ आदि ।

हिन्दी, उर्दू, अरबी, फारसी, बौद्ध और जैन-ग्रन्थोंके अतिरिक्त विदेश-, खोतान, चीन, तिब्बत, इन्दोनेशिया, इन्दोचीन, ब्रह्मदेश, रूस एवं अन्य पाश्चात्य देशों, मिशनरियों-में प्रचलित रामकथाका संक्षिप्त परिचय और विशेषताओंका उल्लेख करते हुए लेखकने गोस्वामी तुलसीदासकी सारग्राहिणी प्रवृत्ति, रामकथा-संबंधी दार्शनिक-भावना, कला-पक्ष, रचना-शैली, तुलसीकी राम-कथाका संगठन, रामचरित-मानसके आधारग्रन्थ, तुलसीकी राम-कथाकी विशेषता, तुलसीदास और उनका युग, कविकी राम-कथा सम्बन्धी अन्य रचनाएँ, भाषा-सम्बन्धी विचार आदि महत्व-पूर्ण विषयों पर आधिकारिक ढंगसे प्रकाश डाला है, जो राम-कथाके प्रेमी पाठकों, छात्रों एवं अन्य राम-कथाके जिज्ञासुओंके लिए विशेष लाभप्रद है इस पुस्तकमें कितनी ही नवीन बातोंपर प्रकाश डाला गया है।

२—साहित्य-दर्शन ४॥)

१ समालोचना और हिन्दीमें उसका विकास, २ गोस्वामी तुलसीदासका समाजवाद, ३ कामायनी और बुद्धिवाद, ४ देव और बिहारी एक तुलनात्मक दृष्टि, ५ प्रेमचन्द्रका महत्व, ६ 'पंत'का युगदर्शन, ७ 'कुरुक्षेत्र' ८ सद्गुरु और संत, ९ मीराका धार्मिक-सम्प्रदाय, १० भारतेन्दुकी छन्द योजना, ११ हिन्दी-साहित्यमें भ्रमरगीत परंपरा, १२ छायावादकी देन, १३ हिन्दीका प्राचीन खड़ी बोली गद्य, १४ प्रगतिवादी कबीर, १५ महाकवि चन्दवरदायी, १६ महाकवि सूरकी काव्य-साधना, १७ अपभ्रंश काव्य एक विहंगम् दृष्टि, १८ जायसी द्वारा पद्मावती का सौंदर्य-वर्णन, आदि-आदि निबन्ध हैं।

३—साहित्य-परीक्षण ३)

१ भारतीय काव्य-मत, २ भारतीय नाटककी ऐतिहासिक पृष्ठ भूमि, ३ हिन्दीमें गीति-काव्यका विकास, ४ रहस्यवाद-छायावाद, ५ छायावादका शास्त्रीय परीक्षण, ६ साहित्य और सहज भाषा, ७ यथार्थ और प्रतीक, ८ आधुनिक हिन्दी-साहित्यमें प्रबन्ध-काव्य, ९ साहित्य एवं परिस्थिति आदि निबन्ध हैं।

सहायक-ग्रन्थों की सूची—

१–'श्रीमद्बाल्मीकि-रामायण', २–'श्रीमद्भागवत महापुराण' ३–'महाभारत', ४–'अध्यात्म-रामायण' ५–'कवितावली'', ६–'गीतावली', ७–'दोहावली', ८–'रामचरित मानस'—९'उपनिषदांक', १०–'हिन्दू संस्कृति अंक'—(गीताप्रेस, गोरखपुर) । ११–'विनय पत्रिका', और १२–'ब्रजमाधुरीसार'—श्रीवियोगहरि । १३–'गोस्वामी तुलसीदास' और १४–'कबीर ग्रन्थावली'—(बाबू श्रीश्यामसुन्दरदास) । १५–'कबीर' और १६–'हिन्दी-साहित्यकी भूमिका'–आचार्य श्रीहजारीप्रसाद द्विवेदी । १७–'तुलसीदास'—डा० श्रीमाताप्रसाद गुप्त । १८–'दर्शन दिग्दर्शन—श्रीराहुलसांकृत्यायन । १९–'सूरदास', 'सूरसागर', और 'मानसांक'—आचार्य श्रीनन्ददुलारे वाजपेयी । २०–'हिन्दी साहित्यका इतिहास', २१–'जायसी ग्रन्थावली', २२–'गोस्वामी तुलसीदास' २३–'त्रिवेणी'—आचार्य श्रीरामचन्द्र शुक्ल । २४–'हिन्दी साहित्यका आलोचनात्मक इतिहास', २५–'कबीरका रहस्यवाद' २६–'सन्तकबीर'–डा० श्रीरामकुमार वर्मा । २७–'तुलसीदास और उनकी कविता' तथा २८–'रामचरित-मानस'—श्रीरामनरेशत्रिपाठी । २९–'तुलसीदास और उनका युग'—डा० श्रीराजपति दीक्षित । ३०–'श्रीरामचरित-मानसकी भूमिका'—श्रीरामदास गौड़ । ३१–'हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य'—डा० श्रीकमलकुल श्रेष्ठ । ३२–'तुलसी दर्शन'—श्रीबलदेव उपाध्याय । ३३–'राम कथा'—रेवरेण्ड फादर कामिल बुल्के ३४–'पूर्वी पश्चिमी-दर्शन'—डा० श्रीराजदेव उपाध्याय । ३५–'तसव्वुफ अथवासूफीमत'—श्रीचन्द्रबली पाण्डेय के अतिरिक्त सामयिक पत्र-पत्रिकाएँ आदि ।

हिन्दी, उर्दू, अरबी, फारसी, बौद्ध और जैन-ग्रन्थोंके अतिरिक्त विदेश-, खोतान, चीन, तिब्बत, इन्दोनेशिया, इन्दोचीन, ब्रह्मदेश, रूस एवं अन्य पाश्चात्य देशों, मिशनरियों—में प्रचलित रामकथाका संक्षिप्त परिचय और विशेषताओंका उल्लेख करते हुए लेखकने गोस्वामी तुलसीदासकी सारग्राहिणी प्रवृत्ति, रामकथा-संबंधी दार्शनिक-भावना, कला-पक्ष, रचना-शैली, तुलसीकी राम-कथाका संगठन, रामचरित-मानसके आधारग्रन्थ, तुलसीकी राम-कथाकी विशेषता, तुलसीदास और उनका युग, कविकी राम-कथा सम्बन्धी अन्य रचनाएँ, भाषा-सम्बन्धी विचार आदि महत्व-पूर्ण विषयों पर आधिकारिक ढंगसे प्रकाश डाला है, जो राम-कथाके प्रेमी पाठकों, छात्रों एवं अन्य राम-कथाके जिज्ञासुओंके लिए विशेष लाभप्रद है इस पुस्तकमें कितनी ही नवीन बातोंपर प्रकाश डाला गया है।

२—साहित्य-दर्शन ४॥)

१ समालोचना और हिन्दीमें उसका विकास, २ गोस्वामी तुलसीदासका समाजवाद, ३ कामायनी और बुद्धिवाद, ४ देव और बिहारी एक तुलनात्मक दृष्टि, ५ प्रेमचन्द्रका महत्व, ६ 'पंत'का युगदर्शन, ७ 'कुरुक्षेत्र' ८ सद्गुरु और सत, ९ मीराका धार्मिक-सम्प्रदाय, १० भारतेन्दुकी छन्द योजना, ११ हिन्दी-साहित्यमें भ्रमरगीत परंपरा, १२ छायावादकी देन, १३ हिन्दीका प्राचीन खड़ी बोली गद्य, १४ प्रगतिवादी कबीर, १५ महाकवि चन्दवरदायी, १६ महाकवि सूरकी काव्य-साधना, १७ अपभ्रंश काव्य एक विहंगम् दृष्टि, १८ जायसी द्वारा पद्मावती का सौंदर्य-वर्णन, आदि-आदि निबन्ध हैं।

३—साहित्य-परीक्षण ३)

१ भारतीय काव्य-मत, २ भारतीय नाटककी ऐतिहासिक पृष्ठ भूमि, ३ हिन्दीमें गीति-काव्यका विकास, ४ रहस्यवाद-छायावाद, ५ छायावादका शास्त्रीय परीक्षण, ६ साहित्य और सहज भाषा, ७ यथार्थ और प्रतीक, ८ आधुनिक हिन्दी-साहित्यमें प्रबन्ध-काव्य, ९ साहित्य एवं परिस्थिति आदि निबन्ध हैं।

सहायक-ग्रन्थों की सूची—

१–'श्रीमद्वाल्मीकि-रामायण', २–'श्रीमद्भागवत महापुराण' ३–'महाभारत', ४–'अध्यात्म-रामायण' ५–'कवितावली'', ६–'गीतावली', ७–'दोहावली', ८–'रामचरित-मानस'—९'उपनिषदांक', १०–'हिन्दू-संस्कृति अंक'—(गीताप्रेस, गोरखपुर) । ११–'विनय-पत्रिका', और १२–'व्रजमाधुरीसार'—श्रीवियोहरि । १३–'गोस्वामी तुलसीदास' और १४–'कबीर-ग्रन्थावली'—(बाबू श्र श्यामसुन्दरदास) । १५–'कबीर' और १६–'हिन्दी-साहित्यकी भूमिका'–आचार्य श्रीहजारीप्रसाद द्विवेदी । १७–'तुलसीदास'—डा० श्रीमाताप्रसाद गुप्त । १८–'दर्शन-दिग्दर्शन—श्रीराहुलसांकृत्यायन । १९–'सूरदास', 'सूरसागर', और 'मानसांक'—आचार्य श्रीनन्ददुलारे वाजपेयी । २०–'हिन्दी साहित्यका इतिहास', २१–'जायसी ग्रन्थावली', २२–'गोस्वामी तुलसीदास' २३–'त्रिवेणी'—आचार्य श्रीरामचन्द्र शुक्ल । २४–'हिन्दी-साहित्यका आलोचनात्मक इतिहास', २५–'कबीरका रहस्यवाद' २६–'सन्तकबीर'–डा० श्रीरामकुमार वर्मा । २७–'तुलसीदास और उनकी कविता' तथा २८–'रामचरित-मानस'—श्रीरामनरेशत्रिपाठी । २९–'तुलसीदास और उनका युग'—डा० श्रीराजपति दीक्षित । ३०–'श्रीरामचरित-मानसकी भूमिका'—श्रीरामदास गौड़ । ३१–'हिन्दी-प्रेमाख्यानक-काव्य'—डा० श्रीकमलकुल श्रेष्ठ । ३२–'तुलसी दर्शन'—श्रीबलदेव उपाध्याय । ३३–'राम कथा'—रेवरेण्ड फादर कामिल बुल्के ३४–'पूर्वी-पश्चिमी-दर्शन'—डा० श्रीराजदेव उपाध्याय । ३५–'तसव्वुफ अथवासूफीमत'—श्रीचन्द्रबली पाण्डेय । इनके अतिरिक्त सामयिक पत्र-पत्रिकाएँ आदि ।

हमारे प्रकाशन

१—गोस्वामी तुलसीदास और राम-कथा ४।)

इस ग्रन्थमें राम-कथाकी उत्पत्ति, उसके प्रसार अर्थात् ऋग्वेदसे प्रारंभकर, पुराण-साहित्य, अन्य संस्कृत-साहित्य, प्राकृत, तामिल, तेलगू, मलयालम, कन्नड़, काश्मीरी, बँगला, उड़िया, मराठी, गुजराती, असमी,

हिन्दी, उर्दू, अरबी, फारसी, बौद्ध और जैन-ग्रन्थोंके अतिरिक्त विदेश—, खोतान, चीन, तिब्बत, इन्दोनेशिया, इन्दोचीन, ब्रह्मदेश, रूस एवं अन्य पाश्चात्य देशों, मिशनरियों—में प्रचलित रामकथाका संक्षिप्त परिचय और विशेषताओंका उल्लेख करते हुए लेखकने गोस्वामी तुलसीदासकी सारग्राहिणी प्रवृत्ति, रामकथा-संबंधी दार्शनिक-भावना, कला-पक्ष, रचना-शैली, तुलसीकी राम-कथाका संगठन, रामचरित-मानसके आधारग्रन्थ, तुलसीकी राम-कथाकी विशेषता, तुलसीदास और उनका युग, कविकी राम-कथा सम्बन्धी अन्य रचनाएँ, भाषा-सम्बन्धी विचार आदि महत्व-पूर्ण विषयों पर आधिकारिक ढंगसे प्रकाश डाला है, जो राम-कथाके प्रेमी पाठकों, छात्रों एवं अन्य राम-कथाके जिज्ञासुओंके लिए विशेष लाभप्रद है इस पुस्तकमें कितनी ही नवीन बातोंपर प्रकाश डाला गया है।

२—साहित्य-दर्शन ४॥)

१ समालोचना और हिन्दीमें उसका विकास, २ गोस्वामी तुलसी-दासका समाजवाद, ३ कामायनी और बुद्धिवाद, ४ देव और बिहारी एक तुलनात्मक दृष्टि, ५ प्रेमचन्द्रका महत्व, ६ 'पंत'का युगदर्शन, ७ 'कुरुक्षेत्र' ८ सद्गुरु और संत, ९ मीराका धार्मिक-सम्प्रदाय, १० भारतेन्दुकी छन्द योजना, ११ हिन्दी-साहित्यमें भ्रमरगीत परंपरा, १२ छायावादकी देन, १३ हिन्दीका प्राचीन खड़ी बोली गद्य, १४ प्रगतिवादी कबीर, १५ महाकवि चन्दबरदायी, १६ महाकवि सूरकी काव्य-साधना, १७ अपभ्रंश काव्य एक विहंगम् दृष्टि, १८ जायसी द्वारा पद्मावती का सौंदर्य-वर्णन, आदि-आदि निबन्ध हैं।

३—साहित्य-परीक्षण ३)

१ भारतीय काव्य-मत, २ भारतीय नाटककी ऐतिहासिक पृष्ठ भूमि, ३ हिन्दीमें गीति-काव्यका विकास, ४ रहस्यवाद-छायावाद, ५ छाया-वादका शास्त्रीय परीक्षण, ६ साहित्य और सहज भाषा, ७ यथार्थ और प्रतीक, ८ आधुनिक हिन्दी-साहित्यमें प्रबन्ध-काव्य, ९ साहित्य एवं परिस्थिति आदि निबन्ध हैं।

५—अमितवेग ४॥)

इस ग्रन्थमें 'गोस्वामी तुलसीदास और राम कथा'के आधार पर भक्त-प्रवर हनुमान्‌का दिगन्त विश्रुत-जीवन-चरित अंकित किया गया है, आध्यात्मिक, साहित्यिक, ऐतिहासिक और वैज्ञानिक दृष्टिकोणोंको समन्वयात्मक दृष्टिकोणसे अपनाकर रचनाकी गयी है। इस पौराणिक गाथाके सबंधमें श्रीराम कथाके पारगत मनीषी रेवरेण्ड फादर कामिलबुल्के लिखते हैं —'हनुमान्‌की लोक प्रियता शताब्दियों तक बढ़ती रही है, फल-स्वरूप उनके सबंधमें असख्य कथाओंका प्रचलन हुआ है। इन सबोंको एक ही कथा सूत्रमें ग्रथित कर श्रीसत्यदेव चतुर्वेदीजीने राम-कथा साहित्यके एक अभावकी पूर्त्तिकी है। आशा है, *'अमितवेग'* किसी उदीयमान कविको हनुमान्‌के विषयमें महाकाव्य लिखनेकी प्रेरणा प्रदान करेगा।'

६—रानी तिष्यरक्षिता ४)

यह एक ऐतिहासिक उपन्यास है, जिसकी कथा अत्यन्त करुण है। अनुपम सुन्दरी परिचारिका श्रेष्ठी तिष्यरक्षिताके प्रति सम्राट अशोकको *अत्यधिक आसक्ति और फलस्वरूप उसे राजमहिषी* पद पर सम्राट द्वारा अभिषिक्त किया जाना। उसका युवराज कुणालके ऊपर अत्यन्त आसक्त हो प्रणय-निवेदन और दृढ चरित्र कुणाल द्वारा उसे अस्वीकार करना, रानी तिष्यरक्षिताका षडयन्त्र द्वारा कुणालकी आँखें नष्ट कराने और भिक्षु-वेशमें स्थित होकर राज्य-त्याग कर देशाटन करनेका आदेश भेजना, उसके षड्यन्त्रका उद्घाटन, रानी तिष्यरक्षिताको प्राण-दण्ड दिया जाना आदि घटनाएँ अत्यन्त मार्मिक ढगसे वर्णित हैं। यह रचना शृङ्गार, करुण और निर्वेद तीनोंके सम्मिश्रणसे निर्मित हुई है।

७—ललित कथाएँ १)

महाभारतकी चुनी हुई कहानियोंका अनुपम सग्रह है।

प्राप्ति स्थान—

हिन्दी-साहित्य-सृजन-परिषद्; चौक, जौनपुर उत्तर-प्रदेश।